'सीमा' का भाव यह है कि जैसे जलकी कांक्षा होनेपर तालाब, कुआँ या नदीके तटपर जानेसे उसका ग्रहण होता है वैसे ही कथाके निकट जानेसे भक्ति और प्रेम प्राप्त होते हैं। अथवा जैसे सीमा अपनेमें जलको रोके रखती है वैसे ही यह भक्ति और प्रेमको अपनेमें रोके हुए हैं।

दोहा—रामकथा मंदाकिनी चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेह बन सिय-रघुबीर-बिहारु॥ ३१॥

अर्थ—श्रीरामकथा मन्दाकिनी नदी है। सुन्दर निर्मल चित्त चित्रकूट है। तुलसीदासजी कहते हैं कि (भक्तोंका) सुन्दर स्नेह (ही) वन है, जहाँ श्रीसिय-रघुबीर विहार करते हैं॥ ३१॥

नोट—१ *'मंदाकिनी'*—यह नदी अनसूया पर्वतसे निकली है जो चित्रकूटसे कोई पाँच कोसपर है। पौराणिक कथाके अनुसार यह नदी श्रीअनसूया महादेवी अपने तपोबलसे लायीं। इसकी महिमा अयोध्याकाण्डमें दी है।—*'अत्रिप्रिया निज तपबल आनी।'* (२। १३२। ५-६) देखिये। 'बन' के दो अर्थ हैं— जंगल और जल। विहार दोनोंमें होता है। स्नेहको वनकी उपमा दी। दोनोंमें समानता है। स्नेहमें लोग सुध-बुध भूल जाते हैं। देखिये निषादराज भरतजीके साथ जब चित्रकूट पहुँचे और भरतजीको वृक्ष दिखाये, जहाँ श्रीरामचन्द्रजी विराजमान थे। उस समय भरतजीका प्रेम देख *'सखहिं सनेह बिबस मग भूला'।* जंगलमें भी लोग भटक जाते हैं। पुनः, स्नेह जल है, यथा—*'माली सुमन सनेह जल सींचत लोचन चारु।'*

'सिय रघुबीर बिहारु' इति।

'बिहारु'— मं० श्लो० ४ देखिये। श्रीसीतारामजी विहार करते हैं। श्रीकरुणासिन्धुजी और काष्ठजिह्वा-स्वामी *'रघुबीर'* से श्रीरामलक्ष्मण दोनोंका भाव लेते हैं। क्योंकि चित्रकूटमें दोनों साथ-साथ थे। यथा—*'रामु लखन सीता सहित सोहत परन निकेत। जिमि बासव बस अमरपुर सची जयंत समेत॥'* (२। १४१) इस दोहेमें भी विहारगर्भित उदाहरण है। श्रीगोस्वामीजीके मतानुसार श्रीसीतारामजीका चित्रकूटमें नित्य निवास रहता है। यह बात दोहावलीमें स्पष्ट लिखी है। यथा—*'चित्रकूट सब दिन बसत प्रभु सिय लखन समेत। रामनाम जप जापकहिं तुलसी अभिमत देत॥'* (दोहा ४) *'रघुबीर'* पद यहाँ सार्थक है। स्त्रीसहित वनमें विचरना यह वीरका ही काम है।

बैजनाथजी लिखते हैं कि 'चित्तमें प्रणय, प्रेम, आसक्ति, लगन, लाग, अनुराग आदि श्रीरामस्नेह सुभग वनके वृक्ष हैं। अर्थात् नेहकी ललित दृष्टि ललिताई शोभा है, उसीमें श्रीसिय-रघुबीरका नित्य विहार है। भाव यह है कि जो श्रीरामस्नेहमें सुन्दर चित्त लगाकर रामायण धारण करे उसीको प्रभुका विहार प्राप्त हो। यहाँ रामवश होना काव्यका प्रयोजन है।'

सब दिन श्रीसीतारामजीका यहाँ निवास एवं विहार—यह प्रभुका नित्य वा ऐश्वर्यचरित है, जो प्रभुकी कृपासे ही जानने और समझनेमें आता है। माधुर्य वा नैमित्तिक लीलामें तो वे कुछ ही दिन चित्रकूटमें रहे। *'बिहार'* का किञ्चित् दर्शन अरण्यकाण्ड *'एक बार चुनि कुसुम सुहाए।'*""(३।१) में कविने करा दिया है। प्रेमी वहाँ देख लें। (गीतावली २। ४७) में भी यहाँ नित्य-विहार कहा है। यथा—*'चित्रकूट कानन छबि को कबि बरनै पार। जहँ सिय लखन सहित नित रघुबर करहिं बिहार॥ २१॥ तुलसिदास चाँचरि मिस कहे राम गुन ग्राम।'—'बिहार'* शब्दमें गूढ़ भाव भरे हैं।

इस दोहेका भाव यह है कि (क) जैसे चित्रकूटमें मन्दाकिनीके तटपर वनमें श्रीसीतारामजी सदा विहार करते हैं, वैसे ही जिनके निर्मल चित्तमें रामकथाका सुन्दर प्रेम है उनके हृदयमें श्रीसीतारामजी सदा विहार करते हैं। (ख) मन्दाकिनीका प्रवाह सब ऋतुओंमें जारी रहता है। इसी तरह शुद्ध अन्तःकरणके सन्तोंमें रामकथाका प्रवाह जानिये। पुनः, जैसे जल न रहनेसे जल-विहार नहीं हो सकता और जंगलका विहार

निर्जन वनमें मनको नहीं भाता, वैसे ही कथामें प्रेम न हुआ और चित्त उधरसे हटा तो सियरामविहार न होगा। अर्थात् न तो कथा ही समझनेमें आवेगी और न प्रभुकी प्राप्ति होगी। (ग) जैसे श्रीरघुनाथजीके चित्रकूटमें रहनेसे दुष्ट डरते थे, वैसे ही यहाँ कामादि खल चित्तमें बाधा न कर सकेंगे।

राम-चरित चिंतामनि चारू। संत सुमति तिअ सुभग सिंगारू॥ १॥

अर्थ—श्रीरामचरित सुन्दर चिन्तामणि है, सन्तोंकी सुमतिरूपिणी स्त्रीका सुन्दर शृङ्गार है॥ १॥

नोट—१ (क) 'चिन्तामणि सब मणियोंमें श्रेष्ठ है, यथा—'*चिंतामनि पुनि उपल दसानन।*' (६। २६) इसी तरह रामचरित सब धर्मोंसे श्रेष्ठ है। सन्तकी मतिकी शोभा रामचरित्र धारण करनेसे है; अन्य ग्रन्थसे शोभा नहीं है। '*सुभग सिंगारू*' कहकर सूचित किया कि और सब शृङ्गारोंसे यह अधिक है। यथा—'*तुलसी चित चिंता न मिटै बिनु चिंतामनि पहिचाने।*' (विनय० २३५) बिना रामचरित जाने चित्तकी चिन्ता नहीं मिटती। प्राकृत शृङ्गार नाशवान् है और यह नाशरहित सदा एकरस है। (पं० रा० कु०) (ख) जैसे चिन्तामणि जिस पदार्थका चिन्तन करो सोई देता है वैसे ही रामचरित्र सब पदार्थोंका देनेवाला है। (करु०) (ग) '*सुभग सिंगारू*' का भाव यह है कि यह 'नित्य, नाशरहित, एकरस और अनित्य प्राकृत शृङ्गारसे विलक्षण है।' (रा० प्र०)

नोट— २ उत्तरकाण्डमें सुन्दर चिन्तामणिके लक्षण यों दिये हैं—'*(राम भगति) चिंतामनि सुंदर। बसइ गरुड़ जाके उर अंतर॥ परम प्रकास रूप दिन राती। नहिं तहँ चहिअ दिआ घृत बाती॥ मोह दरिद्र निकट नहिं आवा। लोभ बात नहिं ताहि बुझावा॥ प्रबल अबिद्या तम मिटि जाई। हारहिं सकल सलभ समुदाई॥ खल कामादि निकट नहिं जाहीं। (बसइ भगति जाके उर माहीं॥) गरल सुधासम अरि हित होई। तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई॥ ब्यापहिं मानस रोग न भारी। जिन्ह के बस सब जीव दुखारी॥ (राम भगति-मनि उर बस जाकें)। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताकें॥*' (११९) यहाँ रामचरितको 'सुन्दर चिन्तामणि' कहकर इन सब लक्षणोंका श्रीरामचरित्रसे प्राप्त हो जाना सूचित किया है।

☞ 'चिन्तामणि' के गुण स्कन्दपुराण ब्रह्मखण्डान्तर्गत ब्रह्मोत्तरखण्ड अध्याय पाँचमें ये कहे हैं—वह कौस्तुभमणिके समान कान्तिमान् और सूर्यके सदृश है। इसके दर्शन, श्रवण, ध्यानसे चिन्तित पदार्थ प्राप्त हो जाता है। उसकी कान्तिके किञ्चित् स्पर्शसे ताँबा, लोहा, सीसा, पत्थर आदि वस्तु भी सुवर्ण हो जाते हैं। यथा—'**चिन्तामणिं ददौ दिव्यं मणिभद्रो महामतिः॥ स मणिः कौस्तुभ इव द्योतमानोऽर्क संनिभः। दृष्टः श्रुतो वा ध्यातो वा नृणां यच्छति चिन्तितम्॥ तस्य कान्तिलवस्पृष्टं कांस्यं ताम्रमयस्त्रपु। पाषाणादिकमन्यद्वा सद्यो भवति काञ्चनम्॥**' (१५—१७)

नोट— ३ बैजनाथजी लिखते हैं कि चिन्तामणिमें चार गुण हैं—'*तम नासत दारिद हरत, रुज हरि बिघ्न निवारि*' वैसे ही श्रीरामचरित्रमें अविद्या-तमनाश, मोह-दारिद्र्य-हरण, मानस-रोग-शमन, कामादि-विघ्न-निवारण ये गुण हैं। सन्तोंकी सुन्दर बुद्धिरूपिणी स्त्रीके अङ्गोंके सोलहों शृङ्गाररूप यह रामचरित है। यथा—'*उबटि सुकृति प्रेम मज्जन सुधर्म पट नेह नेह माँग शम दमसे दुरारी है। नूपुर सुबैनगुण यावक सुबुद्धि आँजि चूरि सज्जनाई सेव मेंहदी सँवारी है॥ दया कर्णफूल नथ शांति हरिगुण माल शुद्धता सुगंधपान ज्ञान त्याग कारी है। घूँघट सध्यान सेज तुरियामें बैजनाथ रामपति पास तिय सुमति शृंगारी है॥*' इति श्रवणमात्रसे प्राप्त होता है।

नोट—४ '**चारू**' विशेषण देकर जनाया कि जो चिन्तामणि इन्द्रके पास है वह अर्थ, धर्म, काम ही दे सकती है और यह चिन्तामणि भक्ति एवं मुक्ति भी देती है। वह चिन्तित पदार्थ छोड़ और कुछ नहीं दे सकती और रामचरित्र अचिन्तितको भी देनेवाला है।

जग मंगल गुन-ग्राम राम के। दानि मुकुति धन धरम धाम के॥ २॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजीके गुणग्राम जगत्‌का कल्याण करनेवाले हैं। मुक्ति, धन, धर्म, और धामके देनेवाले हैं॥ २॥

नोट—१ 'जग मंगल......' से जनाया कि जगत्‌के अन्य सब व्यवहार अमङ्गलरूप हैं।

नोट—२ (क) धामसे 'काम' का भाव लेनेसे चारों फलोंकी प्राप्ति सूचित की। चार फलोंमेंसे तीन धन (अर्थ), धर्म और मुक्ति तो स्पष्ट हैं। रहा 'काम' उसकी जगह यहाँ 'धाम' है। (ख) श्रीकान्तशरणजी लिखते हैं कि 'यहाँ चारों फलोंका देना सूचित किया।......धाम अर्थात् गृहसे गृहिणीसमेतका तात्पर्य है, क्योंकि गृहिणी ही गृह है, यथा—'**न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते। वृक्षमूलेऽपि दयिता यस्य तिष्ठति तद्‌गृहम्॥ प्रासादोऽपि तया हीनं कान्तारमिति निश्चितम्।**' (महाभारत) अतः काम भी आ गया।' इस कथनसे यहाँके *'धाम'* शब्दसे लक्षणाद्वारा कामदेवका ग्रहण उनका अभिप्रेत जान पड़ता है। परन्तु मेरी समझमें चारों पुरुषार्थोंवाले *'काम'* शब्दसे केवल कामदेवका ही ग्रहण नहीं है किन्तु समस्त कामनाओंका ग्रहण होगा। ऐसा जान पड़ता है कि *'धन धरम धाम'* पाठमें (लगातार तीन धकारादि शब्द आनेसे) शब्दालङ्कार भी होता है इससे कामके बदले धाम शब्द ही दिया गया। (ग) मा० प्र० कार 'मुक्तिरूपी धन और धर्मरूपी धाम देते हैं' ऐसा अर्थ करते हैं। जैसे धनकी रक्षाके लिये धाम होना जरूरी है, वैसे ही मुक्तिके लिये धर्मका होना जरूरी है। रामचरित दोनों पदार्थोंके देनेवाले हैं। (घ) पं० रामकुमारजीका मत है कि *'मुकुति धन धरम धाम।'* इसमें धर्म, धन (अर्थ) और मुक्ति—ये तीन तो स्पष्ट ही हैं; परन्तु काम अस्पष्ट है, वह अर्थमें गतार्थ है। क्योंकि अर्थहीसे कामकी प्राप्ति शास्त्र-सम्मत है। (ङ) ब्रह्मचारी श्रीबिन्दुजीका मत है कि *'धरम धाम'* तत्पुरुष समास है। 'उसका है धर्मका स्थान; जो धर्महीका विशिष्ट पद है।'

नोट—३ मानसपत्रिकाकार अर्थ करते हैं कि 'रामका गुणसमूह जगत्‌के लिये मङ्गल है, मुक्तिका देनेवाला है और धन धर्मका गृह है'।

सदगुर ज्ञान बिराग जोग के। बिबुध बैद भव-भीम-रोग के॥ ३॥

अर्थ—ज्ञान, वैराग्य और योगके सद्‌गुरु हैं और संसाररूपी भयङ्कर रोगके लिये देवताओंके वैद्य अश्विनीकुमारके समान हैं॥ ३॥

नोट—१ *'सदगुर'* कहनेका भाव यह है कि (क) जैसे सद्‌गुरुके मिलनेसे सब भ्रम दूर होते हैं और यथार्थ बोध होता है, यथा—*'सदगुर मिलें जाहिं जिमि संसय भ्रम समुदाइ।'* (४। १७) वैसे ही इनका सम्यक् बोध श्रीरामगुणग्रामसे हो जाता है। (ख) 'ज्ञान, वैराग्य और योगसिद्धिप्राप्ति करानेमें सद्‌गुरुके समान रामचरित्र है अर्थात् सिद्धिजन्य फल इससे अनायास प्राप्त हो सकता है।' (सू० मिश्र) ['योग' से यहाँ 'भक्ति' को भी ले सकते हैं; क्योंकि ज्ञान, वैराग्य और भक्ति प्रायः साथ रहते हैं—ऐसा भी मत कुछ लोगोंका है।]

नोट—२(क) *'बिबुध बैद'* इति। त्वष्टाकी पुत्री प्रभा नामकी स्त्रीसे सूर्यभगवान्‌के दो पुत्र हुए जिनका नाम अश्विनीकुमार है। एक बार सूर्यके तेजको सहन करनेमें असमर्थ होकर प्रभा अपनी दो सन्तति यम और यमुना तथा अपनी छायाको छोड़कर चुपकेसे भाग गयी और घोड़ी बनकर तप करने लगी। इस छायासे भी सूर्यके दो सन्तति हुईं, शनि और ताप्ती। शनिने अपने भाई धर्मराजपर लात चलायी, तब धर्मराजने सूर्य-(पिता-) से कहा कि यह हमारा भाई नहीं हो सकता। सूर्यने ध्यान किया तो सब बात खुल गयी। तब सूर्य घोड़ा बनकर प्रभाके पास गये जहाँ वह घोड़ीरूपमें थी। इस संयोगसे दोनों कुमारोंकी उत्पत्ति हुई। इसलिये अश्विनीकुमार नाम पड़ा। ये देवताओंके वैद्य हैं। इन्होंने एक कुण्डमें जड़ी-बूटियाँ डालकर च्यवन ऋषिको उसमें स्नान कराया तो उनका सुन्दर रूप सोलह वर्षकी अवस्थाका हो गया। ऐसे बड़े वैद्य हैं। (ख) *'भव-भीम-रोग के'* इति। छोटे रोगके लिये छोटे वैद्य ही बस हैं। पर यह भीम रोग है, इसलिये इसके लिये भारी वैद्य भी कहा। (ग) श्रीकरुणासिन्धुजी *'बिबुध बैद'* का अर्थ धन्वन्तरि

भी करते हैं। (घ) भाव यह है कि भवरोगके वश सब जीव रोगी हो रहे हैं। जिस जीवको रामचरित प्राप्त हुआ उसके संसार-रोग (जन्म-मरण) नष्ट हो जाते हैं।

जननि जनक सिअराम प्रेम के। बीज सकल ब्रत धरम नेम के॥ ४॥

अर्थ—श्रीसीतारामजीके प्रेमके माता-पिता अर्थात् उत्पन्न, पालन और रक्षा करनेवाले हैं। सम्पूर्ण व्रत, धर्म और नियमोंके बीज हैं॥ ४॥

नोट—१ '*जननि जनक*' अर्थात् श्रीरामपदमें प्रीति उत्पन्न करके उसको स्थिर रखते हैं। जननि-जनकके सम्बन्धसे '*सिय*' और '*राम*' दोनों नामोंका दिया जाना यहाँ बहुत ही उत्कृष्ट हुआ है। '*जननि'''''प्रेमके*' हैं, इससे जनाया कि यदि चरित्रके पठन-श्रवणसे प्रेम उत्पन्न न हुआ तो निश्चय समझ लेना चाहिये कि हमारा चित्त चरित्रमें नहीं लगा। वस्तुतः हमने पढ़ा-सुना नहीं।

नोट— २ '*बीज*' इति। (क) जैसे वृक्ष बिना बीजके नहीं हो सकता, वैसे ही कोई भी व्रत, धर्म, नियम बिना इनके नहीं हो सकता। (ख) श्रीरघुनाथजीके प्रतिकूल जितने नियम-धर्म हैं वे सब निर्मूल हैं, निष्फल हैं। (रा० प्र०) (ग) जैसे बिना बीजका मन्त्र या यन्त्र सफल नहीं होता, वैसे ही रामचरितके बिना सम्पूर्ण व्रत, धर्म और नियम सफल नहीं होते। पुनः, (घ) श्रीरामजीने अपने चरितद्वारा समस्त व्रतों, धर्मों और नियमोंका पालन करके एक आदर्श स्थापित कर दिया है जिसके अनुसार सब लोग चलें, इसीसे 'चरित' को व्रतादिका 'बीज' कहा। यथा—'**धर्ममार्गं चरित्रेण**' (रा० पू० ता० १। ४)।

समन पाप संताप सोक के। प्रिय पालक परलोक लोक के॥ ५॥

अर्थ—पाप, सन्ताप और शोकके नाश करनेवाले हैं। इस लोक और परलोकके प्रिय पालक हैं॥ ५॥

नोट—१ (क) पाप जैसे कि परनिन्दा, परद्रोह, परदारामें प्रेम इत्यादि। संताप—दैहिक, दैविक, भौतिक ताप। शोक—जैसे कि प्रिय-वियोग, इष्टहानि इत्यादि। पाप कारण है, शोक-संताप उसके कार्य हैं। यथा—'***करहिं पाप पावहिं दुख भय रुज सोक बियोग।***' (७। १००) कारण और कार्य दोनोंके नाशक श्रीराम-गुणग्रामको बताया। (ख) पं० सू० प्र० मिश्र अर्थ करते हैं कि 'पापजन्य संताप ही शोक है, उसके नाशक हैं।' (ग) '*प्रिय पालक*' कहनेका भाव कि श्रीरामगुणग्राम बड़े प्रेमपूर्वक दोनों लोक बना देते हैं, इस लोकमें सब प्रकारके सुख देते हैं और अन्तमें सद्गति देते हैं, प्रभुकी प्राप्ति करा देते हैं।

सचिव सुभट भूपति-बिचार के। कुंभज लोभ-उदधि-अपार के॥ ६॥

अर्थ—विचाररूपी राजाके मन्त्री और अच्छे योद्धा हैं। लोभरूपी अपार समुद्रके सोखनेको अगस्त्यजी हैं॥ ६॥

नोट—१ '***सचिव सुभट भूपति-बिचार के***' इति। (क) राजाके आठ अङ्ग कहे गये हैं—१ स्वामी (राजा), २ अमात्य (मन्त्री), ३ सुहृद् (मित्र), ४ कोश, ५ राष्ट्र (देश-भूमि), ६ दुर्ग, ७ बल (सैन्य), और ८ राज्याङ्ग (प्रजाकी श्रेणियाँ, विभिन्न गुण-कर्मके पुरजन)। इनमेंसे मन्त्री और सेना ये दो अङ्ग प्रधान हैं। इनसे राज्य स्थिर रहता है। यदि राजाके सब अङ्ग छूट गये हों पर ये दो अङ्ग साथ हों तो फिर और सब भी सहज ही प्राप्त हो सकते हैं। इस ग्रन्थमें भी जहाँ-जहाँ राजाका वर्णन है वहाँ-वहाँ इन दोनों अङ्गोंको भी साथ ही कहा गया है। यथा—'***संग सचिव सुचि भूरि भट।***' (बा० २१४) '***नृप हितकारक सचिव सयाना....। अमित सुभट सब समर जुझारा॥***' (बा० १५४) इसी तरह सद्विचारोंके स्थित रखनेके लिये रामचरित्र मन्त्री और सुभटका काम देते हैं। मन्त्री राजाको मन्त्र (अच्छी सलाह) देते हैं, सुभट उसकी रक्षा करते हैं। मोह, अविवेक आदि राजाओंको जीतनेमें ये सुभट सहायक होते हैं। यथा—'***जीति मोह महिपाल दल''''''।***' (२। २३५) (ख) 'विचारको यहाँ भूपति कहनेका भाव यह है कि रामचरित्रमें विचार मुख्य है, रामकथापर विचार करनेसे लोभका नाश होता है। सद्विचारोंकी वृद्धि होती है।' (पं० रा० कु०) (ग) रामचरित-

विवेक राजाके मन्त्री इस तरह हैं कि 'श्रीराममन्त्रकी दृढ़ता कराते हैं और सुभट इस कारण हैं कि पापोंका क्षय करते हैं।' रामचरित्रसे पापका नाश होकर राम और रामचरित्रकी दृढ़ता होती है। (पं०)

नोट—२ *'कुंभज लोभ-उदधि-अपार के'* इति। समुद्रशोषणकी कथा स्कन्दपुराण नागरखण्ड अध्याय ३५ में इस प्रकार है कि कालेय दैत्यगण जब समुद्रमें छिप गये और नित्य रात्रिमें बाहर निकलकर ऋषियों-मुनियों आदिको खा डाला करते थे, देवता समुद्रके भीतर जाकर युद्ध न कर सकते थे। तब ब्रह्मादि देवताओंने यह सम्मतकर कि अगस्त्यजी ही समुद्रशोषणको समर्थ हैं, सब उनके पास चमत्कारपुर नामक क्षेत्रमें गये और उनसे समुद्रशोषणकी प्रार्थना की। उन्होंने कहा कि एक वर्षकी अवधि हमें दी जाय, इसमें योगिनियोंके विद्या-बलके आश्रित होकर हम समुद्रका शोषण कर सकेंगे। यथा—**'अहं संवत्सरस्यान्ते शोषयिष्यामि सागरम्। विद्याबलं समाश्रित्य योगिनीनां सुरोत्तमाः॥'** (२७) आप सब एक वर्ष बीतनेपर यहाँ आवें तब मैं आपका कार्य करूँगा। तब देवता चले गये और महर्षि अगस्त्यजीने यथोक्त विधिसे विशोषिणी नामक विद्याका आराधन प्रारम्भ किया। एक वर्षमें वह प्रसन्न हो गयी और वरदान देनेको उपस्थित हुई। अगस्त्यजीने माँगा कि 'आप मेरे मुखमें प्रवेश करें जिससे मैं समुद्रका शोषण कर सकूँ।' यथा—**'यदि देवि प्रसन्ना मे तदास्यं विश सत्वरम्। येन संशोषयाम्याशु समुद्रं देवि वाग्यतः॥'** (३३) तत्पश्चात् देवता भी आये और अगस्त्यजीने साथ जाकर समुद्रको सहजहीमें पी लिया। [पूर्वका प्रसङ्ग दोहा (३। ३) में देखिये।]

समुद्र-शोषणकी कथा महाभारत वनपर्व अ० १०३—१०५ तथा पद्मपुराण सृष्टिखण्डमें भी है, परन्तु इनमें महर्षि अगस्त्यजीका देवताओंकी प्रार्थना सुनकर तुरन्त समुद्रतटपर उनके साथ जाना और समुद्रको देखते-देखते चुल्लू लगाकर पी जाना लिखा है। कल्पभेदसे ऐसा सम्भव है।

ऐसा भी सुना जाता है कि अगस्त्यजीने **'रामाय रामचन्द्राय रामभद्राय'** ऐसा कहकर समुद्रको तीन आचमनमें पी लिया। इसीसे इनका नाम समुद्रचुलुक और पीताब्धि आदि भी है। विनयपत्रिकामें भी श्रीरामनामके प्रतापसे सोखना कहा है।

समुद्र-शोषणकी कथा ऐसी भी सुनी जाती है कि एक बार समुद्र किसी चिड़ियाके अण्डेको बहा ले गया तब वह पक्षी समुद्रतटपर आ अपनी चोंचमें समुद्रका जल भर-भरकर बाहर उलचने लगा कि मैं इसे सुखा दूँगा। दैवयोगसे महर्षि अगस्त्यजी वहाँ पहुँच गये। सब वृत्तान्त जाननेपर उन्हें दया आ गयी और उन्होंने **'रामाय रामचन्द्राय रामभद्राय'** कहकर जल सोख लिया।

ऐसा भी सुना जाता है कि एक बार आप समुद्रतटपर पूजन कर रहे थे। समुद्र आपकी पूजन-सामग्री बहा ले गया तब आपने कुपित हो उसे पी लिया। और फिर देवताओंकी प्रार्थनापर उसे भर भी दिया। यथा—***'रोक्यो बिन्ध्य सोख्यो सिंधु घटजहूँ नाम बल, हार्‌यो हिय खारो भयो भूसुर डरनि॥'*** (विनय० २४७) आनन्दरामायणमें लिखा है कि—**'पीतोऽयं जलधिः पूर्वं श्रुतं क्रोधादगस्तिना। मूत्रद्वाराद्बहिस्त्यक्तो यस्मात्क्षारत्वमागतः॥'** (बिलासकाण्ड सर्ग ९। २१) अर्थात् सुना है कि क्रोधसे कुम्भजजीने इसे पी लिया था और फिर मूत्रद्वारसे इसे भर दिया, इसीसे वह खारा हो गया।

नोट—३ *'लोभ उदधि……'* इति। (क) लोभको अपार समुद्र कहा; क्योंकि जैसे-जैसे लाभ होता जाता है तैसे-तैसे लोभ भी अधिक होता जाता है। इच्छाकी पूर्ति होनेपर भी यह नहीं जाता—***'जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई।'*** (६। १०१) (ख) रामचरितको अगस्त्यजीकी उपमा देनेका भाव यह है कि रामचरितसे सन्तोष उपजता है जिससे लोभ दूर हो जाता है, यथा—***'जिमि लोभहि सोखइ संतोषा।'*** (४। १६) (ग) पंजाबीजी यह शङ्का उठाते हैं कि 'कुम्भज ऋषिने समुद्र पी लिया, पर वह अब भी प्रकट है तो इसी तरह लोभ भी रामनामसे निवृत्त होनेपर भी रहा तो अविद्या बनी रही ?' और उसका समाधान यों करते हैं कि यहाँ दृष्टान्तका एक अङ्ग लिया है। अथवा, जैसे समुद्र देखनेमें आता है परन्तु पीनेके कामका नहीं, क्योंकि उसका जल खारा हो गया है वैसे ही विवेकियोंमें व्यवहारमात्र

लोभका आभास होता है। वह जन्मान्तरोंका साधक नहीं अर्थात् जन्मान्तरोंपर उसका प्रभाव न पड़ेगा। [इस कथनका आशय यह है कि वस्तुतः लोभका तो नाश ही हो गया, परन्तु प्रारब्धानुसार कुछ व्यवहार ऐसा होता है कि जिससे अज्ञानी लोग उनमें लोभादिकी कल्पना कर लेते हैं। वह प्रारब्धकर्म केवल भोगका निमित्त हो सकता है, पुनर्जन्मका नहीं, जैसा भर्जित बीज। भुना हुआ अन्न केवल उदरपूर्ति आदिके काममें आ सकता है पर वह बीजके काममें नहीं आ सकता। गीतामें स्थिरबुद्धि पुरुषोंके विषयमें भी जो ऐसा ही कहा गया है, यथा—'**आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्। तद्वत् कामा यं प्रविशन्ति सर्वे**·····(२। ७०)। (अर्थात् जैसे नाना नदियोंका जल समुद्रमें जाकर समा जाता है, उनसे समुद्र चलायमान नहीं होता वैसे ही स्थिरबुद्धि पुरुषके प्रति सम्पूर्ण भोग समाकर भी कोई विकार नहीं उत्पन्न करते;) वह दशा मानसके उपासकमात्रको सहज प्राप्त हो जाती है।

काम कोह कलिमल करिगन के। केहरि सावक जन मन बन के॥ ७॥

शब्दार्थ—**करिगन**=हाथियोंका समूह। **केहरि**=सिंह। **सावक**=बच्चा। **जन**=भक्त, दास।

अर्थ—भक्तजनोंके मनरूपी वनमें बसनेवाले कलियुगके विकाररूप काम, क्रोध हाथियोंके झुण्डके (नाश करनेके) लिये सिंहके बच्चेके समान हैं॥ ७॥

पं० रामकुमारजी—१ लोभ, काम और क्रोधको एकत्र कहा। क्योंकि ये तीनों नरकके द्वार हैं। यथा—'***काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ।***' (५। ३८) '**त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः। कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥**' (गीता १६। ३१) इन्हींके वश पाप होते हैं। इसीसे तीनोंके अन्तमें कलिमल कहा। कामादिसे पाप होते हैं और पापसे नरक होता है। इसलिये कार्य और कारण दोनोंका नाश कहा।

२-जिस वनमें सिंह रहता है वहाँ हाथी नहीं जाते। इसी तरह जिस जनके मनमें रामचरित्र रहते हैं, वहाँ कामादि विकार नहीं रहते और यदि वहाँ गये तो रामचरित्र उनका नाश कर देते हैं। **सावक**=किशोर सिंह, यथा—'***मनहु मत्त गजगन निरखि सिंह किसोरहिं चोप।***' (१। २६७)

नोट—१ '***केहरि सावक***' इति। सिंहके बच्चेको हाथीके झुण्डको भगानेमें विशेष उत्साह होता है। अतः श्रीरामचरितको '***सावक***' बनाया। (सु० द्विवेदीजी) पुनः '***सावक***' कहनेका भाव यह है कि बच्चा दिनोंदिन बढ़ता जाता है और काम-क्रोधादि कलिमल तो क्षीण होते जाते हैं। अतएव रामचरित्रपर इनका प्राबल्य नहीं होगा। सिंह और हाथीका स्वाभाविक वैर है, इसी तरह कामादिका रामचरित्रसे स्वाभाविक वैर है। (पाँ०) पुनः, चरितको शावक कहकर श्रीरामजीको सिंह जनाया।

नोट—२ काम-क्रोधका क्रम यों है कि पहले मनमें कामना उठती है, उसकी पूर्ति न होनेसे क्रोध होता है और '***क्रोध पापकर मूल***' है', यही कलिमल है।

अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के। कामद घन दारिद दवारि के॥ ८॥

शब्दार्थ-**अतिथि**=वह अभ्यागत या मेहमान जिसके आनेका समय निश्चित न हो या जो कभी न आया हो; यथा—'**दूरागतं परिश्रान्तं वैश्वदेव उपस्थितम्। अतिथिं तं विजानीयान्नातिथिः पूर्वमागतः॥**' अर्थात् जो दूरसे आया हो, थका हो और बलिवैश्वदेव कर्मके समय आ पहुँचे, वह 'अतिथि' कहा जाता है। परन्तु ऐसा होनेपर भी जो कभी पहले आ चुका हो वह 'अतिथि' नहीं है। **दवारि**=दावाग्नि। वह आग जो वनमें आप-ही-आप लग जाती है। =दावानल। **कामद**=मनमाँगा देनेवाला।

अर्थ—१ श्रीरामचरित्र त्रिपुर दैत्यके शत्रु शिवजीको अतिथिसम पूज्य और अतिप्रिय (एवं प्रियतम पूज्य अतिथिसम) हैं। दरिद्रतारूपी दावानल (को बुझाने) के लिये कामना पूर्ण करनेवाले मेघके समान हैं॥ ८॥

नोट—१ '***पूज्य प्रियतम***' इति। (क) 'पूज्यका भाव यह है कि अतिथिका किसी अवस्थामें त्याग नहीं होता है, वह सदा वन्द्य है, उसकी पूजा न करनेसे दोष होता है। यथा—'**अतिथिर्यस्य भग्नाशो**

गेहात्प्रतिनिवर्त्तते। स दत्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति॥ सत्यं तथा तपोऽधीतं दत्तमिष्टं शतं समाः। तस्य सर्वमिदं नष्टमतिथिं यो न पूजयेत्॥ दूरादतिथयो यस्य गृहमायान्ति निर्वृताः। स गृहस्थ इति प्रोक्तः शेषाश्च गृहरक्षिणः॥' (स्कन्दपु० ना० उ० १७६। ४—६) अर्थात् जिसके घरसे अतिथि निराश होकर लौट जाता है, उसे वह अपना पाप देकर और उसका पुण्य लेकर चला जाता है। जो अतिथिका आदर नहीं करता उसके सौ वर्षोंके सत्य, तप, स्वाध्याय, दान और यज्ञ आदि सभी सत्कर्म नष्ट हो जाते हैं। जिसके घरपर दूरसे प्रसन्नतापूर्वक अतिथि आते हैं, वही गृहस्थ कहा गया है। शेष सब लोग तो गृहके रक्षकमात्र हैं। (ख) अतिथिलक्षण मनुजीने यह कहा है—**'एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः। अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते॥'** (३। १०२) अर्थात् ब्राह्मण यदि एक रात्रि दूसरेके घरपर रहे तो वह अतिथि कहलायेगा। उसका रहना नियत नहीं है, इसीसे उसको अतिथि कहते हैं। इससे स्पष्ट है कि सम्मान्य पुरुषको भी अतिथि पूजनीय है तब मर्यादापुरुष श्रीशङ्करजीको 'प्रियतम' क्यों न होगा ? (सू० प्र० मिश्र) (ग) 'प्रतिक्षण श्रीरामजीके नये-नये चरित्रोंको हृदयमें अति प्रेमसे स्मरण करनेसे गुणग्राम श्रीमहादेवजीका प्रियतम पूज्य हुआ।' (सु० द्विवेदी) पुनः, (घ)—सभी अतिथि पूज्य होते हैं। उनमें जो ज्ञान-वयोवृद्ध होते हैं वे तो परम पूज्य हैं। प्रियतम (अतिशय प्रिय) कहकर जीवनधन होना जनाया। (ङ) बैजनाथजी कहते हैं कि रूप अतिथि है, नाम पूज्य है और लीला प्रियतम है। (परन्तु यहाँ तीनों विशेषण चरितहीके लिये आये हैं।)

अर्थ—२ श्रीत्रिपुरारिजीको श्रीरामचरित अतिथि, पूज्य और प्रियतम हैं। भाव यह कि मनसे प्रियतम है, कर्मसे पूज्य है और वचनसे अतिथिरूप है। (बै०)

नोट—२ *'कामद घन दारिद'*...... इति। (क) *'कामद'* कहनेका भाव कि श्रीरामचरित्रसे फिर कोई इच्छा शेष नहीं रह जाती। दरिद्री सब सम्पत्तिका आगार हो जाता है। (ख) —*'कामद घन'* का भाव कि जिस समय जो सुख दरिद्र चाहता है वह उसी समय देते हैं। यथा—*'मागें बारिद देहिं जल रामचंद्र के राज।'* (७। २३)

पं० रामकुमारजी—सामान्य जनोंको कहकर अब विशेष जनोंको कहते हैं। 'शिवजी रामचरितकी पूजा करते हैं और उसे प्राण-प्रिय मानते हैं। उससे कुछ कामना नहीं करते। इसलिये शिवजीके प्रति कुछ देना नहीं लिखा, औरोंको देते हैं सो आगे कहते हैं कि दारिद-दवारिके कामद घन हैं, सुकृतमेघरूप होकर सुखरूपी जल बरसाते हैं जिससे दारिद्र्य बुझता है।'

मंत्र महामनि बिषय ब्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के॥ ९॥

अर्थ—श्रीरामचरित विषयरूपी सर्प (का विष उतारने) के लिये मन्त्र और महामणि हैं। ललाटपर लिखे हुए कठिन बुरे अङ्कों अर्थात् दुर्भाग्यके मिटा देनेवाले हैं॥ ९॥

नोट—१ *'मंत्र महामनि'*...... इति। (क) पं० रामकुमारजी लिखते हैं कि 'यहाँ मन्त्र और महामणि दो की उपमा दीं। क्योंकि मन्त्रके सुननेसे या मणिके ग्रहण करनेसे विष दूर होता है। इसी तरह रामचरित दूसरेसे सुने अथवा आप धारण करे तो विषय-विष दूर हो जाता है। दो भाव दिखानेके लिये दो उपमाएँ दीं।'

मा० मा० कारका मत है कि 'शाबरमन्त्रका धर्म है कि गारुड़ी-मन्त्र जाननेवाला दूसरेको झाड़कर अच्छा कर सकता है, पर स्वयं अपनेको उस मन्त्रसे नहीं अच्छा कर सकता और महामणिका धर्म है कि जिसके पास हो उसको प्रथम तो सर्प डसता ही नहीं और डस भी ले तो उसे धोकर पीनेसे विष उतर जाता है, पर उस मणिसे वह दूसरेको अच्छा नहीं कर सकता। यहाँ दो उपमाएँ देकर जनाया कि वक्ताके लिये मणिवत् है और श्रोताओंके लिये मन्त्रवत् है। चरित्र सुनाना मन्त्रसे झाड़ना है और उसका 'आराधन, नेमयुक्त पाठ, नवाह, सम्पुट नवाह प्रायोगिक पाठ' करना मणिको स्वयं धोकर पीना है।' वे० भूषणजी इसपर कहते हैं कि 'परन्तु शास्त्रोंका कहना है कि मणि सबको अच्छा कर देती

है, यह नहीं कि जिसके पास हो उसीको प्रत्युत जिस किसी विषव्याप्य शरीरसे उसका स्पर्श हो जाय उसीका विष वह हरण कर ले। मानसमें भी कहा है—'*हरइ गरल दुख दारिद दहई।*' (२। १८४)

(ख) '*महा*' पद दीपदेहलीन्यायसे मन्त्र और मणि दोनोंके साथ है। (पं०)

(ग) रामायण-परिचर्याकार लिखते हैं कि 'विष हरनेवाले तीन हैं—मन्त्र, महौषधि और मणि। मन्त्रसे झाड़नेसे या मन्त्र-जपसे, महौषधिके लगाने या सेवनसे और मणिके स्पर्शसे सर्पका विष दूर होता है। यहाँ ये तीनों सूचित किये हैं।' (यहाँ 'महा' से वे महौषधिका ग्रहण समझते हैं।) इसी प्रकार रामचरित्र विषयसर्पका विष उतारनेके लिये तीनों प्रकारसे उत्तम है।' (यह भाव बैजनाथजीके आधारपर लिया हुआ जान पड़ता है।)

(घ) '*मणि*'—यह जहर-मुहरा कहलाता है, इसको घावपर औषधिरूपसे लगानेसे विष दूर होता है। सर्पमणिसे विष दूर होता है। यथा—'*अहि अघ अवगुन नहिं मनि गहई। हरइ गरल दुख दारिद दहई॥*' (२। १८४)

(ङ)—दूसरा भाव महामणिका यह है कि सर्पका विष तो मणिहीसे उतर जाता है और रामचरित तो महामणि है। इनके ग्रहणसे विष चढ़ने ही नहीं पाता। और पहिलेका चढ़ा हुआ हो तो वह भी उतर जाता है।

नोट—२ बैजनाथजी विषय-सर्पका रूपक यों देते हैं कि 'विषयमें मनका लगना सर्पका डसना है, कामना विष है, काममें हानि होनेसे क्रोध होता है। यही विष चढ़नेकी गर्मी है। क्रोधसे मोह होता है। यह मूर्छा (लहर) है, मोहमें आत्मस्वरूप भूल जाता है। यही मृत्यु है। श्रीरामगुणग्राम मन्त्र है, महौषधि है और मणि है। मन्त्रके प्रभावसे सर्प नहीं काट सकता और जिसको सर्पने डसा हो उसे मन्त्रसे झाड़कर फूँक डालनेसे विष उतर जाता है। श्रीरामनाम महामन्त्र है। इसके स्मरणसे विषय लगता ही नहीं और जो पूर्वका लगा है वह छूट जाता है। पुनः, घृत, मधु, मक्खन, पीपल छोटी, अदरक, मिर्च, सेंधानमक इन सबको मिलाकर औषधि बनाकर खानेसे भी विष उतर जाता है। यहाँ प्रभुकी लीला औषधि है जिसके श्रवणमात्रसे विषका नाश हो जाता है। पुनः, मणि, हीरा आदिके स्पर्शसे भी विष नहीं व्यापता। यहाँ श्रीरामरूप-मणि है। श्रीरामरूपके प्रभावसे विषय व्यापता ही नहीं।'

नोट—३ (क) 'विषय-सेवनसे भालमें कुअङ्क पड़ते हैं। इसलिये प्रथम विषयका नाश कहा तब भालके कुअङ्क मेटना'। (ख) '*कठिन कुअंक*' अर्थात् जो मिट न सकें। कठिन कहा, क्योंकि विधिके लिखे अङ्क कोई नहीं मिटा सकता। यथा—'*कह मुनीस हिमवंत सुनु जो बिधि लिखा लिलार। देव दनुज नर नाग मुनि कोउ न मेटनिहार॥*' (१।६८) '*बिधि कर लिखा को मेटनिहारा*', '*तुम्ह ते मिटिहि कि बिधि के अंका*' इत्यादि। श्रीरामचरित ऐसे कठिन कर्मबन्धनको भी मिटा देता है। शुकदेवजीने भी यही कहा है; यथा—'पुरुषो रामचरितं श्रवणैरुपधारयन्। आनृशंस्यपरो राजन्कर्मबन्धैर्विमुच्यते॥' (भा० ९। ११। २३) पुनः, '*कठिन कुअंक*'= पूर्व जन्मोंके बुरे कर्मोंकी फलस्वरूप ललाटरेखाएँ। इन अङ्कोंके मिटानेका भाव विनय-पत्रिकाके—'*भाग है अभागेहूको*' (पद ६९) और '*बाम बिधि भाल हू न करमदाग दागिहै॥*' (७०) से मिलता है। पुनः, देखिये चरवारिके ठाकुरकी कन्याको रामचरितमानससे ही पुत्र बनाया गया था, मृतकको जिलाया गया था। गोस्वामीजीकी जीवनीसे स्पष्ट है।

हरन मोह तम दिनकर-कर से। सेवक-सालि-पाल जलधर से॥ १०॥

अर्थ—मोह-अन्धकारके हरनेको सूर्य-किरणके समान हैं। सेवकरूपी धानके पालन करनेको मेघ-समान हैं॥ १०॥

टिप्पणी—मोहके नाशमें बड़ा परिश्रम करे तो भी वह नहीं छूटता, यथा—'*माधव! मोह-फाँस क्यों टूटै।*' (वि० ११५) रामचरित सुननेसे विना परिश्रम ही अज्ञानका नाश होता है, यथा—'*उएउ भानु बिनु श्रम तम नासा।*' (१। २३९) सूर्य-किरणमें जल है; यथा—'आदित्याजायते वृष्टिः'। सेवक-शालिको मेघकी

नाईं पालते हैं, शालि मेघके जलसे पलता है, नहीं तो सूख जाता है। वह स्थावर है। इसी तरह सेवक रामचरितसे जीते हैं, रामचरितके भरोसे हैं। पुनः, जैसे मेघ और भी अन्नोंको लाभकारी है पर 'शालि' का तो यही जीवन है (भाव यह कि और अन्न तो अन्य जलसे भी हो जाते हैं) वैसे ही जो सेवक नहीं हैं रामचरित उनका भी कल्याण करता है पर सेवकका तो जीवन ही है। ('सेवक' को शालि कहनेके भाव *'तुलसी सालि सुदास'* दोहा १९में देखिये।)

अभिमत दानि देव तरु बर से। सेवत सुलभ सुखद हरिहर से॥ ११॥

शब्दार्थ—**अभिमत**=मनमाँगा, मनमें चाही हुई वस्तु, वाञ्छित पदार्थ। **देवतरु**=कल्पवृक्ष। यह वृक्ष क्षीरसागर मथनेपर निकला था, चौदह रत्नोंमेंसे एक यह भी है। यह वृक्ष देवताओंके राजा इन्द्रको दिया गया था। इस वृक्षके नीचे जानेसे जो मनमें इच्छा उठती है वह तत्काल पूरी होती है। यथा—*'देव देवतरु सरिस सुभाऊ। सनमुख बिमुख न काहुहि काऊ॥ जाइ निकट पहिचानि तरु छाँह समन सब सोच। माँगत अभिमत पाव जग राउ रंकु भल पोच॥'* (अ० २६७) *'रामनाम कामतरु जोइ जोइ माँगिहै। तुलसिदास स्वारथ परमारथ न खाँगिहै॥'* (विनय० ७०) यह अर्थ, धर्म और कामका देनेवाला है। इसका नाश कल्पान्ततक नहीं होता। इसी प्रकारका एक पेड़ मुसलमानोंके स्वर्गमें भी है जिसे 'तूबा' कहते हैं। कल्पवृक्षके फूल सफेद होते हैं।

अर्थ—(श्रीरामचरित) वाञ्छित फल देनेमें श्रेष्ठ कल्पवृक्षके समान हैं। और सेवा करनेसे हरिहरके समान सुलभ और सुखद हैं॥ ११॥

नोट—१ रामचरितको श्रेष्ठ कल्पवृक्ष सम कहा। क्योंकि कल्पवृक्षके नीचे यदि बुरी वस्तुकी चाह हो तो बुरी ही मिलेगी। एक कथा है कि एक मनुष्यने जाकर सोचा कि यहाँ पलंग होता, बिछौना आदि होता तो लेटते, भोजन करते, भोग-विलास करते। यह सब इच्छा करते ही उसको मिला। इतने-हीमें उसके विचारमें आया कि कहीं यहाँ सिंह न आ जाय और हमें खा न डाले। विचारके उठते ही सिंह वहाँ पहुँचा और उसे निगल गया। रामचरितमें वह अवगुण नहीं है, इसीलिये यहाँ *'बर'* पद दिया है। पुनः कल्पवृक्ष अर्थ, धर्म और काम तीन ही फल दे सकता है, मोक्ष नहीं। और रामचरित चारों फल देते हैं; अतएव इन्हें *'देव तरु बर'* कहा।

टिप्पणी—१ ऊपर चौपाईमें सेवकको शालिकी उपमा दी। धान स्थावर है। इससे रामचरितको मेघकी उपमा दी कि सेवकके पास जाकर उसको सुख दें। अब रामचरितको वृक्षकी उपमा दी, वृक्ष स्थावर है। इसलिये सेवकका वहाँ जाकर सेवन करना कहा। दोनों तरहकी उपमा देकर सूचित किया है कि श्रीरामचरित दोनों तरहसे सेवकको सुख देते हैं।

नोट—२ *'सुलभ सुखद हरिहर से'* इति। भगवान् स्मरण करते ही दुःख हरते हैं। द्रौपदी, गजेन्द्र आदि इसके उदाहरण हैं। 'हरि' पद भी यही सूचित करता है। पुनः, सुलभता देखिये कि सम्मुख होते ही, प्रणाम करते ही, अपना लेते हैं। यथा—*'सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥'* (सुं० ४४) *'उठे राम सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा॥'* (अ० २४०) ऐसे सुलभ। पुनः, हरिहरसे सुखद हैं अर्थात् मुक्ति-भुक्तिके देनेवाले हैं। ऐसे ही सुलभ भगवान् शङ्कर हैं, यथा—*'सेवा, सुमिरन, पूजिबौ, पात आखत थोरे।'*—(वि० ८), *'औढर-दानि द्रवत पुनि थोरें। सकत न देखि दीन करजोरे॥'* (वि० ६) ☞श्रीरामचरितमें सुलभता यह है कि चौपाई-दोहा पढ़नेमें परिश्रम नहीं। (ख) *'हरिहर'* की ही उपमा दी और किसी देवताओंकी नहीं। इसका भाव बैजनाथजी यह लिखते हैं कि अन्य देवताओंकी सेवामें विघ्न और बाधाएँ होती हैं और वे विशेष सुख भी नहीं दे सकते। हरिहर लोक-परलोक दोनोंका सुख देते हैं। यहाँ 'सपन्ति' प्रयोजन है। *'सुखद हरिहर से'*—हरि और हर दोनों शब्दोंका अर्थ एक है सम्पूर्ण क्लेशों वा पापोंको हरनेवाला। 'हरति अशेषक्लेशानि दुरितानि वेति हरिर्हरो

वा।' 'जबतक पाप व क्लेश रहते हैं तबतक सुख नहीं मिल सकता। अत: कहा कि *'सेवत सुलभ सुखद हरिहर से।'*

मा० पत्रिका—'जो वस्तु सुगमतासे मिलती है उसका आदर थोड़ा होता है; पर रामचरितमें यह विशेषता है कि इसकी प्राप्ति सत्संगतिद्वारा सुगमतासे होती है। यह फल देनेमें शिव और विष्णुसम है।'

सुधाकर द्विवेदीजी—हरिहर थोड़ी ही सेवामें शीघ्र मिल जाते हैं, वैसे ही गुणग्राम भी शीघ्र सन्तजनोंकी कृपासे प्राप्त होकर सुख देने लगता है।

सुकबि सरद नभ मन उडगन से। राम भगत जन जीवन धन से॥ १२॥

अर्थ—(श्रीरामचरित) सुकविरूपी शरद्-ऋतुके मनरूपी आकाश (को सुशोभित करने) के लिये तारागण-समान हैं। रामभक्तोंके तो जीवन-धन (अथवा जीवन और धनके)सदृश ही हैं॥ १२॥

नोट—१ (क) *'सरद नभ मन'* इति। शरद्-ऋतुकी रातमें आकाश निर्मल रहता है, इसलिये उस समय छोटे-बड़े सभी तारागण देख पड़ते हैं, उनके उदय होनेसे आकाशकी बड़ी शोभा हो जाती है। इसी तरह जिन कवियोंके मन स्वच्छ हैं उनके मनमें छोटे-बड़े सभी निर्मल रामचरित उदय होकर उनकी शोभा बढ़ाते हैं। (ख)—'तारागणकी उपमा देकर रामचरितका अनन्त और अनादि होना जनाया। पुन:, यह भी सूचित किया है कि रामचरित कवियोंके बनाये नहीं हैं, उनके हृदयमें आते हैं, जैसे तारागण आकाशके बनाये नहीं होते, केवल वहाँ उदय होते हैं।' यथा—*'हर हिय रामचरित सब आए।'* (१। १११) (ग)—*'सुकबि'* से परमेश्वरके चरित्र गानेवाले कवि यहाँ समझिये। (पं० रा० कु०) वा, भगवान्‌के यशके कथनमें प्रेम होनेसे इनको *'सुकबि'* कहा और परमभक्त न होनेसे इन्हें तारागणकी उपमा दी, नहीं तो पूर्णचन्द्रकी उपमा देते। (मा० मा०)

सकल सुकृत फल भूरि भोग से। जग हित निरुपधि साधु लोग से॥ १३॥

अर्थ—(श्रीरामचरित) सारे पुण्योंके फलके भोगसमूहके समान हैं। जगत्‌का एकरस हित करनेमें सन्तोंके समान हैं॥ १३॥

टिप्पणी—*'सकल सुकृत'* का फल भी भारी ही होना चाहिये। इसीसे कहते हैं कि फल बड़ा है। उसी फलके भोग-सम हैं। [ये *'भूरि'* को फलका विशेषण मानते हैं। करुणासिन्धुजी भी ऐसा ही अर्थ करते हैं।]

नोट—१ *'भूरि'* पद *'फल'* और *'भोग'* के बीचमें है, इससे वह दीपदेहलीन्यायसे दोनोंमें लगाया जा सकता है। भाव यह है कि जो फल समस्त पुण्योंके एकत्र होनेसे भोगनेको मिल सकता है वह केवल रामचरितसे प्राप्त हो जाता है। समस्त सुकृतोंका फल श्रीरामप्रेम है, यथा—*'सकल सुकृत फल रामसनेहू।'* (१। २७) अत: यह भी भाव निकलता है कि इससे भरपूर श्रीरामस्नेह होता है। (ख)—ऊपर चौपाइयोंमें अपने जनको हितकर होना कहा, अब कहते हैं कि इससे जगन्मात्रका हित है। (ग) *'निरुपधि'* (निरुपाधि)=निर्बाध, एकरस।' (१। १५। ४) देखिये।

मा० पत्रिका—जितने अच्छे काम हैं उनका सबसे अधिक फलभोग स्वर्गसुखभोग है, उससे भी अधिक फल रामचरित्र-श्रवण-मनन है। अधिक इससे है कि पुण्य क्षीण होनेपर स्वर्गसुखका नाश होकर पुन: मर्त्यलोकमें आना पड़ता है और रामचरित्रके श्रवण-मननसे अक्षयलोककी प्राप्ति होती है *'जहँ ते नहि फिरे।'*

बैजनाथजी लिखते हैं कि *'निरुपधि'* इससे कहा कि रामचरित पढ़नेका अधिकार सबको है।

नोट—२ *'साधु लोग से'* इति। अर्थात् निस्स्वार्थ कृपा करते हैं, यथा—*'हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥'* चाहे लोग उनकी सेवा-पूजा करें वा न करें, एक बार भी उनका सङ्ग, स्पर्श, दर्शन आदि होनेसे उनका कल्याण हो जाता है।

सेवक मन मानस मराल से। पावन गंग तरंग माल से॥ १४॥

अर्थ—(श्रीरामचरित) सेवकके मनरूपी मानस-सरोवरके लिये हंसके समान हैं। पवित्र करनेमें गङ्गाजीकी लहरोंके समूहके समान हैं॥ १४॥

☞ मिलान कीजिये—*'कबि कोबिद रघुबर चरित मानस मंजु मराल।'* (१। १४) से। हंस मानसमें रहते हैं, विहार करते हैं, यथा—*'जहँ तहँ काक उलूक बक मानस सकृत मराल।'* (अ० २८१) *'सुरसर सुभग बनज बनचारी। डाबर जोगु कि हंसकुमारी॥'* (अ० ६०) मरालकी उपमा देकर सेवकका रामचरित्रसे नित्य सम्बन्ध दिखाया। दोनोंकी एक-दूसरेसे शोभा है। चरित इनके मनको छोड़कर अन्यत्र नहीं जाते।

नोट—१ पंजाबीजी लिखते हैं कि गङ्गाजीकी सब तरङ्गें पावन हैं, वैसे ही श्रीरामचन्द्रजीके सब चरित्र पावन हैं। २—पं० रामकुमारजी कहते हैं कि जैसे गङ्गाकी तरङ्गें अमित हैं वैसे ही रामचरित अनन्त हैं। पुनः, जैसे गङ्गासे तरङ्ग वैसे ही श्रीरामचन्द्रजीसे रामचरित और जैसे *'गंग तरंग'* अभेद वैसे ही राम और रामचरितमें अभेद सूचित किया।

दोहा—कुपथ कुतरक कुचालि कलि कपट दंभ पाषंड।
दहन रामगुनग्राम जिमि इंधन अनल प्रचंड॥ ३२ (क)॥

शब्दार्थ—कुपथ=कुमार्ग=वेदोंने जो मार्ग बतलाये हैं उनको छोड़ अन्य मार्ग, यथा—**'चलत कुपंथ बेदमग छाँड़े॥'** (१। १२) **कुचालि**=बुरा चाल-चलन जैसे जुआ खेलना, चोरी करना।=खोटे कर्म करना। **कुतरक** (कुतर्क)=व्यर्थ या बेढंगी दलीलें करना, जैसे 'राम' परमेश्वर होते तो घर बैठे ही रावणको मार डालते, अवतारकी क्या ज़रूरत थी। परलोक किसने देखा है, इत्यादि। तर्क—**'आगमस्याविरोधेन ऊहनं तर्क उच्यते।'** (अमृतनादोपनिषद् १७) अर्थात् वेदसे अविरुद्ध (शास्त्रानुकूल) जो ऊहापोह (शङ्का-समाधान) किया जाता है उसे 'तर्क' कहते हैं। पुनः, तर्क=अपूर्व उत्प्रेक्षा। यथा—**'अपूर्वोत्प्रेक्षणं तर्कः'** (अमर०, विवेक-टीका १। ५। ३) अर्थात् अपूर्व रीतिसे और वस्तुमें और कहना। कुतर्क—पवित्र पदार्थमें पाप निकालना, उत्तमको निकृष्ट करके दिखाना, युक्तिसे बड़ोंकी निन्दा करना, सत्कर्म करनेसे रोकना, इत्यादि सब कुतर्क है। (बै०) **कलि**=कलियुग। मानस-परिचारिकाकार और पंजाबीजी इसका अर्थ यहाँ 'कलह' करते हैं।

अर्थ—कुमार्ग, बुरे तर्क, कुचाल और कलिके (वा, कलह एवं) कपट-दम्भ-पाखण्डरूपी ईंधनको जलानेके लिये श्रीरामचन्द्रजीके गुणसमूह प्रचण्ड अग्निके समान हैं॥ ३२ (क)॥

नोट—*'कपट' 'दंभ' 'पाखंड'* में थोड़ा-थोड़ा अन्तर है। (क) कपटमें ऊपरसे कुछ और भीतरसे कुछ और होता है। अपना कार्य साधनेके लिये हृदयकी बातको छिपाये रहना, ऊपरसे मीठा बोलना, भीतरसे छुरी चलानेकी सोचना इत्यादि कपट है। यथा—*'कपट सनेह बढ़ाइ बहोरी। बोली बिहँसि नयन मुँह मोरी॥'* (अ० २७) *'लखहिं न भूप कपट चतुराई।'* (२। २७) *'जौं कछु कहौं कपट करि तोही। भामिनि राम सपथ सत मोही॥'* (२। २६) कपट हृदयसे होता है। (ख) औरोंके दिखानेके लिये झूठा आडम्बर धारण करना जिससे लोगोंमें आदर हो। इस ऊपरके दिखावके बनानेको 'दम्भ' कहते हैं। जैसे साधु हैं नहीं, पर ऊपरसे कण्ठी-माला-तिलक धारण कर लिया या मूँड़ मुड़ाय गेरुआ वस्त्र पहिन लिया जिससे लोग वैरागी या संन्यासी समझकर पूजें, यथा—*'नाना बेष बनाइ दिवस निसि पर बित जेहि तेहि जुगुति हरौं।'* (वि० १४१) धार्मिक कार्योंमें अपनी प्रसिद्धि करना भी दम्भ है। **'दभ्यते अनेन दम्भः।'** (ग)—'पाखण्डी'=दुष्ट तर्कों और युक्तियोंके बलसे विपरीत अथवा वेद-विरुद्ध मतके स्थापन करनेवाले। नास्तिकादि। यथा—*'हरित भूमि तृन संकुल समुझि परहिं नहिं पंथ। जिमि पाखंड बाद ते गुप्त होहिं सदग्रंथ॥'* (कि० १४) (घ)—अथवा कपट मनसे, दम्भ कर्मसे और पाखण्ड वचनसे होता है, यह भेद है। **प्रचंड**=प्रज्वलित, जिससे खूब ज्वालाएँ निकलें।

दोहा—रामचरित राकेसकर, सरिस सुखद सब काहु।
सज्जन कुमुद चकोर चित, हित बिसेषि बड़ लाहु॥ ३२ (ख)॥

शब्दार्थ—'**कुमुद**'=कुमुदिनी, कुँई, कोईं, कोकाबेली। '**चकोर**'=एक प्रकारका बड़ा पहाड़ी तीतर जो नेपाल, नैनीताल आदि स्थानों तथा पंजाबके पहाड़ी जङ्गलोंमें बहुत मिलता है। इसके ऊपरका रंग काला होता है, इसकी चोंच और आँखें लाल होती हैं। यह पक्षी झुण्डोंमें रहता है और वैशाख-ज्येष्ठमें बारह-बारह अण्डे देता है। भारतवर्षमें बहुत कालसे प्रसिद्ध है कि यह चन्द्रमाका बड़ा भारी प्रेमी है और उसकी ओर एकटक देखा करता है, यहाँतक कि वह आगकी चिनगारियोंको चन्द्रमाकी किरणें समझकर खा जाता है। कवि लोगोंने इस प्रेमका उल्लेख अपनी उक्तियोंमें बराबर किया है। (श० सा०)

अर्थ—श्रीरामचरित पूर्णिमाके चन्द्रमाकी किरणोंके समान सब किसीको एक-सा सुख देनेवाले हैं। (परन्तु) सज्जनरूपी कोकाबेली और चकोरके चित्तको तो विशेष हितकारी और बड़े लाभदायक हैं॥ ३२ (ख)॥

नोट—१ '*सरिस*' पद दीपदेहली है। 'चन्द्रकिरण सरिस' और 'सरिस सुखद' हैं। सबको सरिस सुखद है और सज्जन-कुमुद-चकोरको विशेष सुखद। चन्द्रमासे जगत्‌का हित है, यथा—'*जग हित हेतु बिमल बिधु पूषन*' पर कुमुद और चकोरका विशेष हित है, वैसे ही यह चरित सबको सुखदाता है, पर सज्जनोंको उससे विशेष सुख प्राप्त होता है।

टिप्पणी—१ सज्जनको कुमुद और चकोर दोनोंकी उपमा देकर सूचित करते हैं कि—(क) सज्जन दो प्रकारके हैं—एक कुमुदकी तरह स्थावर हैं अर्थात् प्रवृत्तिमार्गमें हैं, दूसरे चकोरकी तरह जङ्गम हैं अर्थात् निवृत्तिमार्गमें हैं अथवा (ख) बड़ा हित और बड़ा लाभ दो बातें दिखानेके लिये दो दृष्टान्त दिये। चन्द्रमासे सब ओषधियाँ सुखी होती हैं, रहा कुमुद सो उसको विशेष सुख है, उसमें उसका अत्यन्त विकास होता है, यह कुमुदका बड़ा हित है। चकोरको अमृतकी प्राप्तिका बड़ा लाभ है, चन्द्रमासे अमृतका लाभ सबको है, परन्तु इसे विशेषरूपसे है जैसा कहा है—'*रामकथा ससि किरन समाना। संत चकोर करहिं जेहि पाना॥*' (१। ४७) सन्त इसे सदा अमृतकी तरह पान करते हैं, यथा—'*नाथ तवानन ससि स्रवत कथा सुधा रघुबीर। श्रवन पुटन्हि मन पान करि नहिं अघात मति धीर॥*' (उ० ५२) इससे बड़ा लाभ यह है कि त्रिताप दूर होते हैं तथा मोह दूर होता है जिससे सुख प्राप्त होता है, यथा—'*ससिकर सम सुनि गिरा तुम्हारी। मिटा मोह सरदातप भारी॥''''' रामसरूप जानि मोहिं परेऊ॥ नाथकृपा अब गयउ बिषादा। सुखी भयउँ प्रभु चरन प्रसादा॥*' (बा० १२०)।

नोट—२ बैजनाथजी लिखते हैं कि 'नवधा भक्तिवाले सज्जन कुमुद हैं। इनका विशेष हित यह है कि देखते ही मन प्रफुल्लित हो जाता है और प्रेमा-परा भक्तिवाले सज्जन चकोर हैं जो टकटकी लगाये देखते ही रह जाते हैं—'*''''निमेष, न लावहिं*' अथवा अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग दो प्रकारके सज्जन सूचित किये।'

नोट—३ पंजाबीजी लिखते हैं कि 'चकोरको बड़ा लाभ यह है कि वह अग्नि भक्षण कर लेता है, उसमें भी सुखी रहता है। इसी तरह ज्ञानवानोंको माया-अग्नि-अङ्गीकृत भी नहीं मोहती' यह महान् लाभ है।

टिप्पणी—२ रामकथा-माहात्म्यद्वारा ग्रन्थकार उपदेश दे रहे हैं कि कथामें मन, बुद्धि और चित्त लगावे अर्थात् (क) कथासे मनको प्रबोध करे, यथा—'*मोरे मन प्रबोध जेहि होई।*' (ख) बुद्धिके अनुसार कथा कहे। यथा—'*जस कछु बुधि बिबेक बल मोरे। तस कहिहउँ हिय हरि के प्रेरे॥*' (ग) कथामें चित्त लगावे, यथा—'*राम कथा मंदाकिनी चित्रकूट चित चारु।*'

इसी तरह रामचरित-माहात्म्यमें श्रीगोस्वामीजीने दिखाया है कि यह भक्तके मन, बुद्धि और चित्तका उपकार करते हैं—(क) मनमें बसते हैं, यथा—'*सेवक मन मानस मराल से।*' (ख) बुद्धिको शोभित करते

हैं, यथा—*'संत सुमति तिय सुभग सिंगारू।'* (ग) चित्तको सुख देते हैं, यथा—*'सज्जन कुमुद चकोर चित हित बिसेषि बड़ लाहु।'*

टिप्पणी—३ यहाँ बताया है कि—(क) कथामें मन, चित्त और बुद्धि तीनों लगते हैं, यथा—*'थोरेहि महँ सब कहउँ बुझाई। सुनहु तात मति मन चित लाई॥'* (अ०१५) दार्शनिक दृष्टिसे ये तीनों भिन्न-भिन्न हैं। संकल्प-विकल्प करना मनका धर्म, निश्चय करना बुद्धिका और चिन्तन करना चित्तका धर्म है। (ख)—सज्जन ही इन तीनोंको कथामें लगाते हैं, इसीसे इन तीनोंके प्रसङ्गमें सज्जनहीको लिखा है, यथा—*'सेवक मन मानस""।' 'संत सुमति""' और 'सज्जन कुमुद चकोर चित""।'* और, (ग)—रामकथा-माहात्म्य तथा रामचरित-माहात्म्य दोनोंको चित्तहीके प्रसङ्गसे समाप्त किया है, यथा—*'राम कथा मंदाकिनी चित्रकूट चित""'* और *'सज्जन कुमुद चकोर चित""।'* क्योंकि कथा चित्तहीतक है।

नोट—४ कोई-कोई महानुभाव (मा० प०, गा० मा०, नंगेपरमहंसजी, पाँ०) 'चकोर'को 'चित्त'की और 'कुमुद'को सन्तकी उपमा मानते हैं। इस प्रकार उत्तरार्धका अर्थ यह है—

अर्थ—२ सज्जनरूपी कुमुद और उनके चित्तरूपी चकोरको विशेष हितकर और बड़ा लाभदायक है।

नोट—इस अर्थके अनुसार भाव यह है कि (क) जैसे चन्द्रदर्शनके बिना चकोरको शान्ति नहीं होती एवं रामचरितके बिना *'जियकी जरनि'* नहीं जाती है। जैसे चन्द्रदर्शनसे कुमुद प्रफुल्लित होता है वैसे ही रामचरित्रद्वारा सन्तहृदय विकसित होता है। (मा० प०) (ख)—'चन्द्रकिरणसे कुमुद प्रफुल्लित और वृद्धिको प्राप्त होता है वैसे ही रामचरित सज्जनोंको प्रफुल्लित और रामप्रेमकी वृद्धि करता है। चन्द्रकिरणें चकोरको नेत्रद्वारा पान करनेसे अन्तस्में शीतलता पहुँचाकर आनन्द देती हैं, उसी तरह सज्जनोंके चित्तको श्रीरामचरित-श्रवणद्वारा पान करनेसे शीतलतारूप श्रीरामभक्ति प्रदान कर उनके उष्णरूप त्रितापको दूर करता है, उसी आनन्दमें सज्जनोंका चित्त चकोरकी तरह एकाग्र हो जाता है।' (नंगे परमहंसजी)

श्रीनंगेपरमहंसजीने चित्त-चकोरका प्रमाण—*'स्वाति सनेह सलिल सुख चाहत चित चातक सो पोतो'* (विनय०), यह दिया है और सज्जन-कुमुदका *'रघुबरकिंकर कुमुद चकोरा'* यह प्रमाण दिया है। परन्तु चातकका अर्थ 'चकोर' नहीं है और दूसरा प्रमाण पं० रामकुमारजीके अर्थका ही पोषक है। सन्तकी उपमा चकोरसे अन्यत्र भी दी गयी है, यथा—*'रामकथा ससि किरन समाना। संत चकोर करहिं जेहि पाना॥'* (१। ४६)

अर्थ—३ सज्जनोंके चित्तरूपी कुमुद और चकोरके लिये विशेष हित""। (रा० प्र०)

****

श्रीरामनाम और श्रीरामचरितकी एकता

श्रीरामचरित	श्रीरामनाम
३१ (४) *निज संदेह मोह भ्रम हरनी।*	*बिनु श्रम प्रबल मोह दल जीती* ॥२५॥ (७)
३१ (५) *बुधबिस्राम सकल जन रंजनि।*	*फिरत सनेह मगन सुख अपने* ॥२५॥ (८)
रामकथा कलि कलुष बिभंजनि॥	*नाम सकल कलि कलुष निकंदन* ॥२४॥ (८)
३१ (६) *रामकथा कलि पन्नग भरनी।*	*कालनेमि कलि कपट निधानू।*
	नाम सुमति समरथ हनुमानू ॥२७॥ (८)
पुनि पावक बिबेक कहँ अरनी॥	*हेतु कृसानु भानु हिमकर को* ॥१९॥ (१)
३१ (७) *रामकथा कलि कामद गाई।*	*रामनाम कलि अभिमत दाता* ॥२७॥ (६)
सुजन सजीवन मूरि सुहाई॥	*कालकूट फल दीन्ह अमी को* ॥१९॥ (८)
३१ (८) *सोइ बसुधातल सुधातरंगिनि।*	*स्वाद तोष सम सुगति सुधा के॥* २०॥ (७)
	नाम सुप्रेम पियूषह्रद॥ २२, *धन्यास्ते*
	कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम्॥ (कि० मं० २)

३१ (९) भवभंजनि भ्रम भेक भुअंगिनि।	भवभय भंजन नाम प्रतापू ॥२४॥ (६)
३१ (९) साधु बिबुध कुल हित गिरिनंदिनि॥	सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी। नाम प्रसाद"" ॥२६॥ (२)
३१ (१०) बिस्वभार भर अचल छमा सी।	कमठ सेष सम धर बसुधा के ॥२०॥ (७)
३१ (११) जीवनमुक्ति हेतु जनु कासी।	कासी मुकुति हेतु उपदेसू ॥१९॥ (३)
३१ (१२) तुलसिदास हित हिय हुलसी सी।	राम लखन सम प्रिय तुलसीके॥२०॥ (३)
३१ (१३) सिवप्रिय मेकल सैल सुता सी।	नाम प्रभाउ जान सिव नीको॥१९॥ (८)
३१ (१३) सकल सिद्धि सुख संपति रासी।	होहिं सिद्ध अनिमादिक पाये॥२२॥ (४) भगत होहिं मुद मंगल बासा॥२४॥ (२)
३१ (१४) रघुपति भगति प्रेम परमिति सी।	सकल कामना हीन जे, रामभगति रस लीन। नाम सुप्रेम पियूष ह्रद तिन्हहुँ किए मन मीन॥ २२॥
३२ (१) रामचरित चिन्तामनि चारू।	राम नाम मनि दीप धरु"॥२१॥
संत सुमति तिय सुभग सिंगारू॥	भगति सुतिय कल करन बिभूषन॥२०॥ (६)
३२ (२) जग मंगल गुन ग्राम राम के	मंगल भवन अमंगल हारी।"" नाम जपत मंगल दिसि दसहू॥२८॥ (१)
दानि मुकुति धन धरम धाम के॥	भए मुकुत हरिनाम प्रभाऊ॥२६॥ (७)
३२ (३) बिबुध बैद भव भीम रोग के।	जासु नाम भव भेषज हरन घोर त्रयसूल॥ (उ० १२४)
३२ (४) जननि जनक सियराम प्रेम के।	सुमिरिय नाम"। आवत ह्रदय सनेह बिसेषे॥ २१॥ (६)
बीज सकल ब्रत धरम नेम के॥	सकल सुकृत फल राम सनेहू॥२७॥ (२)
३२ (५) समन पाप संताप सोक के।	नाम प्रसाद सोच नहिं सपने॥२५॥ (८)
प्रिय पालक परलोक लोक के॥	हित परलोक लोक पितु माता॥२७॥ (६) लोक लाहु परलोक निबाहू॥२०॥ (२)
३२ (७) कामकोह कलिकल करिगन के।	रामनाम नरकेसरी, कनककसिपु कलिकाल। जापक
केहरि सावक जन मन बन के॥	जन प्रह्लाद जिमि पालिहि दलि सुरसाल॥ ७॥
३२ (८) अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के।	रामचरित सतकोटि महँ लिए महेस जिय जानि ॥२५॥
३२ (९) मंत्र महामनि बिषय ब्याल के।	महामंत्र जोइ जपत महेसू॥१९॥
३२ (१०) हरन मोहतम दिनकर कर से।	जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा॥११६॥ (४)
सेवक सालिपाल जलधर से॥	बरषारितु रघुपतिभगति, तुलसी सालि सुदास। रामनाम बर बरन जुग सावन भादँव मास॥ १९॥
३२ (११) अभिमत दानि देवतरुवर से॥	रामनाम कलि अभिमत दाता॥२७॥ (६) नाम राम को कल्पतरु॥२६॥
" सेवत सुलभ सुखद हरिहर से॥	सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू॥ २०॥ (२)
३२ (१२) सुकबि सरदनभ मन उडगन से।	अपर नाम उडगन बिमल बसहु भगत उर ब्योम॥ (आ० ४२)
३२ (१३) सकल सुकृत फल भूरि भोग से।	सकल सुकृत फल राम सनेहू॥२७॥ (२)
" जगहित निरुपधि साधु लोग से॥	जगहित हेतु बिमल बिधु पूषन॥२०॥ (६)
३२ (१४) पावन गंग तरंग माल से।	जनमन अमित नाम किए पावन॥२४॥ (७)

कुपथ कुतर्क कुचालि कलि कपट दंभ पाषंड।
दहन रामगुनग्राम जिमि इंधन अनल प्रचंड॥ ३२॥
रामचरित राकेसकर॥ ३२॥

"सरिस सुखद सब काहु। सज्जन
कुमुद चकोर चित, हित बिसेषि बड़ लाहु॥ ३२॥

*****

१०५ (३) *रामचरित अति अमित मुनीसा।*
कहि न सकहिं सत कोटि अहीसा॥
७ (१०३) *कलिजुग केवल हरिगुनगाहा।*

गावत नर पावहिं भव थाहा॥ (७। १०३)
भवसागर चह पार जो पावा।
राम कथा ताकहँ दृढ़ नावा॥' (७। ५३)
ते भवनिधि गोपद इव तरहीं। (उ० १२९)

तीरथ अमित कोटि सम पावन॥ (उ० ९२। २)
जासु नाम पावक अघ तूला॥
जनम अनेक रचित अघ दहहीं (६। ११९)
नाम अखिल अघ पूग नसावन (उ० ९।२२)
'राका रजनी भगति तव राम नाम सोइ सोम।'
(आ० ४२)
जगपालक विसेषि जन त्राता॥ २०॥ (५)

*****

रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥ २६॥ (८)

नहिं कलि कर्म न भगति बिबेकू।
रामनामअवलंबन एकू॥ २७॥ (७)
नाम लेत भव सिंधु सुखाहीं ॥ २५॥ (४)
नाथ नाम तव सेतु नर चढ़ि भवसागर तरहिं।
भव बारिधि गोपद इव तरहीं।

श्रीमद्रामचरित-माहात्म्य-वर्णन समाप्त हुआ।
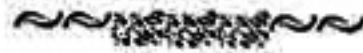
''मानसका अवतार, कथाप्रबन्धका अथ''—प्रकरण

कीन्हि प्रश्न जेहि भाँति भवानी। जेहिं बिधि संकर कहा बखानी॥ १॥
सो सब हेतु कहब मैं गाई। कथा प्रबंध बिचित्र बनाई॥ २॥

अर्थ—जिस तरहसे श्रीपार्वतीजीने प्रश्न किया और जिस रीतिसे श्रीशङ्करजीने विस्तारसे कहा, वह सब कारण मैं कथाकी विचित्र रचना करके (अर्थात् छन्दोंमें) गाकर (=विस्तारसे) कहूँगा॥ १-२॥

नोट—१ (क) *'कीन्हि प्रश्न जेहि भाँति भवानी'* यह प्रसङ्ग दोहा (१०७। ७)*'बिस्वनाथ मम नाथ पुरारी'* से (१११। ६)*'प्रस्न उमा कै सहज सुहाई। छल बिहीन सुनि सिव मन भाई॥'* तक है और फिर उत्तरकाण्ड दोहा (५३। ७) *'हरिचरित्र मानस तुम्ह गावा। सुनि मैं नाथ अमित सुख पावा॥ तुम्ह जो कही यह कथा सुहाई। कागभसुंडि गरुड़ प्रति गाई॥'* से दोहा (५५। ५) *'कहहु कवन बिधि भा संबादा।'''''* तक है। (ख)*जेहि बिधि संकर कहा बखानी'* यह प्रसंग दोहा (१११। ६) *'प्रस्न उमा कै''''' ॥ हर हिय रामचरित सब आए।''''' रघुपति चरित महेस तब हरषित बरनै लीन्ह।'* (१११) से चला है और*'उमा कहिउँ सब कथा सुहाई।'* (७। ५२। ६) तक है और फिर (७। ५५। ६) *'गौरि गिरा सुनि सरल सुहाई। बोले सिव सादर सुख पाई॥''* से *'सुनि सब कथा हृदय अति भाई। गिरिजा बोली''''' ।'* (७। १२९। ७) तक है। (ग)*'सो सब हेतु कहब मैं'* इति। यह प्रसंग दोहा (४७। ८) *'ऐसेइ संसय कीन्ह भवानी। महादेव तब कहा बखानी॥ कहौं सो मति अनुहारि अब उमा संभु संबाद। भएउ समय जेहि हेतु जेहि''''' ।'* (४७) से दोहा (१०७। २—६) *'पारबती भल अवसरु जानी। गईं संभु पहिं मातु भवानी॥ कथा जो सकल लोक हितकारी। सोइ पूछन चह सैलकुमारी॥''''''हरहु नाथ मम मति भ्रम भारी।'* (१०८। ४) तक है।

नोट—२ गोस्वामीजी कहते हैं कि जिस कारणसे भवानीने शिवजीसे पूछा और उन्होंने कहा वह कारण मैं गाकर कहूँगा। *'गाई'* का प्रयोग जहाँ-तहाँ इस अर्थमें किया गया है कि विस्तारसे कहूँगा, यथा—*'आपन चरित कहा मैं गाई।'* इसका तात्पर्य यह है कि प्रश्नके हेतुकी कथा शिवजीके मानसमें नहीं है, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज-संवादमें इसकी कथा है, इसलिये उनका संवाद कहूँगा और महादेव-पार्वतीके संवादका हेतु उसीमें कहूँगा। याज्ञवल्क्य-भरद्वाज-संवाद गुसाईंजीको गुरुसे नहीं मिला; किन्तु अलौकिक घटनाद्वारा श्रीहनुमत्कृपासे मालूम हुआ जिसका प्रमाण आगे दिया गया है। ३५ (११) देखो।

नोट—३ मानसतत्त्वविवरणमें 'हेतु' का एक अर्थ यहाँ 'लिये' भी किया है अर्थात् सबके लिये कहूँगा। पुनः *'सब हेतु'* का वे यह भाव देते हैं कि शिव-पार्वती-संवादका जो कारण है पूरा-पूरा देंगे, संक्षेपसे नहीं।

सूर्यप्रसाद मिश्रजी—गानके दो भेद हैं। यन्त्र और गात्र। सितारा, वीणा, वंशी, शहनाई, फोनोग्राफ आदिकी गणना यन्त्रमें है। मुखसे जो गाया जाता है उनका नाम गात्र है। प्रमाण—'**गीतं च द्विविधं प्रोक्तं यन्त्रगात्रविभागतः। यन्त्रं स्याद्वेणुवीणादि गात्रं तु मुखजं मतम्॥**' चारों वेदोंसे गानका पूर्णरूप होता है। गानमाहात्म्य वेदतुल्य है। अतएव ग्रन्थकारने इस कथाको *'गाई'* करके उल्लेखन किया।

नोट—४ *'कथा प्रबंध बिचित्र बनाई'* इति। (क) प्रबंध=एक-दूसरेसे सम्बद्ध वाक्यरचनाका सविस्तार लेख या अनेक सम्बद्ध पद्योंमें पूरा होनेवाला काव्य। (ख) कोई-कोई महानुभाव *'बिचित्र'* को कथाका विशेषण मानते हैं। कथा विचित्र है, यथा—*'सुनतेउँ किमि हरि कथा सुहाई। अति बिचित्र बहु बिधि तुम्ह गाई॥'* (उ० ६९) और कोई उसे *'बनाई'* के साथ लगाते हैं।

मानसतत्त्वविवरणकार *'बिचित्र बनाई'* का भाव यह लिखते हैं कि—(१) 'बहुत अद्भुत रीतिसे कहेंगे अर्थात् जिस भावनाके जो भावुकजन होंगे उनको उनके भावके अनुकूल ही अक्षरोंसे सिद्ध होगा। (२) नानाकल्पका चरित सूचित हो, पर अघटितघटनापटीयसी योगमायाकर्तृ एक ही कालकी लीला प्रकटाप्रकटा है। क्योंकि परिपूर्णावतारमें लीलाके उद्योतनकी यही व्यवस्था है।'

सुधाकर द्विवेदीजीका मत है कि '**विचित्र**' '**विभ्या' पक्षिभ्यां भुशुण्डिगरुडाभ्यां चित्रमिति विचित्रम्**' इस विग्रहसे भुशुण्डि और गरुड़से चित्र जो कथाप्रबन्ध उसे बनाकर और गानकर मैं सब कारणोंको कहूँगा, ऐसे अर्थमें बड़ी रोचकता है।

सूर्यप्रसाद मिश्रजी—विचित्र शब्दसे अर्थ-विचित्र, शब्द-विचित्र और वर्ण-विचित्र तीनोंका ग्रहण है। इसमें मन न ऊबेगा, यह सूचित किया। बैजनाथकृत मानसभूषणटीकामें जो यह लिखा है कि *'बिचित्र तो वाको कही जो अर्थ के अन्तर अर्थ ताके अन्तर अर्थ जो काहूकी समुझिमें न आवे।'* मेरी समझसे यह ग्रन्थकारका अभिप्रेत नहीं हो सकता।

बैजनाथजी कहते हैं कि चित्रकाव्य वह है कि जिसके अक्षरोंको विशेष क्रमसे लिखनेसे मनुष्य, पशु, वृक्षादि कोई विशेष चित्र बन जाता है। अथवा, 'जिसमें अन्तर्लापिका बहिर्लापिका गतागतादि अनेक हैं।' और विचित्र वह है जिसमें अर्थके अन्दर अर्थ हो और फिर उस अर्थके अन्दर अर्थ हो जो किसीकी समझमें न आवे। श्रीजानकीशरणजी कहते हैं कि कथाके प्रबन्धको विचित्र बनाकर कहनेका भाव यह है कि किसी प्रबन्धमें किसी प्रबन्धकी कथा आ मिली है जैसे कि पृथ्वीके करुण-क्रन्दनके पश्चात् देवताओंका परस्पर कथनोपकथन परब्रह्मस्तुति *'जय जय सुरनायक'* से *'यह सब रुचिर चरित मैं भाषा।'''''* तकके बीचमें नारदशापावतारकी कथा आ मिली है।

श्रीकान्तशरणजी कहते हैं कि 'इसमें विचित्रता यह है कि प्रथम मानससरोवरका रूपक स्वयं रचेंगे। वह बड़ा ही विचित्र है, जिसमें चार घाटों, चार प्रकारके श्रोता-वक्ताओंके सम्बन्ध और उनके द्वारा काण्डत्रय एवं प्रपत्ति (शरणागति) की सँभाल रखते हुए, मुख्य उपासनारूपी ही कथा चलेगी। तब आगे हेतु कहेंगे।

नोट—५ 'विचित्र' के ये अर्थ होते हैं—(१) जिसके द्वारा मनमें किसी प्रकारका आश्चर्य हो। (२) जिसमें कई प्रकारके रंग हों। (३) जिसमें किसी प्रकारकी विलक्षणता हो। यहाँ मेरी समझमें ये सब अर्थ लगते हैं। कथा-प्रसङ्ग जो इसमें आये हैं उनमेंसे बहुतेरी कथाएँ अलौकिक हैं, उनके प्रमाण बहुत खोजनेपर भी कठिनतासे मिलते हैं, अतः आश्चर्य होता है। जो आगे 'अलौकिक' कहा है वह भी *'विचित्र'* शब्दसे जना दिया है। फिर इसमें नवों रसोंयुक्त वर्णन ठौर-ठौरपर आया ही है, यही अनेक रंगोंका होना है। इस कथाके रूपक आदि तो सर्वथा विलक्षण हैं। कई कल्पोंकी कथाओंका एकहीमें सम्मिश्रण भी विलक्षण है जिसमें टीकाकारलोग मत्था-पच्ची किया करते हैं। इसके छन्द भी विलक्षण हैं, भाषाके होते हुए भी संस्कृतके जान पड़ते हैं।

मेरी समझमें गोस्वामीजीने मं० श्लो०७ में 'रघुनाथगाथाभाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति' यह जो प्रतिज्ञा की है, वह भी 'विचित्र' शब्दसे यहाँ पुनः की है। इस तरह, विचित्र=अति मञ्जुल। आगे जो *'करइ मनोहर मति अनुहारी।'* (३६। २) कहा है, वह भी 'विचित्र' का ही अर्थ स्पष्ट किया गया है।

जेहिं यह कथा सुनी नहिं होई। जनि आचरज करै सुनि सोई॥ ३॥
कथा अलौकिक सुनहिं जे ज्ञानी। नहिं आचरजु* करहिं अस जानी॥ ४॥
रामकथा कै मिति जग नाहीं। अस प्रतीति तिन्ह के मन माहीं॥ ५॥

शब्दार्थ—**अलौकिक**=जो लोकमें पढ़ने-सुननेमें न आयी हो। अपूर्व, असाधारण, अद्भुत, विचित्र। **मिति**=संख्या, सीमा, इति, अन्त, हद, मान, नाप। *आचरज* (आश्चर्य)=अचम्भा।

अर्थ—जिन्होंने यह कथा और कहीं सुनी न हो, वे इसे सुनकर आश्चर्य न करें। (भाव यह कि यह कथा वाल्मीकीय, अध्यात्म आदि रामायणोंकी कथासे विलक्षण है)॥ ३॥ जो ज्ञानी विचित्र कथाको सुनते हैं वे ऐसा जानकर आश्चर्य नहीं करते॥ ४॥ (कि) रामकथाकी हद संसारमें नहीं है। ऐसा विश्वास उनके मनमें है॥ ५॥

नोट—१ (क) चौपाई (३) में कहा कि आश्चर्य न करो। फिर (४-५) में ज्ञानियोंका प्रमाण देकर आश्चर्य न करनेका कारण बताते हैं। पुनः, (ख)—'ज्ञानी' शब्दमें यह भी ध्वनि है कि जो अज्ञानी हैं वे तो सन्देह करेंगे ही, इसमें हमारा क्या वश है ?[मा० प्र०]

नोट—२ यह *'कथा'* कौन है जिसे सुनकर आश्चर्य न करनेको कहते हैं ? सतीमोह-प्रकरण, भानुप्रतापका प्रसङ्ग, मनु-शतरूपा, कश्यप-अदिति, नारदशापादि-सम्बन्धी लीलाएँ एक ही बारके अवतारमें सिद्ध हो जाना, इत्यादि 'अलौकिक' कथाएँ हैं।

श्रीसुधाकर द्विवेदीजी लिखते हैं कि 'पशु हनुमान् आदिकी नर राम-लक्ष्मण-सीतासे बातचीत होना, पक्षी जटायुसे मनुष्य रामसे बातचीत करना इत्यादि साधारण मनुष्यके सामने असम्भव है। इसलिये दृढार्थ कहते हैं कि सुनकर आश्चर्य न करें क्योंकि परमेश्वरकी लीलामें कोई बात असम्भव नहीं है।'

सन्त श्रीगुरुसहायलालजी कहते हैं कि 'भगवत्‌की नित्यलीला प्रकटा-अप्रकटा रीतिसे अनेक है। हर एकके परिकर भिन्न-भिन्न हैं। जब जिस लीलाका अवसर आ पड़ता है तब उस लीलाके परिकर प्रकट होकर उस लीलाको करते हैं, पर एककी दूसरेको खबर नहीं जैसा भागवतामृतकर्णिकामें कहा है—**'स्वैः स्वैर्लीलापरिकरैर्जनैर्दृश्यामि नापरैः। तत्तल्लीलाद्यवसरे प्रादुर्भावोचितानि हि। आश्चर्यमेकश्चैकचवर्तमानान्यपि ध्रुवम्। परस्परमसम्पृक्तं स्वरूपत्येव सर्वथा॥'** ऐसी लीलाकी कथा अलौकिक है।'

वे० भू०—आश्चर्यका कारण कथाकी अलौकिकता है। कारण एक जगह है और कार्य दूसरी जगह। *'और करै अपराध कोउ और पाव फल भोग।'* जैसे कि नारद-शाप क्षीरशायीको इस लोक (एकपाद्‌विभूति) में और शापकी सफलता दिखायी राम अलौकिक (त्रिपाद्विभूति स्वामी) ने, वृन्दाका शाप एवं सनकादिका

* आचरज—१६६१। यह लेखकका प्रमाद है। अन्यत्र सर्वत्र 'आचरजु' है।

शाप रमावैकुण्ठाधीश विष्णुसे सम्बन्ध रखता है और इसकी पूर्तिकी श्रीरामजीने जो त्रिपाद्विभूतिस्थ हैं। सारांश यह कि दूसरे-दूसरे कारणोंसे भी श्रीरामजीका अवतीर्ण होकर चरित्र करना कहा गया है—यही अलौकिकता है।

नाना भाँति राम-अवतारा। रामायन सत-कोटि अपारा॥ ६॥
कलपभेद हरिचरित सुहाए। भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए॥ ७॥

शब्दार्थ—**कल्प**—कालका एक विभाग है जिसे ब्रह्माका एक दिन कहते हैं। इसमें चौदह मन्वन्तर और चौदह इन्द्र हो जाते हैं। यह हमारे वर्षके अनुसार चार अरब बत्तीस करोड़ वर्षोंके बराबर होता है। इस एक दिनमें एक-एक हजार बार चारों युग बीत जाते हैं। यथा—'**चतुर्युग सहस्राणि दिनमेकं पितामहः।**' चारों युग जब इकहत्तर बारसे कुछ अधिक हो जाते हैं तब एक मन्वन्तर होता है।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजीके अवतार अनेक तरहसे हुए हैं, रामायण सौ करोड़ (श्लोकोंकी) किन्तु अपार है॥ ६॥ कल्पभेदसे सुन्दर हरिचरित मुनीशोंने अनेक तरहसे गाये हैं* ॥ ७॥

सूर्यप्रसाद मिश्रजी—'*नाना भाँति*……' इसमें क्रिया पद नहीं है उसका अध्याहार करना चाहिये। अध्याहार इस प्रकार होगा कि 'रामके अवतार कितने हो गये, कितने हैं और कितने होंगे' इसीलिये '*नाना भाँति*' लिखा और शतकोटि रामायण भी लिखा भेदका कारण सातवीं चौपाईमें देते हैं।'

नोट—१-'*सत कोटि अपारा*' यथा—'*रामचरित सत कोटि अपारा। श्रुति सारदा न बरनइ पारा॥*' (उ० ५२) पुनः यथा—'**चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्। एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम्॥**'

२—'*रामायन सत-कोटि*'—दोहा २५ '*रामचरित सत कोटि महँ लिय महेस*……' में देखिये। लोगोंने इसका अर्थ 'सौ करोड़ रामायणें' लिखा है, पर वस्तुतः यह अर्थ उसका नहीं है। 'शतकोटि रामायण' नाम है उस रामायणका जो वाल्मीकिजीने अथवा कल्पभेदसे ब्रह्माजीने सौ करोड़ श्लोकोंमें बनायी थी और जिसका सारभूत वर्तमान चतुर्विंशति वाल्मीकीय है। 'शतकोटि' उसी तरह शतकोटिश्लोकबद्ध रामायणका नाम है जैसे अष्टाध्यायी, सप्तशती, उपदेश-साहस्री इत्यादि तदन्तर्गत अध्याय या श्लोकों आदिकी संख्याको लक्षित करके नाम हुए हैं।

'*रामायन सत-कोटि अपारा*' कहनेका भाव यह है कि रामचरित तो अपार है, अनन्त है, तथापि अपने ज्ञानके लिये शतकोटि श्लोकोंमें कुछ रामचरितकी रचना की गयी। और अन्य उपलब्ध रामायणें तो इसी शतकोटिके कुछ-कुछ अंश लेकर ही बनायी गयी हैं। यथा—'**अनन्तत्वेऽपि कोटीनां शतेनास्य प्रपञ्चनम्। रामायणस्य बुध्यर्थं कृतं तेन विजानता॥**' (शिवसं० ७। १० हनु० प्रे० अयोध्या०)

नोट—३-श्रीजानकीदासजी लिखते हैं कि इन चौपाइयोंमें ज्ञानियोंके विश्वासका कारण बताया है। और पं० रामकुमारजी लिखते हैं कि आश्चर्य न करनेका एक कारण ऊपर लिखा, अब दूसरा कारण लिखते हैं कि अनेक प्रकारसे या कारणोंसे रामावतार हुए हैं, प्रत्येक कल्पमें कुछ-न-कुछ भेद कथामें पड़ गया है। जिसकी जहाँतक बुद्धि दौड़ी वहाँतक उसने कहा। यथा—'**चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्। येषां वै यादृशी बुद्धिस्ते वदन्त्येव तादृशम्॥**' (पद्मपु०), '**क्वचित् क्वचित्पुराणेषु विरोधो यदि दृश्यते। कल्पभेद-विधिस्तत्र व्यवस्था सद्भिरुच्यते।**'

करिअ न संसय अस उर आनी। सुनिअ कथा सादर रति मानी॥ ८॥

---

* यथा—'एहि बिधि जनम करम हरि केरे। सुन्दर सुखद बिचित्र घनेरे॥ कलप कलप प्रति प्रभु अवतरहीं। चारु चरित नाना बिधि करहीं॥ तब तब कथा मुनीसन्ह गाई। परम पुनीत प्रबंध बनाई॥ बिबिध प्रसंग अनूप बखाने। करहिं न सुनि आचरज सयाने॥ हरि अनंत हरि कथा अनंता। कहहिं सुनहिं बहु बिधि सब संता॥ रामचंद्रके चरित सुहाए। कलप कोटि लगि जाहिं न गाए॥ (१४०। १—६) कल्प-कल्पमें अवतार होनेसे ब्रह्माकी आयुभरमें ही छत्तीस हजार बार अवतार हो जाता है।

अर्थ—ऐसा जीमें विचारकर सन्देह न कीजिये और कथाको आदरपूर्वक प्रेमसे सुनिये॥ ८॥

नोट—१'**अस**'=जैसा ऊपर समझा आये हैं कि कथाकी सीमा नहीं है, कल्पभेदसे तरह-तरहके चरित्र हुए हैं और चरित्र अपार हैं। **संसय**=संशय, सन्देह। सन्देह यह कि यहाँ ऐसा कहा, वहाँ ऐसा कहते हैं, अमुक ग्रन्थमें तो यहाँ ऐसी कथा है और यहाँ गोस्वामीजीने ऐसा कैसे लिख दिया ? इत्यादि।

'सादर' अर्थात् एकाग्र भावसे प्रेमसे मन, चित्त और बुद्धिको कथामें लगाकर तथा श्रद्धापूर्वक, यथा—*'सुनहु तात मति मन चित लाई।'* (३। १५। १)। **'भाव सहित सो यह कथा करउ श्रवनपुट पान।'** (७। १२८) निरादरसे सुननेका निषेध किया गया है, यथा—*'यह न कहिअ सठही हठसीलहि। जो मन लाइ न सुन हरि लीलहि॥'* (७। १२८। ३) मन न लगाना, कुतर्क आदि करना 'निरादर' से सुनना है। पूर्व दोहा (३२ ख) भी देखिये।

सूर्यप्रसाद मिश्रजी—'बैजनाथकृत मानस-भूषणमें जो अर्थ लिखा है कि *'प्रीतिसे आदरसहित सुनिये मनतें प्रीति वचन कर्मतें आदरसहित चन्दनाक्षत चढ़ाई बचनमें जय उच्चरिये'* यह अर्थ प्रकरणसे विरुद्ध है क्योंकि इस चौपाईमें केवल कथा शब्दका उल्लेख है और *'सुनिय'* भी लिखा है। कर्म बचनका तो नाम भी नहीं।'

दोहा—राम अनंत अनंत गुन अमित कथा-बिस्तार।
सुनि आचरजु न मानिहहिं जिन्ह के बिमल बिचार॥ ३३॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी अनन्त हैं, उनके गुण भी अनन्त हैं और उनकी कथाका विस्तार भी अमित है। जिनके विचार निर्मल हैं वे सुनकर आश्चर्य न करेंगे॥ ३३॥

टिप्पणी—१ (क) अब ग्रन्थकार तीसरी प्रकार समझाते हैं कि क्यों आश्चर्य न करें। पुनः, यह भी यहाँ बताते हैं कि किस-किस विषयमें सन्देह न करना चाहिये। वह यह कि राम अनन्त हैं इसलिये श्रीरामजीके विषयमें आश्चर्य न करें। प्रभुके गुण अनन्त हैं, यथा—*'विष्णु कोटि सम पालन कर्ता।'* (७। ९२) उनकी कथा भी अगणित प्रकारसे है इसलिये इनमें सन्देह न करें। (ख)—*'रामकथा कै मिति जग नाहीं'* कहकर प्रथम कथाका सन्देह निवृत्त किया और अब कथाके विस्तारका सन्देह दूर करते हैं कि अमुक कथा अमुक पुराणमें तो इतनी ही है, यहाँ अधिक कहाँसे लिखी। (ग) —कौन आश्चर्य न करेंगे ? इस विषयमें दो गिनाये—ज्ञानी और जिनके विवेक है। जो विचारहीन और अज्ञानी हैं, उनके मनमें आश्चर्य होता ही है। (घ) *'जिन्ह के बिमल बिचार'*—ऐसा ही दूसरी ठौर भी कहा है, यथा—*'सो बिचारि सुनिहहिं सुमति जिन्ह के बिमल बिबेक।'* (१। ९)

येहि बिधि सब संसय करि दूरी। सिर धरि गुर-पद-पंकज धूरी॥ १॥
पुनि सब ही बिनवौं कर जोरी। करत कथा जेहि लाग न खोरी॥ २॥

अर्थ—इस प्रकार सब सन्देहोंको दूर करके और श्रीगुरुपदकमलकी रज सिरपर धारण करके फिरसे सबकी विनती हाथ जोड़कर करता हूँ जिससे कथा करनेमें दोष न लगे॥ १-२॥

टिप्पणी—१ (क) *'सब संसय'*—ये ऊपर कह आये हैं। अर्थात् कथा और कथाके विस्तारमें संशय; श्रीरामजी और उनके गुणोंमें संशय। और अब उन सबको यहाँ एकत्र करते हैं। (ख) *'सिर धरि'*—अर्थात् माथेपर लगाकर, तिलक करके। ग्रन्थमें तीन बार रज-सेवन करना कहा है। आदिमें गुरुपदरजको नेत्रमें लगाकर 'विवेक-विलोचन' निर्मल किये, यथा—*'गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिय दृग दोष बिभंजन॥ तेहि करि बिमल बिबेक बिलोचन। बरनउँ रामचरित भव मोचन॥'* (१।२) फिर यहाँ सरपर धारण करना लिखा, क्योंकि ऐसा करनेसे सब वैभव वशमें हो जाते हैं, यथा—*'जे गुर चरन रेनु सिर धरहीं। ते जनु सकल बिभव बस करहीं॥'* (अ०३) आगे अयोध्याकाण्डमें रज-सेवनसे मन निर्मल करेंगे, यथा—*'श्रीगुरु चरन सरोज रज निज मन मुकुर सुधारि। बरनउँ रघुबर बिमल जसु'*.....(मं० दो०) तीनों जगह प्रयोजन भिन्न-भिन्न है।

टिप्पणी—२ *'पुनि सबही बिनवौं'* इति। दुबारा विनती क्यों की ? इसका कारण भी यहाँ बताते हैं कि कथा रचनेमें कोई दोष उसमें न आ जावे अर्थात् कथा निर्दोष बने। पहिले जो विनती की थी वह इस अभिप्रायसे थी कि कोई दोष न दे, यथा—*'समुझि बिबिधि बिधि बिनती मोरी। कोउ न कथा सुनि देइहि खोरी॥'* (१। १२। ७) यहाँ यद्यपि दोनों जगह दोष न लगना कहा तथापि पुनरुक्ति नहीं है। क्योंकि पहले कथा सुनकर सुननेवालोंका दोष न लगाना कहा था और यहाँ कहते हैं कि कथा रचनेमें कोई दोष न आ पड़े। अथवा, कथा बनानेमें दोष न दें और न सुनकर दें, ये दो बातें कहीं।

सुधाकर द्विवेदीजी—संशय दूर होनेमें गुरुको प्रधान समझकर फिर उनके पदरजको सिरपर रखा। भाषामें कथा करनेमें पहले कारण *'भाषाबद्ध करब मैं सोई।'''''* लिख आये हैं, उसे स्मरण करानेके लिये फिर सबसे विनय किया।

नोट—श्रीजानकीदासजी लिखते हैं कि 'अब गोस्वामीजी वन्दनाकी तीसरी आवृत्ति करके वन्दनाको समाप्त करते हैं।

सादर सिवहि नाइ अब माथा। बरनौं बिसद रामगुनगाथा॥ ३॥

अर्थ—अब आदरपूर्वक श्रीशिवजीको प्रणाम करके श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंकी निर्मल कथा कहता हूँ॥ ३॥

टिप्पणी—गोस्वामीजीने 'नाम, रूप, लीला और धाम' चारोंकी बड़ाई क्रमसे की है। (१) सबको माथा नवाकर नामकी बड़ाई की, यथा—*'प्रनवउँ सबहिं धरनि धरि सीसा। करहु कृपा जन जानि मुनीसा॥'* (१।१८।६) (२) श्रीरामचन्द्रजीको माथा नवाकर रूपकी बड़ाई की, यथा—*'सुमिरि सो नाम रामगुन गाथा। करउँ नाइ रघुनाथहिं माथा॥'* *'राम सुस्वामि'''''*।'(१। २८। २) से *'तुलसी कहूँ न राम से साहिब सील निधान।'* (१। २९) तक। (३) फिर सबको माथा नवाकर लीलाकी बड़ाई की, यथा—*'एहिं बिधि निज गुनदोष कहि सबहि बहुरि सिरु नाइ। बरनउँ रघुबर बिसद जस सुनि कलिकलुष नसाइ॥'* (१। २९) से लेकर *'रामचरित राकेस कर सरिस सुखद सब काहु।'* (१।३२) तक। और, (४) अब शिवजीको प्रणाम करके धामकी बड़ाई करते हैं।

नोट—श्रीशिवजीकी तीसरी बार वन्दना है। ये मानसके आचार्य हैं। इसलिये कथा प्रारम्भ करके फिर आचार्यको प्रथम प्रणाम करते हैं। गोस्वामीजीके 'मानस' गुरु भी यही हैं। इन्होंने रामचरितमानस उनको स्वामी श्रीनरहर्यानन्दजीके द्वारा दिया।—*'गुरु पितु मातु महेस भवानी'।*

संबत सोरह सै एकतीसा। करउँ कथा हरि पद धरि सीसा॥ ४॥
नौमी भौम बार मधुमासा। अवधपुरीं यह चरित प्रकासा॥ ५॥

शब्दार्थ—**भौम बार**=मंगलवार। **मधुमासा**=चैत्र, —**'स्याच्चैत्रे चैत्रिको मधुः।'** (अमरकोश १। ४। १५)

अर्थ—भगवान्‌के चरणोंपर सिर रखकर संवत् १६३१में कथा प्रारम्भ करता हूँ॥ ४॥ नवमी तिथि, मंगलवार, चैत्रके महीनेमें, श्रीअयोध्याजीमें यह चरित प्रकाशित हुआ॥ ५॥

नोट—१ यहाँसे गोस्वामीजी अब अपने हिन्दी-भाषा-निबन्ध श्रीरामचरितमानसका जन्म, संवत्, महीना, दिन, पक्ष, तिथि, मुहूर्त्त, जन्मभूमि, नामकरण और नामका अर्थ और फल कह रहे हैं।

नोट—२ संवत् १६३१ में श्रीरामचरितमानस लिखना प्रारम्भ करनेका कारण यह कहा जाता है कि उस संवत्‌में श्रीरामजन्मके सब योग, लग्न आदि एकत्र थे। इस तरह श्रीरामजन्म और श्रीरामकथाजन्ममें समानता हुई। मानसमयङ्कके तिलककार लिखते हैं कि 'स्वयं श्रीरामचन्द्रजी लोक-कल्याण-निमित्त काव्यरूप हो प्रकट हुए। दोनों सनातन और शुद्धपञ्चाङ्गमय हैं। इससे दोनोंको एक जानो।'

महात्माओंसे एक भाव इस प्रकार सुना है कि श्रीरामचन्द्रजी १६ कलाके अवतार थे—*'बालचरितमय चन्द्रमा यह सोरह-कला-निधान।'* (गी० १। २२)। तो भी जब उन्होंने ३१ बाण जोड़कर रावणपर आघात किया तब उसका वध हुआ, यथा—*'सुर सभय जानि कृपाल रघुपति चाप सर जोरत भए॥ खैंचि सरासन*

श्रवन लगि छाड़े सर इकतीस। रघुनायक सायक चले मानहुँ काल फनीस।' (लं० १०२) इसी विचारसे ग्रन्थकारने १६में इकतीस लगानेसे जो संवत् बना उसमें रामचरितमानसकथाका आरम्भ किया जिसमें मोहरूपी रावण इसके आघातसे न बच सके।

नोट—३ इन दो चौपाइयोंमें जन्मका संवत्, महीना, तिथि, दिन और (भूमि) स्थल बताये। 'मधुमास' पद देनेका भाव यह है कि भगवान्‌ने गीतामें श्रीमुखसे बताया है कि '**ऋतूनां कुसुमाकरः**' अर्थात् ऋतुओंमें इसे अपना रूप कहा है।

* 'नौमी भौम बार ..... यह चरित प्रकासा' *

(१) पं० रामकुमारजी लिखते हैं कि *'प्रकासा'* पद देकर सूचित किया कि जैसे श्रीरामचन्द्रजी सनातन हैं वैसे ही उनका यह चरित्र भी सनातन है, परन्तु उसका प्रकाश अब हुआ। दूसरे यह भी सूचित किया कि जैसे रामचन्द्रजी पूर्णचन्द्ररूप प्रकट हुए थे, यथा—*'प्रगटेउ जहँ रघुपति ससि चारू।'* (१। १६) वैसे ही उनके चरित्र पूर्ण-चन्द्ररूपसे प्रकट हुए, यथा—*'रामचरित राकेस कर सरिस सुखद सब काहु।'* (१। ३२) इस प्रकार श्रीरामजन्मकुण्डली और श्रीरामचरितमानसजन्म-कुण्डलीका पूरा मिलान ग्रन्थकार यहाँसे करते हैं। जो आगे एकत्र करके दोहा (३५। ९) में दिया गया है।

(२) श्रीकरुणासिन्धुजी लिखते हैं कि श्रीहनुमान्‌जीकी आज्ञासे श्रीअवधमें श्रीरामचरितमानस प्रारम्भ किया गया। श्रीवेणीमाधवदासजी 'मूल-गोसाईंचरितमें लिखते हैं कि संवत् १६२८में गीतोंको एकत्रकर उसका नाम रामगीतावली रखा और फिर कृष्णगीतावली रची। दोनों हनुमान्‌जीको सुनाये तब उन्होंने प्रसन्न होकर आज्ञा दी कि तुम अवधपुर जाकर रहो। इष्टकी आज्ञा पाकर वे श्रीअवधको चले, बीचमें प्रयागराजमें मकर-स्नानके लिये ठहर गये, वहाँ भरद्वाज-याज्ञवल्क्य-दर्शन और संवादकी अलौकिक घटना हुई; तब हरिप्रेरित आप काशीको चल दिये। जब कुछ दूर निकल गये तब श्रीहनुमान्‌जीकी आज्ञा स्मरण हो आयी, अब क्या करें? मनमें यह दृढ़ किया कि हरदर्शन करके तब श्रीअवधपुर जायँगे। काशी पहुँचकर संस्कृतभाषामें रामचरित रचने लगे, पर जो दिनमें रचते वह रात्रिमें लुप्त हो जाता। सात दिनतक बराबर यह लोपक्रिया चलती रही, जिसने इन्हें बड़ा चिन्तित कर दिया। तब आठवें दिन भगवान् शङ्करने इनको स्वप्न दिया और फिर प्रकट होकर इनको वही आज्ञा दी कि भाषामें काव्य रचो। *'सुरबानिके पीछे न तात पचो॥ सबकर हित होइ सोई करिये॥ अरु पूर्व प्रथा मत आचरिये। तुम जाइ अवधपुर बास करो॥ तहँई निज काव्य प्रकास करो। मम पुन्य प्रसाद सों काव्य कला॥ होइहै सम सामरिचा सफला॥ कहि अस संभु भवानि अंतरधान भये तुरत॥ आपन भाग्य बखानि चले गोसाईं अवधपुर॥'* (सोरठा ९)

श्रीशिवाज्ञा पाकर आप श्रीअवध आये और बरगदिहा बागमें, जहाँ उस समय भी वटवृक्षोंकी पाँति-की-पाँति लगी थी, ठहरे, जिसे आज 'तुलसीचौरा' कहते हैं यहाँ आप दृढ़ संयमसे रहने लगे। केवल दूध पीते और वह भी एक ही समय—*'पय पान करैं सोउ एक समय। रघुबीर भरोस न काहुक भय॥ 'दुइ बत्सर बीते न वृत्ति डगो। इकतीसको संवत आइ लगो॥'*

इस तरह श्रीहनुमान्‌जीकी और पुनः भगवान् शङ्करकी भी आज्ञासे आप रामचरितमानसकी रचनाके लिये श्रीअवध आये और दो वर्षके बाद संवत् १६३१में श्रीरामनवमीको रामचरितमानसका आरम्भ हुआ। इस शुभ मुहूर्तके लिये दो वर्षसे अधिक यहाँ उन्हें रहना पड़ा तब—*'रामजन्म तिथि बार सब जस त्रेता महँ भास। तस इकतीसा महँ जुरो जोग लग्न ग्रह रास॥'* (३८) *'नवमी मंगलबार सुभ प्रात समय हनुमान। प्रगटि प्रथम अभिषेक किय करन जगत कल्यान॥'* (३९)

सम्भवतः इसीके आधारपर टीकाकार सन्तोंने लिखा है कि उस दिन श्रीरामजन्मके सब योग थे। उस दिन ग्रन्थका आरम्भ हुआ और दो वर्ष सात मास छब्बीस दिनमें अर्थात् संवत् १६३३ अगहन सुदी ५ श्रीरामविवाहके दिन यह पूरा हुआ।—*'एहि बिधि भा आरंभ रामचरितमानस बिमल। सुनत मिटत मद दंभ कामादिक*

संसय सकल॥' (सो० ११) *'दुइ बत्सर सातेक मास परे। दिन छब्बिस मांझ सो पूर करे॥ तैंतीसको संबत औ मगसर। सुभ द्यौस सुराम बिबाहहिं पर॥ सुठि सत जहाज तयार भयो। भवसागर पार उतारनको॥'*

'जब इतने दिनोंमें तैयार हुआ तब श्रीरामनवमी सं० १६३१को प्रकाशित होना कैसे कहा? प्रकाशित तो तैयार होनेपर कहा जाता है?' इस शङ्काका उत्तर भी हमें इसी 'मूल-गोसाईंचरित'में ही मिलता है, अन्यत्र इसका समाधान कोई ठीक नहीं मिला। वस्तुतः यह ग्रन्थ उसी दिन पूरा भी हो गया था पर मनुष्य-लेखनी उसको एक ही दिनमें लिखनेको समर्थ न थी; अतएव लिखनेमें इतना समय लगा।—*'जेहि छिन यह आरंभ भो तेहि छिन पूरेउ पूर। निरबल मानव लेखनी खींचि लियो अति दूर॥'* (४२) *'पाँच पात गनपति लिखे दिब्य लेखनी चाल। सत सिव नाग अरु ह्यू दिसप लोक गये ततकाल॥'* (४३) *'सबके मानसमें बसेउ मानस-राम-चरित्र। बंदन रिषि कबि पद कमल मनक्रम बचन पवित्र॥'* (४४)

इस अलौकिक गुप्त घटनाका परिचय *'यह चरित प्रकासा'* का *'प्रकासा'* शब्द दे रहा है। यहाँ *'प्रकासा'* का अर्थ 'आरम्भ किया' मात्र नहीं है।

(३) *'नौमी भौमबार'* इति। सन्तसिंहजी पंजाबी तथा विनायकी टीकाकारने यहाँ यह शङ्का उठाकर कि—'नौमी तो रिक्ता तिथि है', पुनः मंगलवारको कोई-कोई दूषित समझते हैं तो ऐसी तिथि और वारमें 'ग्रन्थका' आरम्भ क्यों किया गया ? उसका उत्तर भी यों दिया है कि 'ईश्वरने उस दिन जन्म धारण किया, इसलिये वह तो सर्वश्रेष्ठ है।' और भी समाधान ये हैं—

(१) 'मंगल परमभक्त हनुमान्‌जीका जन्मदिन है। (२) दिनके समय ग्रन्थ आरम्भ हुआ सो शुभ ही है' यथा—'**न वारदोषाः प्रभवन्ति रात्रौ देवेज्यदैत्येज्यदिवाकराणाम्। दिवा शशाङ्कार्कजभूसुतानां सर्वत्र निन्द्यो बुधवारदोषः॥**' (बृहद्दैवज्ञरञ्जन वारप्रकरण श्लोक १९) अर्थात् शुक्र, गुरु और रविवारके दोष रात्रिमें नहीं लगते। चन्द्र, शनि और मंगलवारका दोष दिनमें नहीं लगता। बुधवार-दोष सर्वत्र निन्द्य है। (३) (पाँड़ेजी कहते हैं कि) 'नवमी तिथिसे शक्तिका आलम्ब, मंगलवारसे हनुमान्‌जीका आलम्ब और चैत्रमाससे श्रीरघुनाथजीका आलम्ब है। गोस्वामीजी इन तीनोंके उपासक हैं और श्रीरामजन्म नवमीको हुआ है। अतः उसी दिन ग्रन्थ प्रकाशित किया गया।' ☞स्मरण रहे कि कवि पूर्व ही प्रतिज्ञापूर्वक श्रीरामचरित्रके माहात्म्यमें कह चुके हैं कि कैसा ही कठिन कुयोग क्यों न उपस्थित हो श्रीरामचरित-नामगुणसे वह सुयोग हो जाता है—*'मेटत कठिन कुअंक भाल के।'* उस दिनका लिखा हुआ ग्रन्थ कैसा प्रसिद्ध हो रहा है!!!

सुधाकर द्विवेदीजी लिखते हैं कि ज्योतिषफलग्रन्थोंमें लिखा है कि '**शनिभौमगता रिक्ता सर्वसिद्धि-प्रदायिनी।**' इसीलिये उत्तम मूहूर्त्त होनेसे चैत्र शु० ९ भौमवारको ग्रन्थ आरम्भ किया। फलितके ज्योतिषी चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशीको रिक्ता कहते हैं।

जेहि दिन रामजनम श्रुति गावहिं। तीरथ सकल तहां चलि आवहिं॥ ६॥

अर्थ—जिस दिन श्रीरामजन्म होता है, वेद कहते हैं कि उस दिन सारे तीर्थ वहाँ (श्रीअयोध्याजीमें) चलकर आते हैं॥ ६॥

नोट—१ *'जेहि दिन·····'* इति। नवमी, भौमवार और मधुमास ऊपर बताया, इनसे पक्षका निर्णय न हुआ; अतः *'जेहि दिन·····'* कहकर शुक्ला नवमी बतायी।

नोट—२ *'सकल'* अर्थात् पृथ्वीभरके। *'चलि आवहिं'* का भाव यह है कि रूप धारण करके अपने पैरों-पैरों आते हैं। 'तीर्थ' के चलनेका भाव यह है कि इनके अधिष्ठाता देवता जो इनमें वास करते हैं वे आते हैं। ये सब इच्छारूप धारण कर लेते हैं। इसका प्रमाण इस ग्रन्थमें भी मिलता है, यथा—*'बन सागर सब नदी तलावा। हिमगिरि सब कहँ नेवत पठावा॥'* *'कामरूप सुंदर तनु धारी। सहित समाज सोह बर नारी॥'* *'आए सकल हिमाचल गेहा। गावहिं मंगल सहित सनेहा।'* (१। ९३) ☞भारतवर्षमें रीति है कि जब कोई ग्राम, नगर इत्यादि प्रथम-प्रथम बसाये जाते हैं तो उनके कोई-न-कोई अधिष्ठाता देवता

भी स्थापित किये जाते हैं। *'सकल'* और *'चलि आवहिं'* पद देकर श्रीरामनवमी और श्रीअवधपुरीका माहात्म्य दर्शित किया।

प्रयागराज तीर्थराज हैं, ये और कहीं नहीं जाते। दधीचि ऋषिके यज्ञके लिये नैमिषारण्यमें इनका भी आवाहन हुआ परन्तु ये न गये, तब ऋषियोंने वहाँ 'पञ्च-प्रयाग' स्थापित किया। सो वे तीर्थराज भी श्रीअवधमें उस दिन आते हैं। कहा जाता है कि विक्रमादित्यजीको प्रयागराजहीने श्रीअवधपुरीकी चारों दिशाओंकी सीमा बतायी थी। निर्मलीकुण्ड प्रयागराजकी सम्बन्धी कथाका परिचय देता है।

नोट—३ *'जेहि दिन'* इति। श्रीरामजन्म-दिन विवादास्पद है। इसमें मतभेद है। कोई सोमवार, कोई रविवार और कोई बुधवार कहते हैं। इसी कारण जन्म-समय गोस्वामीजीने किसी दिनका नाम नहीं दिया। केवल इतना लिखा है कि—*'नौमी तिथि मधुमास पुनीता। सुकुलपच्छ अभिजित हरिप्रीता॥' 'मध्यदिवस अति सीत न घामा। पावन काल लोक बिश्रामा॥'* (१। १९१) *'जोग लगन ग्रह बार तिथि सकल भए अनुकूल।'* (१। १९०) यहाँ रामचरितमानस-जन्मकुण्डलीके द्वारा राम-जन्म-दिन और जन्मभूमिको निश्चय करा दिया। ☞हमारे महाकवि पूज्यपाद श्रीमद्गोस्वामीजीकी प्रायः यह शैली है कि जिस वस्तुको दो या अधिक बार वर्णन करना पड़ेगा उसका कुछ वर्णन एक ठौर, कुछ दूसरी ठौर देकर उसे पूरा करते हैं। वैसा ही यहाँ जानिये। यहाँ तिथि, वार, मास, जन्मभूमि कह दिया और यह भी कह दिया कि *'जेहि दिन राम जनम'* हुआ। और, श्रीरामजन्मपर *'नौमी तिथि मधुमास पुनीता''''''काल लोक बिश्रामा'* ऐसा लिखा, जिसमें वार और भूमि नहीं दिये। अर्थ करनेमें शुक्लपक्ष अभिजित् नक्षत्र ३४ (५) में जोड़ लेना होगा और भौमवार तथा अवधपुरी दोहा १९०में जोड़ लेना होगा।

श्रीराम-जन्मका वार गीतावलीमें *'मंगल मोद निधान'* की आड़में कह जनाया है। इस तरह गीतावलीसे श्रीरामजन्मदिन मंगल पाया जाता है, यथा—*'चैत चारु नौमी तिथि सितपख, मध्य-गगन-गत भानु। नखत जोग ग्रह लगन भले दिन मंगल-मोद-निधान॥'* (गी० बा० २) कविने इस युक्तिसे मंगलको जन्म होना लिखा जिसमें किसीके मतका प्रकटरूपसे खण्डन न हो।

नोट—४ अब दूसरी शङ्का लोग यह करते हैं कि वे ही सब योग-लग्न थे तो रामावतार होना चाहिये था। इसका उत्तर महात्मा यह देते हैं कि—'रामस्य नामरूपं च लीलाधाम परात्परम्। एवं चतुष्टयं नित्यं सच्चिदानन्दविग्रहम्॥' (वसिष्ठसं०) अतः रूपसे अवतीर्ण न हुए, लीलाहीका प्रादुर्भाव हुआ।

* 'नौमी भौमबार', 'गोस्वामीजीका मत' *

नागरीप्रचारिणीसभाके सभापति अपनी टीकामें प्रस्तावनाके पृष्ठ ६७में लिखते हैं कि 'गोसाईंजी स्मार्त-वैष्णव थे। जिस दिन उन्होंने रामायण आरम्भ की, उस दिन मंगलवारको उदयकालमें रामनवमी नहीं थी किन्तु मध्याह्नव्यापिनी थी, इसलिये स्मार्तवैष्णवोंहीके मतसे उस दिन रामनवमी होती है। स्मार्तवैष्णव सब देवताओंका पूजन-जप करते हैं, किसीसे विरोध नहीं करते। यही रीति तुलसीदासजीकी भी थी जो कि उनके प्रत्येक ग्रन्थसे स्पष्ट है।'*

हम उनकी इस सम्मतिसे सहमत नहीं हैं। गोस्वामीजी अनन्य वैष्णव रामोपासक† थे, यह बात

* जान पड़ता है कि यह बात उन्होंने सुधाकर द्विवेदीजीकी गणना और मतके अनुसार लिखी है जो विस्तारपूर्वक डा० ग्रियर्सनने १८९३ ई०के इण्डियन ऐन्टिक्वेरीमें Notes on Tulsidas लेखमें प्रकाशित किया है। सम्भव है कि किसी औरकी गणनामें कुछ और निकले।

† ईसु न, गनेसु न, दिनेसु न, धनेसु न, सुरेसु सुर, गौरि गिरापति नहि जपने। तुम्हरेई नामको भरोसो भव तरिबेको, बैठें-उठें, जागत-बागत सोएँ सपनें॥ तुलसी है बावरो सो रावरोई रावरी सौं, रावरेऊ जानि जियँ कीजिए जु अपने। जानकीरमन मेरे! रावरें बदनु फेरें ठाउँ न समाउँ कहाँ, सकल निरपने॥' (क० उ० ७८) पुनश्च, 'रामकी सपथ सरबस मेरें रामनाम, कामधेनु-कामतरु मोसे छीन छाम को॥' (क० उ० १७८) पुनश्च 'संकर साखि जो राखि कहौं कछु तौ जरि जीह गरो। मेरे माय-बाप दोउ आखर हौं सिसुअरनि अर्यो' (विनय०) इत्यादि।

शपथ खाकर उन्होंने कही है। पाद-टिप्पणीमें दिये हुए पद इसके प्रमाण हैं। देवताओंकी वन्दनासे उनकी अनन्यतामें कोई बाधा नहीं पड़ सकती। यह भी याद रहे कि उन्होंने छः ग्रन्थोंमें किसी देवताका मङ्गल नहीं किया। इस विषयमें कुछ विचार मं० श्लो० १ मं० और सो० १में दिये जा चुके हैं। वहीं देखिये। मानसमें उन्होंने स्मृति-प्रतिपादित धर्म एवं पञ्चदेवोपासनाको ही प्रश्रय दिया है क्योंकि यह ग्रन्थ सबके लिये है।

'नवमी' उस दिन थी और दूसरे दिन भी। पर दूसरे दिन उनके इष्ट हनुमान्‌जीका दिन न मिलता, नवमी तो जरूर मिलती। और उन्हें अपने तीनों इष्टोंका जन्मदिन मङ्गलवार होनेसे वह दिन उन्हें अतिप्रिय अवश्य होना ही चाहिये, उसे वे क्यों हाथसे जाने देते? अतएव ग्रन्थ रचनेके लिये मङ्गलवारको मध्याह्नकालमें नवमी पाकर ग्रन्थ रचा। भेद केवल व्रतमें होता है। व्रत उस दिन करने या न करनेसे स्मार्त या वैष्णवमत सिद्ध हो सकता है, सो इसका तो कोई पता नहीं है। (एकादशीव्रतका उदाहरण लीजिये। वैष्णवोंमें ही मतभेद है। जो अर्द्धरात्रिसे दिनका प्रवेश मानते हैं वे रातको बारह बजकर एक पलपर एकादशी लगनेसे उस दिन सबेरे व्रत नहीं करेंगे, पर सबेरे जो तिथि होगी वह एकादशी ही कहलायेगी, व्रत अवश्य दूसरे दिन द्वादशीको होगा तो भी वे द्वादशीको भी व्रतके लिये एकादशी ही कहेंगे। पर तिथि लिखेंगे द्वादशी ही) और यह भी स्मरण रहे कि वे तो दो वर्ष पूर्वसे ही बराबर केवल एक समय दूध पीकर ही रहते रहे। जब नित्य फलाहार ही करते थे तब व्रत उसी दिन कैसे होना कहा जाय, दूसरे ही दिन क्यों न माना जाय? दूसरे, यह भी विचारणीय है कि उनके समयमें श्रीरामानन्दीय वैष्णवोंमें उत्सव उदया तिथिहीको मनाया जाता था या जिस दिन मध्याह्नकालमें नवमी या कोई नक्षत्रविशेष होता था। जबतक यह निश्चय न हो तबतक यह कैसे मान लें कि वे स्मार्त-वैष्णव थे?

असुर नाग खग नर मुनि देवा। आइ करहिं रघुनायक सेवा॥ ७॥
जन्म महोत्सव रचहिं सुजाना। करहिं राम कल-कीरति गाना॥ ८॥

अर्थ—असुर, नाग, पक्षी, मनुष्य, मुनि और देवता आकर श्रीरघुनाथजीकी सेवा करते हैं॥ ७॥ सुजान लोग जन्मके महान् उत्सवकी रचना करते हैं और श्रीरामचन्द्रजीकी सुन्दर कीर्ति गाते हैं॥ ८॥

टिप्पणी—१ (क) यहाँ *'असुर नाग खग'* से इनमें जो रामोपासक हैं उन्हींको यहाँ समझना चाहिये। *'असुर'* में प्रह्लाद, विभीषण आदि, नागसे अनन्त, वासुकी आदि और खगसे कागभुशुण्डि, गरुड़, जटायु आदि जानिये। नरसे ध्रुव, मनु, अम्बरीषादि, मुनिसे शुक-सनकादि, नारदादि और देवसे ब्रह्मादि, इन्द्रादि जानिये। यथा—'**विमानैरागता ब्रह्ममयोध्यायां महोत्सवम्। ब्रह्मेन्द्रप्रमुखा देवा रुद्रादित्यमरुद्गणाः॥ वसवो लोकपालाश्च गन्धर्वाप्सरसोरगाः। अश्विनौ चारणाः सिद्धाः साध्याः किन्नरगुह्यकाः। ग्रहनक्षत्रयक्षाश्च विद्याधरमहोरगाः। सनकाद्याश्च योगीन्द्रा नारदाद्या महर्षयः॥**' (संस्कृत खर्रेसे) पुनः, (ख) 'असुर और नाग' पातालवासी हैं, *'नर खग मुनि'* मृत्युलोकवासी हैं, और देवता स्वर्गवासी हैं। इन सबको कहकर यह जनाया कि तीनों लोकोंके हरिभक्त उस दिन आते हैं। पुनः, (ग) ऊपर कह आये हैं कि 'तीर्थ' आते हैं, तीर्थ स्थावर हैं। और, यहाँ असुर आदिका आना कहा जो जङ्गम हैं। इस तरह चराचरमात्रके हरिभक्तोंका आना सूचित किया।

टिप्पणी—२ *'आइ करहिं……'* इति। (क) साक्षात् राम-जन्ममें देवता अयोध्याजी नहीं आये थे, उन्होंने आकाशहीसे सेवा की थी। यथा—*'गगन बिमल संकुल सुरजूथा। गावहिं गुन गंधर्ब बरूथा॥'*, *'बरषहिं सुमन सुअंजुलि साजी। गहगह गगन दुंदुभी बाजी॥'* *'अस्तुति करहिं नाग मुनि देवा। बहु बिधि लावहिं निज निज सेवा॥'* महोत्सवकी रचना साक्षात् रामजन्म-समय पुरवासियोंने ही की थी, देवता महोत्सव देखकर अपने भाग्यको सराहते हुए चले गये थे, यथा—*'देखि महोत्सव सुर मुनि नागा। चले भवन बरनत निज भागा॥'* (१। १९६) और अब जब-जब जन्ममहोत्सव होता है तब-तब सब आकर महोत्सव रचनेमें सम्मिलित होते हैं। इस भेदका कारण यह है कि जन्म-समय उनके आनेसे ऐश्वर्य खुलनेका भय था,

उस समय आनेका योग न था, जैसा भगवान् शिवके विचारमें भी साफ स्पष्ट है—'*गुपुत रूप अवतरेउ प्रभु गएँ जान सबु कोइ*' और अब ऐश्वर्य खुलनेका भय नहीं है। इसीसे अब स्वयं आकर रचते हैं और यश गाते हैं। पहिले अवधवासियोंने गाये और उन्होंने सुने, इन्होंने महोत्सव रचा, उन्होंने देखा और सराहा। देवताओंका गाना गीतावलीमें पाया जाता है, यथा—'*उघटहिं छंद-प्रबंध, गीत-पद-राग-तान-बंधान। सुनि किन्नर गंधरब सराहत, बिथके हैं, बिबुध-बिमान॥*' (गी० बा० २) (ख) श्रीरामजन्मसमय महोत्सवका वर्णन है, इसीसे रामचरितमानसके जन्ममें जन्मोत्सवका वर्णन किया है। (ग)—'*सुजाना*' अर्थात् जो रचनेमें प्रवीण हैं। पुनः जो चतुर हैं, सज्जन हैं। [नोट—महोत्सव-रचना १९४वें, १९५वें दोहेमें है।]

दोहा—मज्जहिं सज्जन बृंद बहु पावन सरजू नीर।
जपहिं राम धरि ध्यान उर सुंदर स्याम सरीर॥ ३४॥

अर्थ—सज्जनोंके झुण्ड-के-झुण्ड पवित्र श्रीसरयूजलमें स्नान करते हैं और हृदयमें सुन्दर श्यामशरीरवाले रघुनाथजीका ध्यान धारण करके उनके राम-नामको जपते हैं॥ ३४॥

नोट—१ यहाँ बतलाते हैं कि उस दिन क्या करना चाहिये, श्रीरामोपासकोंको यह जानना जरूरी है। श्रीसरयूस्नान करके श्रीरामचन्द्रजीके श्यामशरीरका, जैसा ग्रन्थमें वर्णन किया गया है, ध्यान करते हुए उनके नामको जपना चाहिये।

टिप्पणी—१ (क) महोत्सवके पीछे स्नानको लिखा है जिसका भाव यह है कि अवभृथस्नान करते हैं [यज्ञमें दीक्षाके अन्तमें जो विधिपूर्वक स्नान होता है उसे 'अवभृथस्नान' कहते हैं—'दीक्षान्तोऽवभृथो यज्ञः।' (अमरकोष २। ७। २७)] अथवा दधिकाँदव करके स्नान करते हैं। (ख)—'*जपहिं राम धरि ध्यान उर*' इति। "*सुंदर स्याम सरीर*" का ध्यान करना लिखकर जनाया है कि योगियोंकी तरह ज्योति नहीं देखते। ध्यान धरकर नाम इसलिये जपा जाता है कि मूर्तिके संयोगसे 'नाम' अत्यन्त शीघ्र सिद्ध होता है, नहीं तो यदि रामनाम जपते समय प्रपञ्चमें मन लगा तो प्रपञ्चका सम्बन्ध होगा। इसीसे मन्त्र जल्द सिद्ध नहीं होता। भानुपीठका उदाहरण इस विषयमें उपयोगी है। भानुपीठ (सूर्यमुखी, आतशी शीशा) और भानुका जबतक ठीक मिलान नहीं होता तबतक आग नहीं निकलती, अच्छी तरह मिलान होनेहीपर आग प्रकट होती है। इसी तरह जब मूर्तिका अनुसन्धान करके मन्त्र जपा गया तब मन्त्र बहुत शीघ्र सिद्ध होता है। ऐसा करनेसे श्रीरामजीकी प्राप्ति होती है, श्रीरामजी हृदयमें आ जाते हैं। नाम-महाराज रूपको हृदयमें प्रकट कर देते हैं, यथा—'*सुमिरिय नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेखें॥*'

नोट—२ '*जपहिं राम*' कहकर 'राम-राम' अर्थात् रामनाम जपना कहा। रामनाम मन्त्र है; यथा—'*महामन्त्र जोइ जपत महेसू।*' मन्त्र शब्दका अर्थ है 'जो मनन करनेसे जापकको तारता है।'—'मननात्त्राणनान्मन्त्रः' (रा० पू० ता० १। १२)। मनन मन्त्रके अर्थका (अर्थात् मन्त्रके देवताके रूप, गुण, ऐश्वर्य आदिका) होता है, क्योंकि मन्त्र वाचक होता है और अर्थ वाच्य है। यहाँ राम मन्त्र है, अतः श्रीरामजी उसके वाच्य हैं। जब मुखसे वाचक (रामनाम) का उच्चारण होगा और साथ ही वाच्य श्रीरामजीका ध्यान हृदयमें होगा तब वह शीघ्र फलप्रद होता है। यथा—'मन्त्रोऽयं वाचको रामो वाच्यस्याद्योग एतयोः। फलदश्चैव सर्वेषां साधकानां न संशयः॥' (रा० पू० ता० ४।२) योगसूत्रमें भी जप करते समय उसके अर्थकी भावना करनेका भी उपदेश है, यथा—'तज्जपस्तदर्थभावनम्' (योगसूत्र १। १। २८)।

नोट—३ (क) यह जन्मका समय है, अतः यहाँ 'ध्यान' से बालरूपका ही ध्यान करना सूचित करते हैं (करुणासिन्धुजी), (ख) गोस्वामीजीने प्रायः नील कमल, नील मणि, जलभरे हुए श्याममेघ, केकिकण्ठ, तमाल और यमुनाके श्याम जलकी उपमा श्रीरामजीके शरीरके वर्णके सम्बन्धमें ग्रन्थभरमें दी है; परन्तु यहाँ '*स्याम सरीर*' ही कहकर छोड़ दिया, कोई उपमा श्यामताकी यहाँ नहीं दी। कारण स्पष्ट है। भक्तोंके भाव, भक्तोंकी रुचि भिन्न-भिन्न होती है, अपनी-अपनी इष्टसिद्धिके लिये लोग भिन्न-भिन्न प्रकारका

ध्यान करते हैं। यहाँ त्रैलोक्यके भक्त एकत्र हैं। जो श्यामता जिसके रुचिके, इष्टके, भावके अनुकूल हो वह वैसा ही ध्यान करता है, इसीसे पूज्य कविने श्यामताकी कोई उपमा देकर उसको सीमित नहीं किया। सबके मतका, सबकी भावनाओंका परिपोषण किया है और साथ ही यह भी नहीं कहा है कि किस अवस्थाके रूपका ध्यान करते हैं।

दरस परस मज्जन अरु पाना। हरै पाप कह बेद पुराना॥ १॥

अर्थ—वेद-पुराण कहते हैं कि (श्रीसरयूजीका) दर्शन, स्पर्श, स्नान और जलपान पापको हरता है॥ १॥

नोट—१ ग्रन्थकारने 'दरस, परस, मज्जन और पान' ये क्रमानुसार कहे हैं। पहले दूरसे दर्शन होते हैं, निकट पहुँचनेपर जलका स्पर्श होता है, भक्तजन उसे शीशपर चढ़ाते हैं, जलमें प्रवेश करके फिर स्नान किया जाता है, तत्पश्चात् जल पीते हैं—यह रीति है। यह सब क्रम स्नानके अन्तर है क्योंकि बिना दर्शन-स्पर्शके स्नान हो ही नहीं सकता। स्नानारम्भहीमें आचमनद्वारा पान भी हो जाता है। इसलिये प्रधान मज्जन ठहरा। इसी कारण उत्तरकाण्डमें श्रीमुखसे कहा गया कि *'जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा।'*

नोट—२—यहाँसे श्रीसरयू-माहात्म्य कहना प्रारम्भ किया। ३—उपर्युक्त चार (दरस, परस, मज्जन, पान) कर्मोंमेंसे किसी भी एक कर्मके होनेसे पापका क्षय होता है। ४—बैजनाथजी 'दरस'से श्रीस्वरूप वा श्रीसरयू-दर्शन, 'परस' से जन्मभूमिकी धूलिका स्पर्श और 'पान' से श्रीचरणामृत अथवा श्रीसरयूजलका पान—ऐसा अर्थ करते हैं, परन्तु मेरी समझमें यहाँ श्रीसरयूजीके ही दर्शन आदिका प्रसंग है।

नदी पुनीत अमित महिमा अति। कहि न सकै सारदा बिमल मति॥ २॥

शब्दार्थ—**पुनीत**=पवित्र। **अमित**=जिसकी सीमा नहीं, अतोल। **महिमा**=माहात्म्य, प्रभाव।

अर्थ—यह नदी अमित पवित्र है, इसकी महिमा अनन्त है, (कि जिसे) निर्मल बुद्धिवाली सरस्वतीजी भी नहीं कह सकतीं॥ २॥

नोट—१ *'कहि न सकै सारदा·····'* का भाव यह है कि शारदा सबकी जिह्वापर बैठकर, जो कुछ कहना होता है कहलाती हैं, परन्तु जिस बातको वह स्वयं ही नहीं कह सकतीं, उसे दूसरा क्योंकर कह सकेगा? सरस्वती महिमा नहीं कह सकती, इसमें प्रमाण सत्योपाख्यानका है। ब्रह्माजीका वचन सरस्वतीजीसे है—**'सरय्वा महिमानं को वेत्ति लोके च पण्डितः'** इत्यादि (पू० १८। १०) इसकी महिमा और स्थूल-सूक्ष्मभेदसे अयोध्याके दो स्वरूप सत्योपाख्यानमें लिखे हैं (सू० मिश्र)।

नोट—२ *'नदी पुनीत अमित महिमा अति'* इति। अयोध्याकाण्डमें इस बातके उदाहरण बहुत मिलते हैं कि श्रीरामचन्द्रजीके थोड़ी देरके संगसे सर-सरिता आदिकी महिमा इतनी हुई कि देवता और देवनदियाँ इत्यादि भी उनको सराहती थीं। यथा—*'जे सर सरित राम अवगाहहिं। तिन्हहिं देव सर-सरित सराहहिं॥'* (२। ११३), *'सुरसरि सरसइ दिनकर कन्या। मेकलसुता गोदावरि धन्या॥'*, *'सब सर सिंधु नदी नद नाना। मंदाकिनि कर करहिं बखाना॥'* (२। १३८), *'महिमा कहिय कवन बिधि तासू। सुखसागर जहँ कीन्ह निवासू॥'* (२। १३९) और श्रीसरयूजीमें तो आपका (श्रीरामचन्द्रजीका) नित्य स्नान होता था, तब फिर उसकी पुनीतता और महिमाकी मिति कैसे हो सकती है ? काशीमें हजार मन्वन्तरतक, प्रयागमें बारह माघोंपर और मथुरामें एक कल्प वास करनेका जो फल है उससे अधिक फल श्रीसरयूके दर्शनमात्रसे प्राप्त होता है। यथा—**'मन्वन्तरसहस्रेषु काशीवासेन यत्फलम्। तत्फलं समवाप्नोति सरयूदर्शने कृते॥' 'प्रयागे यो नरो गत्वा माघानां द्वादशं वसेत्। तत्फलादधिकं प्रोक्तं सरयूदर्शने कृते॥' 'मथुरायां कल्पमेकं वसते मानवो यदि। तत्फलादधिकं प्रोक्तं सरयूदर्शने कृते॥'** इसी भाव एवं प्रमाणसे *'अमित महिमा अति'* विशेषण दिया गया।

रामधामदा पुरी सुहावनि। लोक समस्त बिदित अति[1] पावनि॥ ३॥

१-अति—१६६१, १७०४, १७२१, १७६२, छ०। परन्तु रा० प० में 'जग' पाठ है। जगपावनी=जगत्‌को पवित्र करनेवाली।

शब्दार्थ—रामधामदा-रामधामकी देनेवाली। रामधाम=परधाम=साकेत।

अर्थ—यह सुन्दर पुरी रामधामको देनेवाली है। सब लोकोंमें प्रसिद्ध है। अत्यन्त पवित्र है॥ ३॥

टिप्पणी—१-'पापीको रामधाम नहीं प्राप्त होता, इसलिये प्रथम पापका नाश होना कहा, यथा—'*हरै पाप कह बेद पुराना*', पीछे रामधामकी प्राप्ति कही है।'

'रामधामदा पुरी०' इति

मानसपरिचारिकाके कर्त्ता यहाँ यह शङ्का करते हैं कि 'रामधाम तो अयोध्याजी ही हैं, वह रामधाम कौन है जिसको अयोध्याजी देती हैं?' और इसका समाधान यों करते हैं कि अयोध्याजीके दो स्वरूप हैं, एक नित्य दूसरा लीला। लीलास्वरूपसे प्रकृतिमण्डलमें रहती हैं, परन्तु उनको प्रकृतिका विकार नहीं लगता वरञ्च वे औरोंके प्रकृति-विकारको हरकर अपने नित्यस्वरूपको देती हैं। श्रीकरुणासिन्धुजी लिखते हैं कि 'श्रीअयोध्याजी दो हैं; एक भूतलपर, दूसरी ब्रह्माण्डसे परे। दोनों एक ही हैं, अखण्ड हैं, एकरस हैं। तत्त्व, स्वरूप, नाम और नित्यतामें अभेद हैं। भेद केवल माधुर्य और ऐश्वर्यलीलाका है, यथा—'**भोगस्थानं परायोध्या लीलास्थानं प्रियं भुवि। भोगलीलापती रामो निरङ्कुशविभूतिकः॥**' (शिवसंहिता २। १८) ब्रह्माण्डमें सात लोकावरण हैं और सात तत्त्वावरण—यह जान लेना जरूरी है।'

वे प्रकृतिपार श्रीअयोध्याका वर्णन यों करते हैं कि 'भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक और सत्यलोक—ये सात लोक हैं। क्रमशः एकसे दूसरा दुगुना है और एकके ऊपर दूसरा है, दूसरेपर तीसरा इत्यादि।'

'पुनः, सदाशिवसंहिताके मतानुसार सत्यलोकके ऊपर क्रमसे कौमारलोक, उमालोक, शिवलोक हैं। भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोकको पृथ्वी मानकर शिवलोकतक सप्तावरण कहे जाते हैं, जिसकी देवलोक संज्ञा है।' 'सत्यलोकके उत्तर ऊर्ध्व प्रमाणरहित रमा-वैकुण्ठलोक है।' 'गोलोक अनन्त योजन विस्तारका है, यह श्रीरामचन्द्रजीका देश है। जैसे नगरके मध्यमें राजाका महत् महल होता है, वैसे ही गोलोकके मध्यमें श्रीअयोध्याजी हैं। यह स्थिति निम्न नकशेसे समझमें आ जायगी—

अनन्त योजन विस्तारका;
इसके मध्यमें साकेत

वासुदेवलोक (चतुर्व्यूह भगवान् रहते हैं यह श्रीरामजीका घनीभूत तेज है।)

महाशंभुलोक (ज्योतिस्वरूप) (श्रीरामजीके तनके तेजका स्वरूप है जिसे योगी ध्यान करते हैं।)

महाविष्णुलोक (विराट्) (श्रीरामजीके अनन्त दिव्य गुणोंकी मूर्ति हैं।)

'इसमें दस आवरण हैं जिनके बाहर चारों दिशाओंमें चार दरवाजे हैं, दरवाजोंके अग्रभागमें परम दिव्य चार वन हैं। श्रीअयोध्याजीके उत्तर श्रीसरयूजी हैं, दक्षिणमें विरजा गङ्गाके नामसे सरयूजी शोभित हैं। दक्षिण द्वारपर श्रीहनुमान्‌जी पार्षदोंसहित विराजमान हैं। इसी तरह पश्चिममें विभीषणजी, उत्तरमें अङ्गदजी और पूर्व द्वारपर सुग्रीवजी विराजमान हैं।' 'नौ आवरणोंमें दासों और सखाओंके मन्दिर हैं और दसवें (भीतरके) आवरणमें सखियोंके मन्दिर हैं। इस दसवें आवरणके मध्यमें परम दिव्य ब्रह्मस्वरूप कल्पतरु है जो छत्राकार है। यह वृक्ष और इसके स्कन्ध, शाखा, पत्तियाँ, फूल, फल, सम्पूर्ण परम दिव्य श्रीरामरूपारूप हैं। इस छत्राकार तरुके नीचे ब्रह्ममय मण्डप है जिसके नीचे परम दिव्य रत्नमय वेदिका है जिसपर परम प्रकाशमान सिंहासन विराजमान है। सिंहासनपर रत्नमय सहस्रदल कमल है जिसमें दो या तीन मुद्राएँ हैं (अग्नि, चन्द्र वा सूर्य भी)। इनके मध्यमें श्रीसीतारामजी विराजमान हैं। श्रीभरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और श्रीहनुमान्‌जी इत्यादि षोडश पार्षद छत्र, चमर, व्यजन इत्यादि लिये हैं।'

'परमानन्य उपायशून्य प्रपत्तिवाले सातों लोकों और सातों तत्त्वावरणोंको भेदकर महाविष्णु, महाशम्भु, वासुदेव, गोलोक होते हुए विरजा पार होकर श्रीहनुमान्‌जीके पास प्राप्त होते हैं। वे पार्षदोंसहित उनको श्रीसीतारामजीके पास ले जाते हैं।'—(करुणासिन्धुजी) 'रामधाम' पर उत्तरकाण्ड (दोहा ३से दोहा ४ तकमें) विशेष लिखा गया है। प्रेमी पाठक वहाँ देख लें।

नोट—उत्तरकाण्डमें श्रीमुखवचन है—***'मम धामदा पुरी सुखरासी', 'मम समीप नर पावहिं बासा'॥*** ये वाक्य श्रीरामजीके हैं? यह धाम कहाँ है? यदि कहनेवाले (श्रीरामजी) का कोई अपना धाम विशेष है तब तो दूसरे रूपका धाम कहनेवालेका धाम (अर्थात् रामधाम वा मम धाम) नहीं हो सकता। और यदि वक्ताका कोई अपना धाम नहीं है, तब देखना होगा कि कहनेवालेका इस 'मम धाम'से क्या तात्पर्य हो सकता है।

श्रुतियों, पुराणों, संहिताओंसे श्रीरामजीका धाम 'अयोध्या' प्रमाणसिद्ध है। ब्रह्मचारी श्रीभगवदाचार्य वेदरत्नजी 'अथर्ववेदमें श्रीअयोध्या' शीर्षक लेखमें लिखते हैं कि—'अथर्ववेद (संहिताभाग) दशमकाण्ड, प्रथम अनुवाक, द्वितीय सूक्तके २८वें मन्त्रके उत्तरार्धसे श्रीअयोध्याजीका प्रकरण आरम्भ होता है'।—

'पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते॥ यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृते नावृतां पुरम्। तस्मै ब्रह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः॥ न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणोजरसः पुरा। पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते॥ अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या। तस्यां हिरण्मयः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥ तस्मिन् हिरण्मये कोशेत्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते। तस्मिन्यद्यक्षमात्मन्वत्तद्वै ब्रह्मविदो विदुः॥ प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा सम्परीवृताम्। पुरं हिरण्मयीं ब्रह्माविवेशापराजिताम्॥'(२८—३३) 'इन मन्त्रोंका अर्थ देकर अन्तमें वे लिखते हैं कि—अथर्ववेदका प्रथम अनुवाक यहाँ ही पूर्ण हो जाता है। इस अनुवाकके अन्तमें इन साढ़े पाँच मन्त्रोंमें अत्यन्त स्पष्ट रूपमें श्रीअयोध्याजीका वर्णन किया गया है। इन मन्त्रोंके शब्दोंमें व्याख्याताओंको अपनी ओरसे कुछ मिलानेकी आवश्यकता ही नहीं है। श्रीअयोध्याजीके अतिरिक्त अन्य किसी भी पुरीका इतना स्पष्ट और सुन्दर साम्प्रदायिक वर्णन मन्त्रसंहिताओंमें होनेका मुझे ध्यान नहीं है।'—(श्रीमद्रामप्रसादग्रन्थमालामणि ५से संक्षेपसे उद्धृत)

विशेष उत्तरकाण्ड ४ (४) ***'अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ'***, १४ (४) ***'अंतकाल रघुपतिपुर जाहीं'*** में देखिये।

श्रीअयोध्याजी त्रिपाद्विभूति और लीलाविभूति दोनोंमें हैं। 'अयोध्या' नित्य है। नारदपाञ्चरात्रान्तर्गत बृहद्ब्रह्मसंहिता द्वितीय पाद सप्तमाध्याय श्लोक २ तथा तृतीय पाद प्रथमाध्यायके अनेक श्लोक इसके प्रमाण हैं। दोहा १६ (१) भी देखिये। पांडेजी 'धाम' के दो अर्थ देते हैं—'शरीर' और 'घर'। रामधामदा='रामका धाम अर्थात् शरीर देनेवाली है, जहाँ सदैव श्रीरामजी अवतार लेते हैं। अथवा धाम अर्थात् घर देनेवाली है।' सम्भवतः उनका आशय है कि सारूप्य और सालोक्य मुक्ति देनेवाली है। अथवा यह भाव हो कि श्रीरामजीको शरीर देनेवाली है अर्थात् उनका यहाँ अवतार या जन्म होता है। परन्तु इस भावमें विशेष महत्त्व नहीं है। 'धाम' का अर्थ तेज भी है—**'तेजो गृहं धाम'** (अमरकोश)। रामधाम देती है अर्थात् श्रीरामजीके तेजमें मिला देती है, सायुज्य मुक्ति प्राप्त कर देती है।

चारि खानि जग जीव अपारा। अवध तजें तनु नहिं संसारा॥ ४॥

अर्थ—जगत्के अगणित जीवोंकी चार खानें (उत्पत्ति-स्थान) हैं, श्रीअयोध्याजीमें शरीर छूटनेसे फिर संसार नहीं रहता (अर्थात् इनमेंसे जिन जीवोंका शरीर श्रीअयोध्याजीमें छूटता है उनका जन्म फिर संसारमें नहीं होता, वे आवागमनके चक्रसे छूट जाते हैं। भवसागर उनके लिये अगम्य नहीं रह जाता।) ॥ ४॥

'अवध तजें तनु नहिं संसारा'

ऊपरकी चौपाईमें जो कहा कि यह पुरी ***'अति पावनि'*** है; उसीको यहाँ दृढ़ करते हैं कि कैसा भी जीव हो वह यहाँ मरनेसे भवसागर पार हो जाता है और रामधामको प्राप्त होता है। यथा—**'अस्यां मृताश्च वैकुण्ठमूर्द्ध्वं गच्छन्ति मानवाः। कृमिकीटपतङ्गाश्च म्लेच्छाः संकीर्णजातयः॥ कौमोदकीकराः सर्वे प्रयान्ति गरुडासनाः। लोकं सान्तानिकं नाम दिव्यभोगसमन्वितम्॥ यद्गत्वा न पतन्त्यस्मिँल्लोके मृत्युमुखे नराः। माहात्म्यं चाधिकं स्वर्गात् साकेतं नगरं शुभम्॥'**(सत्योपाख्यान पू० सर्ग १९। ३६—३८) अर्थात् कृमि, कीड़े, पतिङ्गे, म्लेच्छ आदि सब संकीर्ण जातिके प्राणी यहाँ मरनेपर गदाधारी हो गरुड़पर बैठकर ऊपर वैकुण्ठको जाते हैं। (वहाँसे) दिव्य भोगोंसे युक्त जो सान्तानिक लोक है उसमें प्राप्त होते हैं कि जहाँ जानेपर फिर मृत्युलोकमें मनुष्य नहीं आता। अतः इस शुभ नगर साकेतका माहात्म्य स्वर्गसे अधिक है।

श्रीकरुणासिन्धुजीके मतानुसार जो भजनानन्दी या सुकृती जीव हैं वे मुक्त हो जाते हैं और जो मनुष्य अयोध्याजीमें रहकर पाप करते हैं उनका शरीर छूटनेपर वे फिर यहीं कीट, पतङ्ग आदि योनियोंमें पैदा

होते हैं और यहाँ फिर शरीर छूटनेपर सालोक्य मुक्ति उनको मिलती है। आपका मत है कि यह अयोध्या प्रकृतिसे परे होनेके कारण यहाँ पुनर्जन्म होना भी संसारमें जन्म न होना ही है।

अस्तु जो हो। परन्तु इस अर्थकी संगति चौपाईसे नहीं लगती और न इसका कोई प्रमाण कहीं मिलता है। श्रीअयोध्याजीमें मृत्यु होनेसे रामधाम प्राप्त हुआ, यह सालोक्य मुक्ति हुई। यदि सरयू-स्नान भी जीवने किया है तो धाममें पहुँचनेपर समीपता भी प्राप्त होती है; यह सामीप्य मुक्ति है। उत्तरकाण्डमें श्रीमुखवचन है कि *'जा मज्जन ते बिनहि प्रयासा। मम समीप नर पावहिं बासा॥'*

करुणासिन्धुजी महाराजने जो लिखा है वह दासकी समझमें भयदर्शनार्थ है, जिससे लोग पाप कर्ममें प्रवृत्त न हो जायँ। यह विचार लोकशिक्षार्थ बहुत ही उत्तम है। पर यह विचार श्रीअयोध्याजीके महत्त्वको छुपा देता है। दासकी समझमें तो जो यहाँ निवास कर रहे हैं उनमेंसे किसी-किसीमें जो पाप हमारी दृष्टिमें देख पड़ते हैं वह केवल पूर्वजन्मके अन्तिम समयकी भक्तके हृदयमें उठी हुई वासनाका भोगमात्र है, उस वासनाकी पूर्ति कराकर श्रीसीतारामजी उसे अपना नित्यधाम देते हैं। भक्तमालमें दी हुई 'अल्ह-कोल्ह' दोनों भाइयोंकी कथा प्रमाणमें ले सकते हैं।—विशेष लङ्काकाण्डके *'जिमि तीरथके पाप।'* (९६) में भी देखिये।

श्रीनंगे परमहंसजी—जैसे काशी-प्रयागका ऐश्वर्य है कि वहाँ शरीर छोड़नेसे पुनः संसारमें नहीं आता है वैसे ही श्रीअवधधामका ऐश्वर्य है। जब अण्डज, ऊष्मज, स्थावरके लिये मुक्ति लिखी गयी है तब मनुष्यके लिये क्यों संशय करना चाहिये, चाहे वह पापी ही क्यों न हो। 'यदि कोई शङ्का करे कि बिना ज्ञानके मुक्ति नहीं (यथा) **'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'** यह विरोध होता है तो इसका समाधान इस प्रकार है कि **'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'** यह श्रुति सर्वदेशी है और काशी, प्रयाग, अयोध्यामें मुक्ति यह श्रुति एकदेशी है, तो सर्वदेशी और एकदेशीमें विरोध कैसे हो सकता है, क्योंकि सर्वदेशके लिये वह सत्य है और एकदेशमें वह भी सत्य है। विरोध उसमें होता है जो एकदेशमें श्रुति भिन्न-भिन्न बातोंको सूचित करती हों। अथवा, सर्वदेशकी दो श्रुतियाँ दो तरहकी बातें कहती हों। किन्तु सर्वदेशी वचन और एकदेशी वचनमें विरोध नहीं हो सकता है, जैसे दो बजे दिनको लालटेनकी जरूरत नहीं और दो बजे रातको उसकी जरुरत है। अब दोनों दो बजेके वचन हैं पर रात्रि और दिनके होनेकी वजहसे लालटेनका विरोध नहीं हो सकता है। अतः सर्वदेशकी और एकदेशकी श्रुतियोंका मेल करके शङ्का करना वृथा है। 'पुनः, यदि आप कहिये कि काशी, प्रयाग, अयोध्या इन तीनोंमें जब केवल शरीरके त्याग करनेसे मुक्ति हो जाती है तब कर्म, उपासना और ज्ञानको करना वृथा है, तो इसका समाधान यह है कि इसमें दो भेद हैं। एक तो इन तीर्थोंके भरोसे रहनेसे इन तीर्थोंमें शरीर छूटे कि कहीं अन्यत्र छूटे' (यह निश्चय नहीं)। यदि अन्यत्र छूटा तो फिर चौरासीमें गया, यह भेद है। दूसरा भेद यह है कि ज्ञानादि वियोगोंसे मनुष्य शरीरके रहते ही जीवन्मुक्तसुखका भोक्ता हो जाता है और शरीरान्तपर मुक्त होनेका निश्चय रहता है और ज्ञानादि तीनों योगोंसे रहित मनुष्य शरीरपर्यन्त नाना प्रकारके दुःखोंसे दुःखी और भयभीत रहता है अतः इन दो भेदों करके काशी, प्रयाग और अयोध्या इन तीर्थोंमें रहते हुए भी ज्ञानादिकी जरूरत है।'

कोई श्रीनंगे परमहंसजीके ही भाव अपने शब्दोंमें इस प्रकार कहते हैं कि धामसे भी मुक्ति होनेकी श्रुतियाँ हैं, यथा—**'काश्यां मरणान्मुक्तिः'** इत्यादि। **'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'** यह सामान्य रीतिसे सब जीवोंके प्रति है, अतः सर्वदेशीय एवं सामान्य है और **'काश्यां मरणान्मुक्तिः'** यह एक काशीके लिये है, अतः विशेष है। विशेष (अपवाद) सामान्य (उत्सर्ग) की अपेक्षा बलवान् होता है, यथा—**'अपवाद इवोत्सर्गम्'** (रघुवंश १५। ७)

इस कथनसे स्पष्ट है कि विशेषवचन (**काश्यां**……) ने सामान्यवचन (**ऋते**……) का बाध किया अर्थात् काशीमें मरनेसे बिना ज्ञान हुए ही मुक्ति होती है। परन्तु पं० अखिलेश्वरदासजी, पं० जानकीदासजी (श्रीहनुमान्‌गढ़ी) आदि विद्वान् महात्माओंका कथन है कि उपर्युक्त समाधानमें बाध्य-बाधक भावका स्वीकार

करना पड़ता है जिसका ग्रहण विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तमें अनुचित माना जाता है। इस मतमें श्रुतियोंका समन्वय ही किया जाता है और इसीसे इस सिद्धान्तका नाम समन्वयसिद्धान्त भी है।

यहाँ इस शङ्काका समाधान इस प्रकार होगा कि उपर्युक्त दोनों वाक्योंमें हेत्वर्थ पञ्चमी है अर्थात् ज्ञान भी मुक्तिका कारण है और काशीमरण भी, परन्तु ज्ञान साक्षात् कारण है और काशीमरण परम्परया अर्थात् प्रयोजक कारण है। श्रीरामतापिनीयोपनिषद्के कथनानुसार काशीमें मृत्युसमय शिवजी तारक-मन्त्रका जीवोंको उपदेश करते हैं। उस उपदेशसे ज्ञान प्राप्त होता है और तब मुक्ति होती है। इस संगतिमें बाध्य-बाधक-भावको स्वीकार न करते हुए भी दोनों वाक्योंका समन्वय उचित ढंगसे हो जाता है।

यदि केवल काशीमरणसे मुक्ति होना स्वीकार करते हैं तो श्रीरामतापिनीयोपनिषद्के काशीवासी जीवोंकी मुक्तिके लिये शिवजीका वरदान माँगना और भगवान्का वरदान देना इत्यादि प्रसङ्गकी सङ्गति कैसे होगी? [यह प्रसङ्ग पूर्व दोहा १९ (३) *'कासी मुकुति हेतु उपदेसू।'* में उद्धृत किया गया है। वहीं देखिये।]

नोट—१ कुछ महात्माओंसे ऐसा सुना है कि नाम, रूप, लीला और धाममेंसे किसीका भी अवलम्ब ले लेनेसे अन्तसमय जिस ज्ञानकी, अन्तमें मुक्तिके लिये, जरूरत है वह उसी साधनद्वारा उस समय बिना परिश्रम स्वतः प्राप्त हो जाता है। हमारे प्राचीन ऋषियोंका सम्मत है कि नामजापक यदि अन्तसमय वात, पित्त, कफकी प्रबलताके कारण मुखसे नाम-उच्चारण न कर सके तो प्रभु स्वयं उसकी ओरसे नामजप करते हैं, यथा—**'यदि वातादिदोषेण मद्भक्तो मां च न स्मरेत्। अहं स्मरामि तं भक्तं नयामि परमां गतिम्॥'** (वसिष्ठरामायण। सी० रा० प्र० प्र०) और अन्तमें उसके जीवको गोदमें लेकर जिस द्वारसे, जिस नाड़ीसे, प्राण निकलनेसे मुक्ति होती है उसी द्वारसे उसको निकाल ले जाते हैं। उत्तरकाण्डके *'जा मजन ते बिनहिं प्रयासा'* के *'जा मजन'* का भाव स्पष्ट है कि कोई भी क्यों न हो, दुष्कृती या सुकृतीका भेद नहीं है। *'चारि खानि'*—बा० ८ (१) में देखिये।

नोट—२ नाम, रूप, लीला और धाम चारों सच्चिदानन्दरूप हैं। गोस्वामीजीने इन चारोंको क्रमसे लिखा है। सबका ऐश्वर्य, सबका माहात्म्य एक-सा दिखाया है—

नामवर्णन, यथा—*'बंदउँ नाम राम रघुबर को'* से *'नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ'* तक। *'जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा॥'*

रूपवर्णन, यथा—*'करउँ नाइ रघुनाथहिं माथा'* से *'तुलसी कहूँ न राम से साहिब सीलनिधान'* तक। *'राम सरिस को दीन हितकारी। कीन्हें मुकुत निसाचर झारी॥'*

लीलावर्णन, यथा—*'निज संदेह मोह भ्रम हरनी'* से *'रामचरित राकेसकर सरिस सुखद सब काहु'* तक। *'मंत्र महामनि बिषय ब्यालके। मेटत कठिन कुअंक भाल के॥'*

धामवर्णन, यथा—*'अवधपुरी यह चरित प्रकासा'* से *'सब बिधि पुरी मनोहर जानी'* तक।—(रा० प्र०)

श्रीअयोध्याजीकी विशेष महिमा होनेका कारण यह है कि सातों पुरियोंमें यह आदिपुरी है। दूसरी बात यह है कि और सब पुरियाँ भगवान्के अङ्ग-प्रत्यङ्ग हैं और यह तो शिरोभाग है, यथा—**'विष्णोः पाद अवन्तिका गुणवती मध्ये च काञ्चीपुरी नाभौ द्वारवती तथा च हृदये मायापुरी पुण्यदा। ग्रीवामूलमुदाहरन्ति मथुरां नासाग्रवाराणसीमेतद् ब्रह्मपदं वदन्ति मुनयोऽयोध्यापुरीं मस्तके॥'**(पद्मपुराण)

सब बिधि पुरी मनोहर जानी। सकल सिद्धि-प्रद मंगल-खानी॥ ५॥
बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा। सुनत नसाहिं काम मद दंभा॥ ६॥

अर्थ—अयोध्यापुरीको सब तरहसे मनोहर और सब सिद्धियोंकी देनेवाली तथा समस्त मङ्गलोंकी खान समझकर इस निर्मल कथाको मैंने (यहाँ) प्रारम्भ किया, जिसके सुननेसे काम, मद और दम्भका नाश हो जाता है॥ ५-६॥

नोट—१ (क) *'सब बिधि'* इति। सब प्रकारसे, जैसा ऊपर कह आये हैं कि यहाँ ब्रह्मका अवतार

हुआ, सब तीर्थ यहाँ आते हैं, यहाँ रामजन्म-महोत्सव होता है जिसमें देवता आदि सब सम्मिलित होते हैं, यह रामधामकी देनेवाली है, *'अति पावनि'* है, सब सिद्धियों और मङ्गलोंकी देनेवाली है, यहाँ श्रीसरयूजी हैं जो सब पापोंका क्षय करके सामीप्य-मुक्तिकी देनेवाली हैं, यहाँ श्रीरामजन्मके सब योग हैं और यह रामचरित है, इत्यादि भाँतिसे मनोहर है। (ख) ग्रन्थकारने उपर्युक्त कथनसे स्थानशुद्धि दिखलायी। इससे व्यञ्जित होता है कि उत्तम कामोंकी सिद्धिके लिये स्थानशुद्धिकी आवश्यकता है अर्थात् बिना स्थानशुद्धिके कोई कार्य कदापि सिद्ध नहीं हो सकता। इसीलिये ऐसे शुभ अवसर और उत्तम स्थलमें कथाका आरम्भ किया। आधी-आधी चौपाईमें दोनों (स्थल और कथा) का फल-माहात्म्य दिखलाया (सू० मिश्र)।

टिप्पणी—१ ऊपरतक इस पुरीके प्रभावसे पापका क्षय होना और रामधामका प्राप्त होना कहा; अर्थात् परलोक बनना कहा और अब (*'सकल सिद्धिप्रद मंगलखानी'* कहकर) इस लोकका सुख भी देना बताया।

टिप्पणी—२ *'बिमल'* पद देकर यह सूचित किया कि कथा निर्मल है, इसलिये इसके अवतारके लिये *'बिमल'* स्थान भी होना चाहिये था। अस्तु! यह पुरी मानसके अवतारके योग्य है। ३—काम, मद और दम्भ ये तीनों कथाके विरोधी हैं। इनमेंसे काम मुख्य है, यथा—*'क्रोधिहि सम कामिहि हरि कथा। ऊसर बीज बये फल जथा॥'* (सुं० ५८) इसलिये कामको पहिले कहा। श्रीरामचन्द्रजीने अवतार लेकर रावणको मारा और मानसका अवतार काम, मद, दम्भके नाशके लिये हुआ।

नोट—२ पाँड़ेजी कहते हैं कि श्रीरघुनाथजीका अवतार रावण, कुम्भकर्ण और मेघनाद तीनके वधहेतु हुआ, वैसे ही कथाका भी आरम्भ तीनहीके वधार्थ हुआ। दम्भ रावण, मद कुम्भकर्ण और काम मेघनादका वध कथा करती है।

नोट—३ यहाँ रामचरितमानसका अवतार कहा, आगे नामकरण इत्यादि कहेंगे।

रामचरित-मानस एहि नामा। सुनत श्रवन पाइअ बिश्रामा॥ ७॥

अर्थ—इसका नाम रामचरितमानस है। इसको कानोंसे सुनते ही विश्राम (शान्ति) मिलता है॥ ७॥

नोट—१ ग्रन्थका आविर्भाव कहकर अब नाम कहते हैं। श्रीरामचन्द्रजीका नामकरण-संस्कार श्रीवसिष्ठजी-द्वारा हुआ और मानसका शिवजीने नाम रखा, यथा—*'धरेउ नाम हिय हेरि हरषि हर।'* (चौ० १२)

नोट—२ *'सुनत श्रवन पाइअ बिश्रामा'* इति। (क) अर्थात् सुनते ही कानोंको सुख मिलता है। वा, कानोंसे सुनते ही मनको विश्राम मिलता है, फिर मन कहीं नहीं भटकता। (ख) मानससरका स्नान कथाका श्रवण है, सर-स्नानसे मल छूटता है, कथा-श्रवणसे पाप मिटते हैं। स्नानसे श्रम दूर होता है, कथासे अनेक योनियोंमें भ्रमण करनेके कारण जीवको जो श्रम हुआ वह दूर होता है, विश्राम मिलता है। स्नानसे घामकी तपन दूर हुई, कथासे त्रिताप गये (बै०)। (ग) श्रीरामचरितमानसमें ही श्रीगोस्वामीजीने अपना, गरुड़जी और पार्वतीजीका इससे विश्राम पाना कहा है; यथा क्रमशः *'पायो परम बिश्राम राम समान प्रभु नाहीं कहूँ।'* (७। १३०), *'सुनेउँ पुनीत रामगुन ग्रामा। तुम्हरी कृपा लहेउँ बिश्रामा॥'* (७। ११५), *'हरि चरित्र मानस तुम्ह गावा। सुनि मैं नाथ अमित सुख पावा॥'* (७। ५३) इसी तरह और लोग भी जो सुनेंगे उनको विश्राम मिलेगा।

नोट—३ गोस्वामीजीने अपने भाषा-प्रबन्धकी जो भूमिका की है वह ३२ वें दोहेपर ही समाप्त हो गयी है—*'कीन्ह प्रश्न'* से लेकर *'नसाहिं काम मद दंभा'* तक इस कथा-प्रबन्धका 'अथ' है। रामचरितमानसके नामसे इस कथाका आरम्भ है। जैसे कोई कहे 'अथ श्रीरामचरितमानसं लिख्यते' उसी तरह *'रामचरितमानस एहि नामा'* यह कहा है।—[विशेष विस्तार *'रामचरित सर कहेसि बखानी।'* (उ० ६४। ७—९) में देखिये] (गौड़जी)।

मन-करि बिषय-अनल-बन जरई। होइ सुखी जौं येहिं सर परई॥ ८॥

अर्थ—मनरूपी हाथी विषयरूपी अग्निके जंगलमें (वा, विषयरूपी वनाग्निमें) जल रहा है। यदि वह इस तालाबमें आ पड़े तो सुखी हो जावे॥ ८॥

नोट—१ (क) भाव यह है कि यदि चरित्रमें मन लगे तो मनका ताप दूर हो जावे और यदि इस मानससरमें आकर पड़ ही जावे तो फिर इतना सुख मिले कि जो ब्रह्मसुखसे भी अधिक है, फिर तो सरसे बाहर निकलनेकी इच्छा ही न करेगा। यथा—*'ब्रह्मलोक सब कथा कहाहीं॥ सुनि बिरंचि अतिसय सुख मानहिं। पुनि पुनि तात करहु गुन गानहिं॥ सनकादिक नारदहिं सराहहिं। जद्यपि ब्रह्म निरत मुनि आहहिं॥ सुनि गुनगान समाधि बिसारी। सादर सुनहिं परम अधिकारी॥ जीवनमुक्त ब्रह्मपर चरित सुनहिं तजि ध्यान।'* (७। ४२) पुनः, यथा—*'हर हियँ रामचरित सब आए। प्रेम पुलक लोचन जल छाए॥ मगन ध्यान रस दंड जुग पुनि मन बाहर कीन्ह। रघुपति चरित महेस तब हर्षित बरनइ लीन्ह॥'* (बा० १११) *'मम गुनग्राम नाम रत गत ममता मद मोह। ताकर सुख सोइ जानइ परानंद संदोह॥'* (७। ४६) इत्यादि। (ख) *'परई'* शब्द कैसा सार्थक है! इसे देकर बताते हैं कि हाथीकी तरह इसमें पड़ा ही रहे, बाहर न निकले, तब सुख प्राप्त होगा। (ग) मन विषयाग्निमें जल रहा है, इसीसे सरमें सुख पाना कहा। क्योंकि *'जो अति आतप ब्याकुल होई। तरु छाया सुख जानइ सोई॥'* (७। ६९) भामिनीविलासमें इसी भावका यह श्लोक विनायकी टीकामें दिया है **'विशालविषयावलीवलयलग्नदावानलप्रसृत्वरशिखावलीकवलितं मदीयं मनः। अमन्दमिलदिन्दिरे निखिलमाधुरीमन्दिरे मुकुन्दमुखचन्दिरे चिरमिदं चकोरायताम्॥'** अर्थात् विशाल विषयपंक्तिरूपी दावानलकी अत्यन्त लपटोंसे व्याप्त मेरा मन, जिसमें लक्ष्मीजी संश्लिष्ट हैं ऐसे निखिल माधुर्ययुक्त मुकुन्दभगवान्के मुखचन्द्रका, चिरकाल चकोर बने। पुनश्च यथा—**'अयं त्वत्कथामृष्टपीयूषनद्यां मनोवारणः क्लेशदावाग्निदग्धः। तृषार्तोऽवगाढो न सस्मार दावं न निष्क्रामति ब्रह्मसम्पन्नवन्नः॥'** (भा० ४। ७। ३५) अर्थात् नाना प्रकारके क्लेशरूप दावानलसे दग्ध हुआ हमारा मनरूपी हाथी अति तृषित होकर आपकी कथारूपी निर्मल अमृतनदीमें घुसकर उसमें गोता लगाये बैठा है। वहाँ ब्रह्मानन्दमें लीन-सा हो जानेके कारण उसे न तो संसाररूप दावानलका ही स्मरण रहा है और न वह उस नदीसे बाहर ही निकलता है।

नोट—२ *'एहिं'* (अर्थात् इसी सरमें) कहकर अन्य उपायोंको सामान्य जनाया। भाव यह कि अन्य उपायोंसे काम नहीं चलनेका। (पां०)

नोट—३ श्रीकरुणासिन्धुजी लिखते हैं कि 'तीनों तापोंसे संयुक्त जो अनेक चिन्ताएँ हैं वही दावानल लग रहा है।' सूर्यप्रसाद मिश्रजीका मत है कि यहाँ संसारको वन, विषयको अग्नि कहा और अग्नि लगानेवाले कामादि किरात हैं। जैसे अग्नि लगा देनेसे उसमें रहनेवाले हाथी जल मरते हैं, क्योंकि भारी शरीर होनेके कारण बाहर निकल भी नहीं सकते, वैसे ही मन अनेक वासनारूप होनेके कारण स्थूलकायरूप इन्द्रियोंसे प्रेरित विषयसे मर रहा है।

पं० रामकुमारजी:—ऊपर चौपाई (७) *'सुनत श्रवन पाइअ बिश्रामा'* से *'रामचरितमानस मुनि भावन'* तक दिखाया है कि यह मानस विषयी, मुमुक्षु और मुक्त तीनों प्रकारके जीवोंका हितकारी है। *'मन करि बिषय अनल बन जरई। होइ सुखी जौं एहिं सर परई।'* से विषयी जीवोंका हित दर्शित क्रिया, क्योंकि वे दिन-रात शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध आदि विषयोंमें आसक्त रहते हैं। विषयी जीवोंको क्या सुख मिलता है, यह उत्तरकाण्डमें दिखाया है। यथा—*'बिषइन्ह कहँ पुनि हरिगुनग्रामा। श्रवन सुखद अरु मन अभिरामा॥'* (५३। ४) इनको दोनों सुख प्राप्त होते हैं—कानोंका सुख और मनको विश्राम वा आनन्द। इसीसे ऊपर पहले ही कह दिया कि *'सुनत श्रवन पाइअ बिश्रामा।'* मुमुक्षु इसे सुनकर, पढ़कर प्रसन्न होते हैं क्योंकि *'सुनत नसाहिं काम मद दंभा'* और *'सुनत श्रवन पाइअ बिश्रामा।'* तथा आगे *'मुनि भावन'* कहकर मुक्त जीवोंका हित बताया है। 'जीवन्मुक्त कुछ नहीं चाहते, वे इस ग्रन्थकी उपासना करते हैं'।

नोट—४ 'मानससर हिमालयपर है और हिमजलसे अग्निसे जले हुएका ताप नहीं रहता। इसीसे विषयाग्निसे जलते हुए मनको मानससरमें पड़े रहनेको कहा।' (मा० त० वि०)

रामचरितमानस मुनि-भावन। बिरचेउ संभु सुहावन पावन॥ ९॥

शब्दार्थ—भावन=भानेवाला, रुचिकर। **बिरचेउ**=अच्छी तरहसे रचा, निर्माण किया।

अर्थ—(इस) मुनियों (के मन) को भानेवाले सुहावने और पवित्र 'रामचरितमानस' की रचना श्रीशिवजीने की॥ ९॥

नोट—१ दोहा ३४की चौपाई ४ ***'संवत सोरह सै एकतीसा'*** से लेकर दोहा ३५ की चौपाई १२ ***'धरेउ नाम हिय हेरि हरषि हर'*** तक श्रीरामचरितमानस और श्रीरामचन्द्रजी दोनोंमें समता वा एकता दिखायी है।

नोट—२ ***'मुनि भावन'*** कहकर सूचित किया कि यह शान्तिरससे परिपूर्ण है। ***'बिरचेउ संभु'*** से ईश्वर-कोटिवालोंका रचा हुआ, ***'सुहावन'*** से काव्यालङ्कार आदि गुणोंसे परिपूर्ण तथा दोषरहित और ***'पावन'*** से इसमें पवित्र राम-यश-वर्णन होना जनाया है। पुनः ***'सुहावन पावन'*** अपने स्वरूपसे है और सेवकके त्रिविध दोष एवं दुःखको नाश करता है।—देखिये ३५ (८)भी। पुनः, ३—***'सुहावन'*** से मुमुक्षुको ज्ञानभक्तिसाधक और ***'पावन*** से 'विषयी' अधम जीवोंको भगवत्‌में लगा देनेवाला जनाया। (सू० मिश्र) अथवा, ***'सुहावन पावन'*** से शान्त और शृङ्गारयुक्त तथा ***'मुनि भावन'*** से 'मुनियोंकी भावनासे शिवजीका इसे विशेष करके रचना जनाया। (पां०)

श्रीरामचन्द्रजी और श्रीरामचरितमानसका ऐक्य

श्रीरामचन्द्रजी	श्रीरामचरितमानस
१ षोडशकलाका पूर्णावतार। पुनः, ३१ सर जोड़कर रावणका मरना।	संवत् १६३१ में कथाका प्रारम्भ करना ही १६कलामें ३१ का जोड़ समझिये। इससे महामोहका नाश हुआ और होता रहेगा।
२ दोनोंका जन्म नवमी, मङ्गलवार, चैत्र शुक्लपक्ष।	अभिजितनक्षत्र, मध्याह्नकाल श्रीअयोध्याजीमें हुआ।
३ रामावतार रावण, मेघनाद, कुम्भकर्ण और उनकी सेनाके वध करनेके लिये हुआ।	मानसका अवतार मोह, काम, मद, दम्भके नाशके लिये हुआ। ३५ (६)
४ दैवसर्गके आदर्श श्रीरामजी, आसुरसर्गका आदर्श रावण।	दैवी सम्पत्तिका आदर्श श्रीरामचरित, आसुर सम्पत्तिके आदर्श मोह-मद आदि।
५ रावण आदिके नाशसे देवता और मुनि सभी सुखी हुए।	यहाँ विषयी, साधक, सिद्ध तीनोंको सुख मिलता है। ३५ (६—८)
६ श्रीरामचन्द्रजीका नामकरण-संस्कार श्रीवसिष्ठजीने किया। वसिष्ठजी ब्रह्माजीके पुत्र हैं।	'रामचरितमानस' नाम शिवजीने रखा। श्रीमद्भागवतमें एक रुद्रका अवतार ब्रह्माजीसे होना कहा है। तथा—'वन्दे ब्रह्मकुलं कलङ्कशमनम्।'

त्रिबिध दोष दुख दारिद दावन। कलि कुचालि कुलि* कलुष नसावन॥ १०॥

शब्दार्थ—**त्रिबिध**=तीन प्रकारका। **दारिद**=दरिद्रता। **कुलि**=सब। **दावन**=दमन वा नास करनेवाला, यथा—***'त्रिबिध ताप भवदाप दावनी'*** (उ०), ***'जातुधान दावन परावन को दुर्ग भयो'*** (हनुमानबाहुक)=दावानलके समान जला डालनेवाला।

---

*'कुलि' का पाठान्तर 'कलि' भी है। पर प्रमाणिक सभी पोथियोमें 'कुलि' ही पाठ है।

अर्थ—तीनों प्रकारके दोषों, दुःखों और दरिद्रताका दमन तथा कलिके सब कुचालों और पापोंका नाश करनेवाला है॥ १०॥

नोट—१ *'त्रिविध दोष दुख'* इति। पापका फल दुःख है, यथा—*'करहिं पाप पावहिं दुख.....'।* यह तीन प्रकारका है, यथा—*'जे नाथ करि करुना बिलोकहु त्रिबिध दुख ते निर्बहे।'* जन्म, जरा, मरण—ये तीन दुःख हैं, यथा—'जराजन्मदुःखौघतातप्यमानम्'। मन-कर्म-वचनसे किये हुए तीन प्रकारके दोष हैं। काशीखण्डके **'अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः। परदारोपसेवी च कायिकं त्रिविधं स्मृतम्॥' 'पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चैव सर्वशः। असम्बद्धप्रलापश्च वाचिकं स्याच्चतुर्विधम्॥' 'परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम्। वितथाभिनिवेशश्च मानसं त्रिविधं स्मृतम्॥'** के अनुसार—जो किसीने हमको दिया नहीं है उसका ले लेना अर्थात् चोरी, अविहित हिंसा और परस्त्रीसेवन—ये तीन कायिक पाप (दोष) हैं। कठोर, झूठे, चुगली और परस्पर भेदनशीलतावाले, आपसमें फूट डालनेवाले और अव्यवस्थित—ये चार प्रकारके वचन, वाचिक पाप हैं। परद्रव्यका चिन्तन अर्थात् उसके प्राप्तिकी इच्छा करना, मनसे किसीका अनिष्ट सोचना, झूठा अभिमान (मिथ्याका आग्रह)—ये तीन मानसिक पाप हैं। विनायकी टीकाकार तन, जन और धनसम्बन्धी तीन प्रकारके दरिद्र और दैहिक, दैविक, भौतिक तीन प्रकारके दुःख लिखते हैं। और मानसपत्रिकाकार आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक, वा कर्मणा, मनसा और वाचा ये तीन प्रकारके दुःख मानते हैं।

नोट—२ ग्रन्थके अन्तमें जो माहात्म्य कहा है—**'श्रीमद्रामपदाब्जभक्तिमनिशं प्राप्त्यै तु रामायणम्।'.....पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम्। श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये ते संसारपतंगघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः॥'** वही यहाँ *मुनिभावन, सुहावन, पावन, त्रिविध दोष दुःख दारिद दावन'* और *'कलि कुचालि कुलि कलुष नसावन'* से कहा है। भक्तिको प्राप्त कर देने, कल्याण करने, विज्ञान और भक्तिको देनेवाला होनेसे *'मुनिभावन'* है। अत्यन्त विमल, प्रेमाम्बुसे पूर्ण और पुण्य एवं शुभ होनेसे 'सुहावन' कहा और 'माया-मोह-मलापह' और 'पापहर' इत्यादि होनेसे *'त्रिविध.....'* कहा।

रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा॥ ११॥

अर्थ—श्रीमहादेवजीने (इसे) रचकर अपने हृदयमें रखा और अच्छा मौका (अवसर) पाकर श्रीपार्वतीजीसे कहा॥ ११॥

नोट—१ अब ग्रन्थके नामका हेतु कहते हैं।

नोट—२ श्रीगोस्वामीजी श्रीशिवजीका श्रीपार्वतीजीसे मानस-कथन करना पूर्व ही कह आये हैं, यथा—*'बहुरि कृपा करि उमहिं सुनावा।'* (३०। ३); *'जेहि बिधि संकर कहा बखानी।'* (३३। १) अब यहाँ तीसरी बार फिर कह रहे हैं कि *'पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा'* इसमें पुनरुक्ति नहीं है। तीन बार लिखना साभिप्राय है। प्रथम जो *'सुनावा'* कहा वह संवादके साथ है, यथा—*'जागबलिक जो कथा सुहाई। भरद्वाज मुनिबरहिं सुनाई॥ कहिहउँ सोइ संबाद बखानी। सुनहुँ सकल सज्जन सुख मानी॥ संभु कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा॥'* (३०। १—३) अर्थात् मैं उस कथाका संवाद जैसा याज्ञवल्क्य-भरद्वाजमें हुआ, कहूँगा। जिस कारणसे प्रश्नोत्तर हुआ वह *'कीन्हि प्रस्न जेहि भाँति भवानी। जेहि बिधि संकर कहा बखानी॥ सो सब हेतु कहब मैं गाई।'* (३३। १-२) से सूचित किया और तीसरी बार यहाँ जो कहा है उसमें समय और वर्णन करना सूचित किया। इन तीनोंको दोहा ४७ *'कहउँ सो मति अनुहारि अब उमा संभु संबाद। भयउ समय जेहि हेतु जेहि सुनु मुनि मिटिहि बिषाद॥'* में एकत्र करेंगे।

चार संवादोंकी रचना

आषाढ़कृष्ण १० संवत् १५८९ को श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजीको स्त्रीका उपदेश हुआ। बस घरसे चलकर तीर्थराजमें आपने गृहवेषका विसर्जन किया और वहाँसे श्रीअवधपुरी आकर चौमासेतक रहे। यहाँसे तीर्थयात्रा प्रारम्भ

की। इस तीर्थयात्रामें ही भावी ग्रन्थकी रचनाकी बहुत सामग्री इन्हें प्राप्त हुई। मानसरोवर गये। यहाँसे दिव्य साहाय्य पाकर सुमेरु पहुँचे। वहाँ नीलाचलपर भुशुण्डिजीके दर्शन हुए। मानस-रचनाकी तैयारीके लिये ईश्वरीय प्रेरणासे ये सब अलौकिक संघटन हुए—*'होनेवाला कोइ होता है जो कार। गैबसे होते हैं सामाँ आशकार॥'*

श्रीरामगीतावली और श्रीकृष्णगीतावली रचनेके उपरान्त जब श्रीहनुमान्‌जीकी आज्ञासे आप श्रीअवधको चले तब कुछ दिन प्रयागराजमें ठहरे। उस समय भगवदीय प्रेरणासे आपको भरद्वाज, याज्ञवल्क्य इन दोनों महर्षियोंका दर्शन हुआ और दोनोंका संवाद सुननेको मिला। इन दोनों यात्राओंमें जो कुछ देखा-सुना था, उसीको अपने शब्दोंमें उन्होंने निबद्ध किया।

जो जिस कोटिकी आत्माएँ होती हैं उनके चरित्र भी उसी कोटिके होते हैं। आर्षप्रमाणोंसे यह सिद्ध है कि गोस्वामीजी आदिकवि वाल्मीकिजीके अवतार हैं, अत: वे एक विशिष्ट भगवदीय विभूति थे। उनके जीवनमें इस प्रकारकी अलौकिक घटनाओंका होना स्वाभाविक है।—और प्राय: सभी महात्मा और सिद्ध सन्तोंके चरित्रोंमें कुछ-न-कुछ लोकोत्तर चमत्कार पाये जाते हैं।—जिस उद्देश्यसे उनका आविर्भाव हुआ था, उसकी पूर्तिके लिये उन्हें दिव्य सूत्रोंसे अलौकिक साहाय्य मिलना कोई विचित्र बात नहीं।

नोट—३(क) ३५ (९-१०-११) मानो तीन सूत्र हैं जिनकी व्याख्या दोहा ४७ से प्रारम्भ हुई है। (ख)—*'निज मानस राखा'* से कुछ महानुभाव यह भी ध्वनि निकालते हैं कि शिवजी इसका मानसी अष्टयाम करते थे। मानसमयङ्ककार लिखते हैं कि शिवजीने 'रामचरितमानस' नाम रखनेके बारह हजार कल्प पहिले ही इस ग्रन्थको रचकर हृदयमें लालित किया।

गौड़जी—भगवान् शङ्करने उसकी रचना करके अपने मनमें रखा और जब अच्छा अवसर मिला तब पार्वतीजीसे कहा। भगवान् शङ्करने रचना कब की? पार्वतीजीसे कहनेका वह सुअवसर कब आया? यह दो प्रश्न इस चौपाईके साथ ही उठते हैं। भगवान् शङ्करने रामचरितमानसकी रचना बहुत पहले कर रखी थी। कभी लोमश ऋषिसे कहा था। लोमशजीने कागभुशुण्डिसे तब कहा जब उनके ही शापसे वह कौआ हुए। कौआ हो जानेपर कथा सुनकर वह उत्तराखण्डमें रहने लगे। सत्ताईस कल्प बीतनेपर गरुड़जीको उन्होंने वही कथा सुनायी; यथा *'इहाँ बसत मोहिं सुनु खग ईसा। बीते कलप सात अरु बीसा॥'*

इस तरह मानसकी रचनाके सत्ताईस कल्पसे बहुत अधिक समय बीतनेपर गरुड़-भुशुण्डि-संवाद हुआ। इस संवादके पीछे किसी कल्पमें स्वायंभुव मनु और शतरूपाकी तपस्याके कारण रामावतार हुआ होगा; क्योंकि गरुड़-भुशुण्डि-संवादमें नारदमोहकी ही चर्चा है और नारदमोहवाली घटना मानसकी रचनासे भी पहलेकी है, क्योंकि भुशुण्डि इसी कथाकी चर्चा मानसकी कथा सुनानेमें करते हैं। मनुसंहितामें *'जो भुसुंडि मनमानस हंसा'* कहकर भुशुण्डिके बादकी घटना सूचित होती है। प्रतापभानुवाली कथा भी सम्भवत: उसी स्वायंभुव मनुकी तपस्यावाले कल्पकी है, यद्यपि इस बातका स्पष्ट निर्देश नहीं है और पं० धनराज शास्त्रीका मत इसके अनुकूल नहीं है। परन्तु इसमें तो सन्देह नहीं कि मनुवाले हेतुसे जो रामावतार हुआ था, पार्वतीको मोहित करनेवाला था और उसीपर उनकी शङ्का हुई थी। अत:, पार्वतीजीने भगवान् शङ्करसे जो रामायणकी कथा सुनी वह रचनाके कम-से-कम अट्ठाईसकल्प बीत जानेपर सुनी थी। याज्ञवल्क्यजीकी कही कथा तो उसका अन्तिम संस्करण है।

नोट—४ अधिकांशका मत यही है कि प्रथम कागभुशुण्डिजीको मानस प्राप्त हुआ और कम-से-कम २७ कल्प बाद श्रीपार्वतीजीको वही सुनाया गया। किसी एक या दोका ही मत इसके विरुद्ध है पर उस मतको वे सिद्ध नहीं कर सके हैं। हाँ, 'मूल-गुसाईंचरित' से चाहे कोई सहायता उनको मिल सके क्योंकि उसमें *'पुनि दीन्ह भुसुंडिहि तत्त गोई'* कहा है।

तातें रामचरितमानस बर। धरेउ नाम हिअं हेरि हरषि हर॥ १२॥

अर्थ—इसलिये श्रीशिवजीने हृदयमें खूब सोच-विचारकर हर्षपूर्वक इसका सुन्दर 'रामचरितमानस' नाम रखा॥ १२॥

नोट—१ *'तातें'* अर्थात् रचकर अपने मानस (मन) में रखा था इससे, तथा जैसे वह (मानस) सर ब्रह्माने मनसे रचा और उसमें भगवान्‌के नेत्रोंसे निकला हुआ दिव्य जल रखा तबसे उसका नाम मानससर हुआ जो सुहावन, पावन आदि है, वैसे ही शिवजीने दिव्य श्रीरामचरित रचकर अपने मनमें रखा जो सुहावन, पावन, इत्यादि है, इससे **बर**=श्रेष्ठ, उत्तम, सुन्दर। *'हेरि'*—यह शब्द कैसा सार्थक है। हेरना ढूँढ़नेको कहते हैं। हृदयमें हेरकर नाम रखा अर्थात् बहुत विचार किया तो और कोई नाम इससे बढ़कर न मिला।

टिप्पणी—'गोस्वामीजीने प्रथम इस ग्रन्थका जन्म कहा, यथा—*'बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा।'* फिर नामकरण कहा। इससे यह सन्देह होता है कि ग्रन्थका नाम भी उन्होंने रखा होगा। इस भ्रमके निवारणार्थ आप कहते हैं कि 'ग्रन्थका नाम शिवजीने रखा है, हमने नहीं'। रामचरितमानस जिस तरह ग्रन्थकारके हृदयमें आया उसे कुछ पूर्व कह आये—*'निज गुर सन सुनी'।* और कुछ मानस-प्रकरणमें कहेंगे।

कहौं कथा सोइ सुखद सुहाई। सादर सुनहु सुजन मन लाई॥ १३॥

अर्थ—मैं उसी सुख देनेवाली और सुहावनी (रामचरितमानस) कथाको कहता हूँ। हे सज्जनो आदरपूर्वक मन लगाकर सुनिये॥ १३॥

नोट—१ 'गोस्वामीजीने यहाँ तीन संवादोंका बीज बोया है। वही अब क्रमसे कहते हैं। पहिले श्रोता-वक्ताओंके नाम कहे, फिर उनके संवादके स्थान कहे'। इस चौपाईमें गोस्वामीजीके श्रोता और उनका संवादस्थान सूचित किया गया है। इस तरह चार संवाद इस ग्रन्थमें हैं।

नोट—२ *'सादर'*, यथा—'**हेतुवादरतो मूर्खः स्त्रीजितः कृपणः शठः। अहंयुक्क्रोधनोऽसाधुः श्रोता न स्याद्वरानने॥**' (गौरीसम्मोहनतन्त्र)—(पं० रा० कु०) अर्थात् हे वरानने! जो भौतिक सुखोपायमें लगे रहते हैं, मूर्ख हैं, स्त्रीवश रहते हैं, सूम हैं, शठ हैं, अभिमानी हैं, क्रोधी हैं और असाधु हैं, वे श्रोता नहीं हैं।

नोट—३ *'मन लाई'*; यथा—'**लोकचिन्तां धनागारपुत्रचिन्तां व्युदस्य च। कथाचित्त शुद्धमतिः स लभेत्फलमुत्तमम्॥**' (पद्मपुराण) (पं० रा० कु०) अर्थात् जो लोक (मानापमान), धन, घर, स्त्री, पुत्रादिकी चिन्ता त्यागकर दत्त-चित्त हो और शुद्ध बुद्धिसे (तर्क-वितर्क छोड़कर) श्रद्धा-भक्तिसे कथा सुनता है वही यथार्थ रीतिसे उत्तम फलको पाता है।

श्रीमद्‌गोस्वामी तुलसीदासजी विरचित चारों संवादोंके वक्ता-श्रोता और उनके संवाद-स्थान

वक्ता-श्रोता	संवाद-स्थान
१—श्रीशिवजी, श्रीपार्वतीजी,	कैलाश। यथा—*'परम रम्य गिरिबर कैलासू। सदा जहाँ सिव उमा निवासू॥.....'* (१। १०५-१०६)
२—श्रीकागभुशुण्डिजी, श्रीगरुड़जी,	नीलगिरि। यथा—*'उत्तर दिसि सुंदर गिरि नीला।' तहँ रह कागभुसुंडि सुसीला॥..... गयउ गरुड़ जहँ बसइ भुसुंडी।'* (७। ६२-६३)

३—श्रीयाज्ञवल्क्यमुनि, श्रीभरद्वाजजी,	प्रयाग। यथा—*'भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा। जिन्हहिं रामपद अति अनुरागा॥''''''माघ मकरगत रबि जब होई। तीरथपतिहिं आव सब कोई॥''''''जागबलिक मुनि परम बिबेकी। भरद्वाज राखे पद टेकी॥'* (बा० ४४-४५)
४—श्रीगोस्वामीजी, सज्जन। यथा—*'होहु प्रसन्न देहु बरदानू। साधु समाज भनिति सनमानू॥' 'सुनहु सकल सज्जन सुषु मानी'* (३०)	श्रीअयोध्याजी। यथा—*'सब बिधि पुरी मनोहर जानी।'''''बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा'''''कहौं कथा सोइ सुखद सुहाई। सादर सुनहु सुजन मन लाई॥'*

☞ सुजन समाज सर्वत्र है—*'संत समाज प्रयाग', 'जिमि जग जंगम तीरथराजू।'* इसलिये दासकी समझमें इस संवादका स्थान सर्वत्र है, जहाँ भी इसे सज्जन पढ़ें-सुनें। श्रीमहाराज हरिहरप्रसादजीके मतानुसार गोस्वामीजीका संवाद अपने मनसे है, क्योंकि जहाँ-तहाँ ग्रन्थमें मनको उपदेश देना पाया जाता है।

नोट—४ 'सुखद' शब्द देकर सूचित करते हैं कि जो इसको सुननेमें सुख मानेंगे वे इसके अधिकारी हैं।

कथाका 'अथ' अर्थात् तदन्तर्गत श्रीअयोध्याधामका स्वरूप तथा श्रीरामचरितमानसका अवतार-जन्म-तिथि इत्यादि और फलवर्णन यहाँ समाप्त हुआ।

****

(मानस-प्रकरण)

दोहा—जस मानस जेहि बिधि भएउ जग प्रचार जेहि हेतु।
अब सोइ कहौं प्रसंग सब सुमिरि उमा बृषकेतु॥ ३५॥

शब्दार्थ—बृषकेतु-बृष=बैल, नादिया, साँड़। केतु=ध्वजा, पताका। बृषकेतु=नादिया है ध्वजा जिनका=महादेवजी। 'वृष' का अर्थ 'चारों चरणसे पूर्ण धर्म' भी किया जाता है, इस तरह 'बृषकेतु'=जो धर्मकी ध्वजा ही हैं। वा, जिनके केतुपर चतुःपाद धर्म विराजमान है, ऐसे सकल धर्मोंके उपदेश करनेवाले श्रीशिवजी (रा० प्र०)

अर्थ—१ मानस (का) जैसा (स्वरूप) है, जिस तरह मानस बना और जिस कारणसे जगत्‌में इसका प्रचार हुआ, वही सब प्रसङ्ग अब श्रीपार्वती-महादेवजीका स्मरण करके कहता हूँ॥ ३५॥

अर्थ—२ 'जैसा मानसका स्वरूप है, जिस प्रकार और जिस लिये जगमें उसका प्रचार हुआ।' (मा० त० वि०)

अथ—३ 'जिस प्रकार मानस-यश प्रकट हुआ और जिस कारण जगमें उसका प्रचार हुआ सो सब प्रसङ्ग अब मैं कहता हूँ।' (अर्थात् 'जैसे श्रीमन्नारायणने करुणाजल ब्रह्माको दिया, जो मानससरमें स्थित हुआ, वैसे ही शिवजीने यशरूपी जल पार्वतीजीको दिया जो इस मानसमें पूरित है।' इस अर्थमें *'जस'* का अर्थ 'यश' किया गया है।) (मा० म०)

श्रीमन्नारायणसे रूपक मेरी समझमें यों घटेगा कि—श्रीमन्नारायण भगवान् शिव हैं। वहाँ भगवान्‌के नेत्रमें जल, यहाँ शिवजीके मानसमें रामयश। वहाँ करुणाद्वारा नेत्रसे जल निकला, यहाँ शिवजीकी कृपाद्वारा मुखसे रामयशजल प्रकट हुआ, यथा—*'बहुरि कृपा करि उमहिं सुनावा।'* वहाँ ब्रह्माजीने अञ्जलिमें लिया, यहाँ पार्वतीजीने श्रवणपुटद्वारा (रामयशको) पान किया। वहाँ ब्रह्माजीने जलको मानसी सरोवरमें रखा, यहाँ उमा-महेश्वरकी कृपासे रामयश-जल तुलसी-मानसमें स्थित हुआ। —[मा० मा० का मत है कि नेत्रोंसे निकला हुआ करुणाजल ब्रह्माजीके करकमलोंपर होकर कैलासपर सुशोभित हुआ और यहाँ पार्वतीजीके कर्णमें प्राप्त होकर और वेदवेदान्तद्वारा गोस्वामीजीके हृदयमानसमें आया] वहाँ मानससे वसिष्ठजी लाये, यहाँ *'संभु प्रसाद सुमति हियँ हुलसी। रामचरितमानस कबि तुलसी॥ —भएउ हृदय आनंद उछाहू। उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू॥ चली सुभग कबिता सरिता सी।'* अर्थात् गोस्वामीजीकी विमल बुद्धिद्वारा काव्यरूपमें रामचरितमानस प्रकट हुआ। वहाँ श्रीसरयूजी अयोध्याजीके लिये आयीं, यहाँ कीर्ति-सरयू सन्तसमाजरूपी अनुपम अवधके लिये आयीं।

नोट—१ (क) दोहेमें *'जस मानस'* अर्थात् मानसके स्वरूपके कथनकी प्रतिज्ञा प्रथम की, तब *'जेहि बिधि भएउ'* की—परन्तु वर्णनमें *'जेहि बिधि भएउ'* अर्थात् बननेकी विधि प्रथम कही गयी, स्वरूप पीछे कहा गया। कारण कि 'स्वरूपप्रदान ही बनना है, बनना समाप्त होते ही स्वरूप पूरा हो जाता है, अतः बननेकी विधि पहले कही। बन चुकनेके पश्चात् स्वरूपपर ही दृष्टि प्रथम जाती है, उसके बाद बननेकी विधिपर ध्यान जाता है, अतः प्रतिज्ञामें स्वरूपवर्णन प्रथम कहा, तत्पश्चात् *'जेहिं बिधि भएउ'* का उल्लेख किया।' (मानसप्रसंग)

(ख) गोस्वामीजीने मानसके आदिमें तीन प्रतिज्ञाएँ कीं— *'जस मानस', 'जेहि बिधि भयेउ'* और *'जग प्रचार जेहि हेतु।'* ये बातें छन्दहेतु क्रम तोड़कर कही गयीं। कथनका क्रम यह है—प्रथम *'जेहिं बिधि भएउ'* यह *'सुमति भूमि थल हृदय अगाधू।'* (३६। ३) से *'सुखद सीत रुचि चारु चिराना।'* (३६। ८) तक कहा। इसके पश्चात् *'जस मानस'* अर्थात् मानसका स्वरूप *'अस मानस मानस चख चाही।'* (३९। ९) तक कहा। आगे *'भयउ हृदय आनंद उछाहू।'* (३९। १०) से जग प्रचारका हेतु कहते हैं। (खर्रा)

(ग) आरोप्यमाण मानसकी विधि पूर्व कह आये। पर आरोप्य विषयभूत सभी मानसोंके बननेकी

विधि पृथक्-पृथक् है। भगवान् शंकर वेदस्वरूप हैं, यथा—'**विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपम्।**' अतः उन्होंने स्वयं रचा। भुशुण्डिजीको शिवजीने लोमशद्वारा दिया, याज्ञवल्क्यको भुशुण्डिजीसे मिला और तुलसीदासजीको गुरुद्वारा मिला। (मा० प्रसंग)

(घ) '***जग प्रचार जेहि हेतु***' इति। आरोप्यमाण मानसका प्रचार देशमें श्रीसरयूद्वारा हुआ जो उसीसे निकली हैं। उमा-शम्भु-संवाद एकान्तमें कैलासपर देववाणीमें हुआ, भुशुण्डि-गरुड़-संवाद नीलगिरिपर (जो इस वर्षखण्डमें नहीं है) पक्षी-भाषामें हुआ और याज्ञवल्क्य-भरद्वाज-संवाद यद्यपि प्रयागराजमें हुआ पर माघ बीतनेपर फाल्गुनमें हुआ जब सब मुनि चले गये थे, यथा—'***एक बार भरि माघ नहाए। सब मुनीस आश्रमन्ह सिधाए॥*'''''' अतएव उनका प्रचार अति विरल हुआ। '**श्रीरामचरितमानस**' (भाषाकाव्य) का प्रकाश श्रीरामनवमीके शुभ अवसरपर श्रीअयोध्याजीमें सन्तसमाजके बीचमें हिन्दीभाषामें हुआ। अतः इसका प्रचार साक्षात्-रूपसे हिन्दी-संसारमें हुआ और परम्परासे समुद्रतक चला गया। (वि० त्रि०) जिस प्रकार जगत्में उसका प्रचार हुआ, यह बात '***भयेउ हृदय आनंद उछाहू। उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू॥***' (१३९। १०) से लेकर '***सुमिरि भवानी संकरहि कह कबि कथा सुहाइ।***' (१। ४३) तक कही गयी है।

(ङ) '***जेहि हेतु***' अर्थात् जिस कारणसे प्रचार हुआ, यह प्रसंग काशिराजकी पोथी एवं रा० प० के अनुसार '***भरद्वाज जिमि प्रस्न किय जागबलिक मुनि पाइ। प्रथम मुख्य संवाद सोइ कहिहउँ हेतु बुझाइ।***' (१। ४३) इत्यादिमें दरसाया है। परंतु अन्य प्राचीन पोथियोंमें यह दोहा नहीं है। अतः हमारे पाठानुसार यह प्रसङ्ग '***अब रघुपति पद पंकरुह हियँ धरि पाइ प्रसाद। कहउँ जुगल मुनिबर्य कर मिलन सुभग संबाद॥***' (१। ४३) से प्रारम्भ होकर '***कीन्हिहु प्रश्न जगत हित लागी।***' (१। ११२) वा '***तदपि असंका कीन्हिहु सोई। कहत सुनत सब कर हित होई॥***' (१। ११३। १) तक है।

नोट—२ (क) 'अब' अर्थात् श्रीशिवजीकी रचनाका नामकरण, माहात्म्य और परम्परा कहकर अब। '***सोइ***' अर्थात् जिसकी पूर्वार्द्धमें प्रतिज्ञा कर चुके हैं वही सब। (ख) '***सुमिरि उमा बृषकेतु***' इति। —यहाँ श्रीशिव-पार्वती दोनोंका स्मरण किया। महानुभाव ऐसा करनेके अनेक भाव कहते हैं। एक यह कि दोनोंकी प्रसन्नता पा चुके हैं, यथा—'***सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ।***' (१। १५) दूसरे शिवजी रामतत्त्वके मुख्य वेत्ता हैं और श्रीपार्वतीजी आपकी अर्द्धाङ्गिनी हैं। तीसरे उमा पद शब्दग्राही है और शिव-पद अर्थग्राही है ऐसा वाराहपुराणमें कहा गया है। जैसे शब्द-अर्थ मिले हैं वैसे ही उमा-शिव एक ही हैं। यथा—'**शब्दजातमशेषं तु धत्ते शर्वस्य वल्लभा। अर्थरूपं यदखिलं धत्ते मुग्धेन्दुशेखरः।**' (पं० रा० कु०) अर्थात् शिवजीकी वल्लभा पार्वतीजी अशेष शब्दसमूहको धारण करती हैं और सुन्दर बालेन्दुको धारण करनेवाले शिवजी सकल अर्थको। चौथे, शिवजीने मानसकी रचना की और पार्वतीजीने उसे लोकहितके लिये प्रकट कराया। जैसा कहा है—'***तुम्ह समान नहिं कोउ उपकारी॥***', '***पूँछेहु रघुपति कथा प्रसंगा। सकल लोक जग पावनि गंगा॥***', '***तुम्ह रघुबीर चरन अनुरागी। कीन्हिहु प्रस्न जगत हित लागी॥***' (बा० ११२) पाँचवें यह कि ये मुख्य वक्ता-श्रोता हैं (शुकदेवलाल) (ग) '***बृषकेतु***' शब्द देकर जनाते हैं कि इनकी कृपासे यह ग्रन्थ भी धर्मका पोषक होगा। शिवजीका स्मरण करके जनाते हैं कि आप मानसके आचार्य हैं, अतः आप मानसके कथनमें तत्पर होकर मुझे पार लगावें और वक्ताओंको विश्वास और कथन तथा समझनेकी बुद्धि दें। श्रीउमाजीसे माँगते हैं कि श्रोताओंपर कृपा करके उनको कथा-श्रवणमें श्रद्धा और समझनेकी बुद्धि दें। श्रीशिवजीको विश्वासरूप और श्रीपार्वतीजीको श्रद्धारूपिणी प्रारम्भमें कह ही आये हैं। (मा० मा०) (घ)—उमाके प्रसादसे वृषकेतुकी कृपा हुई, अतः पहले उमाका स्मरण किया और वृषकेतुकी कृपासे सुमतिका उल्लास हुआ। अथवा, उमा सुमतिरूपा हैं, यथा—'**या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता**' और शिवजी बुद्धिके प्रेरक हैं, यथा—'***तुम्ह प्रेरक सबके हृदय सो मति रामहि देहु।***' (२ । ४४) और सुमति-भूमिकामें ही रामचरितमानसकी रचना हुई। अतः उमावृषकेतुका स्मरण प्रसङ्गकथनके प्रारम्भमें करते हैं। अथवा अभेद-दृष्टिसे शक्ति-शक्तिमान्का साथ ही स्मरण करते हैं जिसमें यथार्थ वर्णनकी शक्ति हो, यथा—'***तुम्ह***

माया भगवान् सिव सकल जगत पितु मातु' (वि० त्रि०)। ☞ यहाँसे लेकर दोहा ४३ तक आठ दोहोंमें 'मानस-प्रसङ्ग' है।

संभु प्रसाद सुमति हिअं हुलसी। राम-चरित-मानस कबि तुलसी॥ १॥

अर्थ—श्रीशिवजीकी प्रसन्नतासे हृदयमें सुमतिका उदय हुआ। जिससे मैं तुलसीदास रामचरितमानसका कवि हुआ॥ १॥

नोट—१ श्रीशुकदेवलालजी उत्तरार्द्धका अर्थ यों करते हैं कि 'नहीं तो कहाँ रामचरितमानस और कहाँ मैं तुलसीदास लघुमतिवाला उसका कवि!'

टिप्पणी—१ *'संभु प्रसाद सुमति हिअं हुलसी'* इति। (क)—संस्कृत रामचरितके कवि शिवजी हैं, उनके प्रसादसे भाषा रामचरितमानसके कवि 'तुलसी' हैं। (ख)—आपने पूर्व चराचरमात्रसे 'मति' माँगी है; यथा—*'आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव जल थल नभ बासी॥'''''' जानि कृपाकर किंकर मोहू। —निज बुधि बल भरोस मोहिं नाहीं। ताते बिनय करउँ सब पाहीं।'* (१। ८) पुनः, कवियोंसे और श्रीजानकीजीसे भी इसीकी प्रार्थना की है। यथा—*'करहु अनुग्रह अस जिय जानी।'''''', ताके जुग पद कमल मनावउँ। जासु कृपा निर्मल मति पावउँ॥'* (१। १८) इन सबोंकी कृपा शिवजीके द्वारा प्रकट हुई, उसीका यहाँ वर्णन है। शम्भुप्रसादके प्रमाणमें *'सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ।'* (१। १५) यह चौपाई है। (ग)—पूर्व कह चुके हैं कि *'लघु मति मोरि चरित अवगाहा॥'''''', 'मन मति रंक मनोरथ राऊ॥', 'मति अति नीचि ऊँचि रुचि आछी।'* (१। ८) वही लघु रंक और अति नीच मति अब उनके प्रसादसे *'सुमति'* (सुन्दर मति) होकर हुलसी। (शम्भुके प्रसादसे अव्याहत गति होती है, यथा—*'अब्याहत गति संभु प्रसादा।'*) (घ) *'सुमति हिअं हुलसी'* इति। यथा—'प्रज्ञां नवनवोन्मेषशालिनीं प्रतिभां विदुः। प्रतिभा कारणं तस्य व्युत्पत्तिस्तु विभूषणम्। भृशोत्पत्तिकृदभ्यास इत्यादि।' (वाग्भट्टालङ्कार) 'शुश्रूषा श्रवणं चैव ग्रहणं चैव धारणम्। ऊहापोहार्थविज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः।' (कामन्दक) अर्थात् उत्तरोत्तर वृद्धि पानेवाली प्रतिभाका नाम प्रज्ञा है। अतः प्रज्ञाका कारण प्रतिभा है और व्युत्पत्ति उसका भूषण है। अभ्यास करनेसे उसका बारम्बार उदय होता है। सुननेकी इच्छा, सुननेकी शक्ति, ग्रहणकी इच्छा, धारणकी शक्ति, ऊह (तर्क), अपोह (मीमांसा वा विचार), अर्थज्ञान और तत्त्व (तात्पर्य) ज्ञान—ये आठ बुद्धिके गुण हैं।—(और भी किसीका वाक्य है कि—'प्रज्ञा नवनवोन्मेषा बुद्धिस्तात्कालिकी मता। मतिरागामिनी ज्ञेया प्रतिभा संस्कृता तु या।' अर्थात् उत्तरोत्तर नये-नये रूपसे वृद्धि पानेवाली विचारशक्ति 'प्रज्ञा' कही जाती है। समय पड़नेपर तुरन्त प्रस्फुटित होनेवाली विचारशक्तिकी 'बुद्धि' संज्ञा है। भविष्यके हिताहित सोचनेवाली विचारशक्तिका नाम 'मति' है और तीनोंके सुमार्जित रूपको प्रतिभा कहा गया है।)—[मेरी समझमें इन श्लोकोंके देनेका भाव यह है कि यहाँ 'सुमति' से 'प्रतिभा' का अर्थ समझना चाहिये।]

वि० त्रि०—१ मति दो प्रकारकी है। एक सुमति दूसरी कुमति। यथा—*'सुमति कुमति सब के उर रहई। नाथ पुरान निगम अस कहई॥', 'जहाँ सुमति तहँ संपति नाना।'* सुमतिकी अव्याहत गति होती है। वह प्रवृत्ति, निवृत्ति, कार्य, अकार्य, भय, अभय, बन्ध, मोक्षको यथावत् जानती है, यथा—'प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये। बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी॥' (गीता १८। ३०) इसका उदाहरण यही मानस-प्रसङ्ग है कुमतिके दो भेद हैं, राजसी और तामसी, राजसीमें कार्याकार्य और धर्माधर्मका यथार्थ ज्ञान नहीं रहता और तामसीमें विपरीत ज्ञान होता है। तामस बुद्धिवाला अधर्मको ही धर्म मान बैठता है। कुमतिका उदाहरण अयोध्याकाण्डमें है। शम्भुके प्रसादसे रजोगुण और तमोगुणको पराभूत करके सात्त्विकी बुद्धि उल्लसित हुई। ['हुलसी' शब्द इस बातको जनाता है कि पहले 'मति' नीची थी। पूर्व ग्रन्थकार अपनी मतिका कदराना-सकुचाना भी कह आये हैं, यथा—*'मति अति नीचि ऊँचि रुचि आछी।'* (१। ८), *'करत कथा मन अति कदराई।'* (१। १२)]

टिप्पणी—२ 'रामचरितमानस' का भाव कि यह अपार है, इसको कहनेमें शारदा, शम्भु, ब्रह्मा और

वेदादि भी असमर्थ हैं, भगवान् शङ्कर इसके आदि कवि हैं। सो उन्होंने भी मति-अनुसार कहा है, यथा—*'मैं सब कही मोरि मति जथा।'* ऐसे रामचरितमानसका कवि शम्भुप्रसादसे मैं हो गया; निर्मल मति होनेसे ही ऐसी कविता होती है।

नोट—२ सूर्यप्रसादजी लिखते हैं कि 'शम्भुकी प्रसन्नता न होती तो इनके हृदयमें सुमतिका हुल्लास याने उमङ्ग न आता।'''' ग्रन्थकारका आशय यह है कि वास्तवमें मैं कुछ भी नहीं हूँ, मुझे 'कवि' कहना ही झूठ है। ग्रन्थकारने सर्वथा अपने अहङ्कारका त्याग ही किया।' मा० त० वि० का मत है कि यहाँ कवि-पद अपनी ओर हास्ययुक्त ही नीचानुसन्धानसे है। देखिये, इस प्रसादके पहले गोस्वामीजीने अपनेको कवि नहीं कहा, यथा—*'कबि न होउँ नहिं''''।'* (१। ९) और अब यहाँसे प्रसन्नता हो जानेपर वे अपनेको कवि कहते हैं। यथा—*'राम-चरित-मानस कबि तुलसी।'* (१। ३६), *सुमिरि भवानी संकरहि कह कबि कथा सुहाइ॥'* (१। ४३), *सुकबि लखन मन की गति भनई।'* (२। २४०), *'कबिकुल कानि मानि सकुचानी।'* (२ । ३०३), *सुनि कठोर कबि जानिहि लोगू।'* (२। ३१८), *'कुकबि कहाइ अजसु को लेई॥'* (१। २४८)

नोट—३*'कबि तुलसी'* इति। पूर्व ९ (८) और १२ (९) में कहा है कि *'कबि न होउँ'* तथा यहाँ और आगे भी अपनेको कवि कहते हैं। इसीसे चौपाईके पूर्वार्द्धमें *'संभु प्रसाद'* पद देकर पहिले ही इस विरोधका निवारण कर दिया है। बैजनाथजी लिखते हैं कि 'जैसे धनी पुरुषकी प्रसन्नतासे निर्धन भी धनी कहलाता है, वैसे ही शिवजी श्रीरामचरितके धनी हैं, उनकी प्रसन्नतासे मैं जो काव्यधनहीन हूँ वह भी कवि हो गया।'

विनायकी टीकाकार इस विरोधका समाधान यों करते हैं कि 'यहाँ और आगे *'कह कबि कथा सुहाइ'* में *'कबि'* शब्दका यथार्थ अभिप्राय ग्रन्थ बनानेवालेसे है, कविके सम्पूर्ण गुणोंसे परिपूर्ण होनेका दावा करनेका नहीं है। इसके सिवा दोनों अन्तिम स्थानोंमें महादेव-पार्वतीजीके प्रसादसे अपनेको कवि अर्थात् रचयिता कहा है। जबतक उनकी कृपाका विश्वास उनके चित्तमें नहीं आया था तबतक अपनेको कवि कहनेके योग्य उन्होंने नहीं समझा। जैसा अरण्यकाण्डमें सुतीक्ष्ण मुनिने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा था कि *'मैं बर कबहुँ न जाँचा।'* परन्तु जब श्रीरामचन्द्रजीके प्रसादसे उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ तब कहने लगे कि *'प्रभु जो दीन्ह सो बर मैं पावा। अब सो देहु मोहि जो भावा।'*

मानसतत्त्वविवरणकार लिखते हैं कि *'संभु प्रसाद'* पदसे उस घटनाको ग्रन्थकार सूचित करते हैं कि जिसमें शिवजीने परमहंसस्वरूपमें प्रकट होकर गोस्वामीजीका संस्कृतभाषामें रचा हुआ रामचरितमानस देखनेके बहाने ले जाकर लुप्त कर दिया था और फिर स्वप्नमें इन्हें आज्ञा दी थी कि हिन्दीभाषामें इस ग्रन्थको रचो। यह प्रसाद पाकर हृदयमें आह्लाद बढ़ा, तब आप ग्रन्थारम्भमें प्रवृत्त हुए।—(इस घटनाका उल्लेख मं० श्लोक ७ तथा दोहा १५ में और अन्यत्र भी किया जा चुका है।)

करइ मनोहर मति अनुहारी। सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी॥ २॥

शब्दार्थ—सुचित=ध्यान देकर, सावधान होकर। सुन्दर शुद्ध चित्तसे।

अर्थ—अपनी बुद्धिके अनुसार (तुलसी) इसे मनोहर ही बनाता है। सज्जनो! सुन्दर चित्तसे सुनकर आप इसे सुधार लें॥ २॥

नोट—१ मानसमयङ्ककार और करुणासिन्धुजी इसका एक भाव यह लिखते हैं कि 'सुन्दर चित्तमें धारण कर लीजिये।' अर्थात् *'लेहु सुधारी'*=अच्छी तरहसे धारण कर लो।

नोट—२*'मनोहर मति अनुहारी'* इति। (क) शिव-कृपासे मति सुन्दर हो गयी है। इसलिये इस सुमतिके अनुहरित कथाप्रबन्ध रचनेसे वह *'मनोहर'* अवश्य होगी। (पं० रा० कु०) पुनः, *'मनोहर'* अर्थात् काव्यालङ्कारयुक्त वा जिस रस और भावके जो भक्त हैं उनको वही भाव इसमें झलकेगा। (मा० त० वि०) (ख)—श्रीकरुणासिन्धुजी, श्रीजानकीदासजी, श्रीबैजनाथजी और श्रीमहाराज हरिहरप्रसादजी *'मनोहर'* को रामचरितमानसका विशेषण मानते हैं इस भावसे कि वह तो स्वयं मनोहर है किसीके रचनेसे मनोहर नहीं

हो सकता। (ग) *'मति अनुहारी'* इति। सुमति पानेपर भी *'मति अनुहारी'* ही बनाना कहते हैं, क्योंकि मनुष्य कितना ही बुद्धिमान् क्यों न हो, चूकना उसका स्वभाव है—' To err is human', अचूक तो एक परमेश्वर ही हैं। (घ) वि० त्रिपाठीजी लिखते हैं कि 'शब्द और अर्थको कविता-सरस्वतीका देह माना गया है, रीतिको अवयवसंस्थान, माधुर्यादिको गुण और दुःश्रवादिको दोष माना गया है। उपमादिको अलङ्कार कहा गया है और रस आत्मारूपसे वर्णित है। श्रीगोस्वामीजीका मत है कि इतना होनेपर भी कविता-सरस्वतीको साड़ी चाहिये जिसके बिना सब सुन्दरता, अलङ्कार तथा स्वयं जीवन भी मिट्टी है। यथा—*'भनित बिचित्र सुकबिकृत जोऊ। राम नाम बिनु सोह न सोऊ॥'* से *'मधुकर सरिस संत गुन ग्राही'* तक। बिना भगवन्नामकी साड़ी पहनाये सरस्वती दर्शनीया नहीं होती। गोस्वामीजीका अभिप्राय है कि मैं अपनी कविताका यथेष्ट शृङ्गार तो न कर सका पर मैंने उसे साड़ी तो पहना रखा है। अतः मेरी कविता-सरस्वती दर्शनीया है। *'मति अनुहारी'* में भाव यह है कि साहित्यके ग्रन्थोंमें कहीं साड़ी पहनानेकी आवश्यकता नहीं समझी गयी और न कहीं उसका उल्लेख है और मेरी समझमें साड़ीकी अनिवार्य आवश्यकता है। अन्य साहित्यसेवियोंके साथ ऐकमत्य न होनेसे *'मति अनुहारी'* कहा।'

नोट—३ *'सुजन सुचित ·····'* इति। (क)—सु० द्विवेदीजी लिखते हैं कि 'कहींसे टूटने न पावे और नीचा-ऊँचा भी न हो, क्योंकि ऐसा होनेसे भक्त-लोगोंको स्नान करनेमें कठिनता पड़ेगी, इसलिये ग्रन्थकार सज्जनोंसे प्रार्थना करता है कि आपलोग सुचित (सुन्दर 'चिति' चउतरे इत्यादिके मूल) अर्थात् कारीगर हैं इसे सुधार लेना।'—(परन्तु यह अर्थ क्लिष्ट कल्पना है।) (ख)—यह गोस्वामीजीका कार्पण्य है। जो बड़े होते हैं वे सदा औरोंको बड़ा मानते हैं और अपनेको छोटा, यह शिष्टाचार है। (मा० प्र०) (ग)—इसके श्रोता सज्जन ही हैं; अतः उन्हींसे सुनने और सुधारनेको कहते हैं। सुन्दर चित्तसे अर्थात् प्रेमसे सुख मानकर। दुर्जनसे सुनने-सुधारनेको नहीं कहते, क्योंकि वे सुनेंगे ही कब? वे तो परिहास करेंगे, यथा—*'खल करिहहिं उपहास।'* उपहास करनेवाले सुधारनेमें असमर्थ होते हैं। (वि० त्रि०) (घ)—सुधारनेका अर्थ यह नहीं है कि पाठ बदल दें, क्षेपक मिला दें, अपना मत पोषण करनेके लिये प्रसंगोंको क्षेपक कहकर निकाल दें, इत्यादि। ये सब बिगाड़नेवाले हैं। यहाँ 'सुधारने' का तात्पर्य है कि दुःख-दोष दूर करके निर्मल यश दें। यथा—*'काल सुभाउ करम बरिआई। भलेउ प्रकृति बस चुकइ भलाई॥ सो सुधारि हरि जन जिमि लेहीं। दलि दुख दोष बिमल जसु देहीं॥'* (वि० त्रि०) (ङ) मिलान कीजिये, यथा— 'यन्मदीयमुख-निर्गतमेतद्वर्णनं पदपदार्थविहीनं क्वापि चेद् भवति तद्बुधवृन्दैः शोधनीयमिदमत्र न दोषः।'(कीर्त्तिसंलापकाव्य) अर्थात् मेरे मुखसे जो वर्णन निकलता है वह यदि पदपदार्थरहित भी होगा तो भी कुछ हानि नहीं; क्योंकि पण्डितलोग तो परिशोधन कर ही लेंगे।

नोट—४ रामायणपरिचर्याकार लिखते हैं कि 'गोस्वामीजीने प्रथम शङ्कर-प्रसादका आलम्बन किया, अब यहाँ सुजन जनोंका आलम्बन करते हैं।' सूर्यप्रसाद मिश्रजी भी लिखते हैं कि 'यहाँ दो बातोंका निरूपण किया है। वह यह कि सुजन सावधान होकर सुनें फिर जो भूलचूक उसमें रह गयी हो उसे सुधार लें। इस प्रकार ग्रन्थकारने भीतर-बाहर दोनोंका अवलम्बन किया। भीतर शम्भु-प्रसाद, बाहर सुजन-प्रसाद। सुजन ही सावधान होकर सुनते हैं, दुर्जन नहीं। इसलिये सुजनोंसे ही सुधारनेकी प्रार्थना की है।'

सुमति भूमि थल हृदय अगाधू। बेद पुरान उदधि घन साधू॥ ३॥

शब्दार्थ—'**भूमि**'=पृथ्वी। तालाबके चारों ओर ऊँची धरती होती है जिसपरसे बरसाती जल बहकर तालाबमें जाता है, भूमिसे यहाँ उसीका तात्पर्य है। '**थल**=थाल्हा=तालाबके भीतर गहराईमें जो जमीन होती है, जिसपर पानी पहुँचकर ठहरता है। यथा—*'जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई। कोटि भाँति कोउ करइ उपाई॥'* (उ० ११९)।=कुण्ड—(करु०)। उदधि=समुद्र।

अर्थ—सुमति भूमि है, अगाध हृदय ही गहरा थल है। वेदपुराण समुद्र हैं और साधु मेघ हैं॥ ३॥

नोट—१ कुछ महानुभाव *'भूमि थल'* को एक मानकर यों अर्थ करते हैं कि 'सुमति भूमितल है और हृदय गहराई है'।

नोट—२ जिस प्रकार यह मानस ग्रन्थकारके हृदयमें उत्पन्न हुआ सो कहते हैं। (मा० प्र०)

☞ यहाँसे रामचरितमानसका रूपक मानससरसे बाँधकर तुल्यसावयव रूपकालङ्कारमें मानसका स्वरूप कहना प्रारम्भ करते हैं।

☞ 'रूपक' क्या है, यह जान लेना यहाँ आवश्यक है। पूर्णोपमालङ्कारमेंसे वाचक और धर्मको मिटाकर उपमेयपर ही उपमानका आरोप करे अर्थात् उपमेय और उपमानको एक ही मान लें, यही 'रूपक' अलङ्कार है। इसके प्रथम दो भेद—'तद्रूप' और 'अभेद' हैं। फिर प्रत्येकके तीन-तीन प्रकार 'अधिक', 'हीन' और 'सम' होते हैं। अर्थ-निर्णय, न्यायशास्त्र और व्याकरणके अनुसार तो रूपकके यही छः भेद हैं। परन्तु वर्णन-प्रणालीके अनुसार इन्हीं सब रूपकोंके केवल तीन प्रकार कहे जा सकते हैं। अर्थात् १ साङ्ग, २ निरङ्ग और ३ परम्परित। इनमेंसे 'साङ्गरूपक' वह कहलाता है, जिसमें कवि उपमानके समस्त अङ्गोंका आरोप उपमेयमें करता है।—यहाँ साङ्गरूपक है। इसी तरह लङ्काकाण्डमें 'विजय-रथ' का रूपक, उत्तरकाण्डमें 'ज्ञान-दीपक' और 'मानसरोग' का साङ्गरूपक है। 'समस्त' का आशय यह नहीं है कि जितने भी अङ्ग होते हैं वे सब दिये जायँ। तात्पर्य केवल इतना है कि उपमेयके जिस अङ्गका उल्लेख किया हो, उसके साथ उसके उपमानका भी उल्लेख किया गया हो। यदि किसी एकका उपमान देनेसे रह जाय तो वह साङ्गरूपक 'समस्त वस्तुविषयक' न होकर 'एकदेशविवर्ती रूपक' कहा जायगा। जैसे कि—*'नाम पाहरू रात दिन ध्यान तुम्हार कपाट। लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहि बाट॥'* (५। ३०) में नाम, ध्यान और लोचनका रूपक पहरू, कपाट और यन्त्रसे किया गया, परन्तु प्राणका रूपक जो कैदीसे होना चाहिये था वह नहीं किया गया। अत: यह 'एकदेशविवर्ती साङ्गरूपक' हुआ। यदि प्राणका रूपक कैदीका भी उल्लेख इसमें होता तो यह भी 'समस्त वस्तुविषयक साङ्गरूपक' हो जाता। प्रमाण यथा—**'रूपकं रूपितारोपो विषये निरपह्नवे। तत्परम्परितं साङ्गं निरङ्गमिति च त्रिधा।', '......अङ्गिनो यदि साङ्गस्य रूपणं साङ्गमेव तत्॥ समस्तवस्तुविषयमेकदेशविवर्ति च। आरोप्याणामशेषाणां शब्दत्वे प्रथमं मतम्।' 'यत्र कस्यचिदर्थत्वमेकदेशविवर्ति तत्।......'** (साहित्यदर्पण परिच्छेद १०। २८, ३०—३२)

नोट—३ *'सुमति भूमि'* इति। जिस प्रकार भूमि चराचरकी योनि (उत्पत्तिस्थान) है, उसी भाँति सुमति भी गुणगणकी योनि है; इसीलिये सुमतिमें भूमिका आरोप किया। यथा—*'सोक कनकलोचन मति छोनी। हरी बिमल गुनगन जगजोनी॥', 'भरत बिबेक बराह बिसाला। अनायास उधरी तेहि काला॥'* (२। २९७) अत: सुमति ही श्रीरामसुयशवर-वारिकी धारणोपयोगी है; यथा—*'रामचरित चिंतामनि चारू। संत सुमति तिय सुभग सिंगारू॥'* (१। ३२) (वि० त्रि०) पुन:, *'सुमति भूमि'* का भाव कि कुमति-भूमिपर श्रीरामयशकथन (रूपी वर्षाजल) बिगड़ जाता है, जैसे गढ़े आदिमें जल पड़नेसे बिगड़ जाता है। (खर्रा) *'सुमति भूमि'* का विशेष रूपक इस प्रकार है—भूमिका उद्धार वराहभगवान्द्वारा हुआ, सुमतिका उद्धार शम्भुप्रसादद्वारा हुआ। भूमिको हिरण्याक्षने हरण किया। सुमतिको संसारने हरा। यथा—*'कहँ मति मोरि निरत संसारा।'* (वि० त्रि०) (ख)—*'थल हृदय अगाधू'* इति। मानससरकी भूमिको सुमति कहकर सज्जनोंके गम्भीर हृदयको थल अर्थात् जलका आधार कहा। सुमति-भूमिवाला हृदय गम्भीर होता ही है, यथा—*'कहि न सकत कछु अति गंभीरा। प्रभु प्रभाउ जानत मति धीरा॥'* (१। ५३) हृदयको आगे मानस कहा है, यथा—*'भरेउ सुमानस सुथल थिराना।'* (चौ० ९) साधु वेद-पुराणोंका सार लेकर इस मानसरूपी हृदयको भर देते हैं। (मा० प०) अथवा, 'रामयशकी इच्छा करनेवाली जो मेरी मति है वह मानसकी भूमि है, उसको धारण करनेवाले जो सज्जनोंके हृदय हैं वही अगाध सर हैं। गाम्भीर्य हृदयका लक्षण, यथा—**'गूढाभिप्रायरूपत्वं कर्तव्येषु च कर्मसु। गाम्भीर्यं राम ते व्यक्तं व्यक्ताव्यक्तनिरूपकैः।'** (भगवद्गुणदर्पण, मा० प०, वै०)

शङ्का—'हृदय अन्त:करणको कहते हैं। अन्त:करण चार हैं—मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार। इस

तरह हृदय और बुद्धि तो एक ही हैं और भूमि और थल दो हुए। भूमिके रूपकमें बुद्धिको कह आये तब थलके रूपकमें बुद्धिको फिर कैसे कहा?' (मा० प्र०)

समाधान—१ '**बुद्धि**' आठ प्रकारकी है। समुद्रतटपर श्रीहनुमान्‌जीने कहा है कि अङ्गद आठों बुद्धियोंसे युक्त हैं। वाल्मी० कि० सर्ग ५४ श्लोक २ की रामाभिरामी तथा शिरोमणि-टीकामें इनके नाम इस प्रकार हैं—'**शुश्रूषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा। ऊहापोहार्थविज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः॥**' (इसका अर्थ ३६ (१) में आ चुका है)। इनमेंसे ग्रहणबुद्धि वह है जो सुनी हुई बातको कुछ कालतक याद रखती है, फिर भूल जाती है और धारणाबुद्धि वह है जो सुनी हुई बातको ग्रहण करके धारण कर लेती है कि फिर भूल न जाय। यहाँ ग्रहण-बुद्धि भूमि है और धारण-बुद्धि गहरा थल है। (मा० प्र०)

२—यहाँ '**हृदय**' शब्द शुद्ध मनका उपलक्षण है, क्योंकि जिस हृदयको ऊपर सुमतिका आधार कह आये, उसीको '**सुमति**' का आधेय या सुमतिका एकदेश नहीं कह सकते और आगे इसके लिये मन-शब्दका प्रयोग हुआ भी है—'***भरेउ सुमानस*** ······*।*' कुमति-भूमिकावाले मनमें रामयशके लिये गहराई नहीं रहती। यथा—'***रामचरित जे सुनत अघाहीं। रस बिसेष जाना तिन्ह नाहीं॥***'

नोट—४ '***बेद पुरान उदधि***' इति। (क) वेद चार हैं, अठारह पुराण हैं, उतने ही उपपुराण। इनकी उपमा समुद्रसे दी गयी है। सो समुद्र भी चार ही हैं, छोटे समुद्र, खाड़ियाँ पचासों होंगी। समुद्र ही जलराशि है। इसीका पानी नदी, नद, झील, तालाब, झरना, कुआँरूपसे संसारको मिलता है। उस पानीका एक बूँद भी नष्ट नहीं हो सकता और संसारभरका पानी समुद्रमें गिरता है। विचित्र व्यापार चल रहा है। तौलकर पानी इस भूमण्डलको मिला है। वह सदा उतना ही बना रहता है। तमाम संसारका काम उसीसे चलता है, फिर भी उसमेंसे न एक बूँद अधिक हो सके न कम। पृथ्वीके भीतर-बाहर मीठा, खारा, निर्मल, मलीन जितना जल है, सो सब समुद्रका ही जल है। इस भाँति जो कुछ ज्ञान इस संसारमें है। उसका खजाना वेद-पुराण है। वेद-पुराणसे ही ज्ञान संसारमें फैला है। चाहे जिस रूपसे, जिस देशमें, जिस प्रकार ज्ञान है, सबका मूल वेद-पुराण है। वेद-पुराणके ज्ञानमेंसे न एक बिन्दु घट सकता है, न बढ़ सकता है। चाहे रासायनिक, चाहे वैद्युत चाहे इस लोकका, चाहे परलोकका, सबका मूल वेद-पुराण है। समुद्रसे जल लेकर संसारभरमें पहुँचाना मेघका काम है। जो जल नद-नदीमें बह रहा है, जो तालाब, झील और कुओंमें एकत्रित है, वह सब इन्हींका जूठा है। इसी भाँति वेद-पुराणके ज्ञानको, जहाँ-तहाँ सारे संसारमें फैलानेवाले साधु हैं। जो कुछ ज्ञान-विज्ञान संसारमें दिखायी पड़ता है, सो सब साधुओंका दिया हुआ है और सब वेद-पुराणोंसे निकला है। आकाशसे गिरता हुआ जल, पातालसे खोदकर निकाला हुआ जल समुद्रसे ही लाया गया है, यह बात आपाततः समझमें नहीं आती, इसी भाँति यूरोप-अमेरिकाका आविष्कृत ज्ञान भी परम्परया वेदसे ही निकाला गया है, यह बात भी एकाएक मनमें नहीं आती पर वस्तुस्थिति ऐसी ही है। (वि० त्रि०)

(ख) वेदादिको समुद्र और मेघको साधु कहनेका भाव यह है कि समुद्र एक ठौर स्थित है और उसमें अगाध जल भरा है, सबको नहीं मिल सकता, मेघ उसके जलको शुद्ध स्वरूपमें सर्वत्र पहुँचा देते हैं। इसी तरह वेद-पुराणमें सबका गम्य नहीं। साधुओंके द्वारा उसका निचोड़ (सार पदार्थ) सबको मिल जाता है, क्योंकि सन्त विचरते रहते हैं और परोपकारी होते हैं। मेघ समस्त परोपकारियोंमें सार्वभौम सम्राट् माने जाते हैं। यथा—'**शैलेषु शिलातलेषु च गिरेः शृङ्गेषु गर्तेषु च श्रीखण्डेषु बिभीतकेषु च तथा पूर्णेषु रिक्तेषु च। स्निग्धेन ध्वनिनाऽखिलेऽपि जगती चक्रे समं वर्षतो वन्दे वारिद सार्वभौम भवतो विश्वोपकारिव्रतम्॥**' (सु० र० भा० ५। ५९) अर्थात् सैन्धव और शिलाखण्डमें, पर्वतके शिखरों और गड्ढोंमें, चन्दनमें और भिलावेमें, परिपूर्णमें और खाली (जलरहित जगह) में इत्यादि सारे भूमण्डलमें गम्भीर मधुर ध्वनिके साथ समान रूपसे वर्षा करनेवाले हे सार्वभौम (चक्रवर्ती राजा) मेघ! तुम्हारे इस विश्वोपकारी व्रतकी मैं वन्दना करता हूँ।—साधुको घन कहा, क्योंकि दोनों परोपकारके साधनेवाले हैं, दोनोंकी सर्वोपर

समान दृष्टि रहती है। यथा—*'हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥'* (७। ४७) और साधुका अर्थ भी यही है, इसीसे 'साधु' शब्द दिया। 'साध्नोति पर कार्यमिति साधुः।' (पं० रामकुमार)

(ग) वेद-पुराणकी उपमा समुद्रसे दी है, क्योंकि वे अखिल धर्मके मूल होनेसे काम्य धर्मके भी प्रतिपादक हैं, उनमें अर्थ-कामका भी यथेष्ट मात्रामें प्रतिपादन है, अतः वे सबके कामके न रह गये। साधारण श्रेणीके लोग तो काम्य-धर्मको ही मुख्य मान बैठेंगे। उनमें जो त्यागकी महिमा कही गयी है, उसे मुख्य न मानेंगे और यह अर्थ लगावेंगे कि यह त्याग कर्मके अनधिकारी पङ्गुके लिये है। परन्तु सिद्धान्त यह है कि *'सो सब करम धरम जरि जाऊ। जहँ न रामपद पंकज भाऊ॥' 'जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहिं रामप्रेम परधानू॥'* काम्य-धर्म-अर्थादि खारे जलके समान हैं। साधु इनको छोड़कर श्रीरामसुयशरूपी शुद्ध धर्म निकाल लेते हैं जो सबके कामका होता है। यथा—*'जीवनमुक्त महामुनि जेऊ। हरिगुन सुनहिं निरंतर तेऊ'* से *'बिषइन्ह कहँ पुनि हरिगुन ग्रामा। श्रवन सुखद अरु मन अभिरामा॥'* तक (वि० त्रि०)

(घ) मा० प्र० और बै० के मतानुसार रूपक इस प्रकार है—किम्पुरुषखण्डमें मानससर है, श्रीरामरूप पूज्य हैं, श्रीहनुमान्‌जी पुजारी हैं। मानससरमें भूमि, थल, थलकी अगाधता। मेघ समुद्रसे मीठा जल लेकर वर्षा करते हैं। वैसे ही क्रमशः यहाँ तुलसीतन किम्पुरुषखण्ड, श्रीरामरूप पूज्य, श्रीहनुमान्‌जी पुजारी, सुमति भूमि, हृदय थल, हृदयकी गम्भीरता थलकी अगाधता, साधु मेघ, वेद-पुराण समुद्र, उपासना वा श्रीरामयश मीठा जल वेद-पुराणोंसे निकालकर साधु उसकी वर्षा करते हैं। (मा० प्र०, बै०)

शङ्का—'गोस्वामीजी ऐसे दिव्य तालाबका रहना अपनी बुद्धिके आश्रय कहते हैं कि जिस तड़ागमें भगवत्‌की लीला और महिमा आदि अनेक दिव्य गुण भरे हैं, जहाँ मन और वाणी नहीं पहुँच सकते यह क्या बात है ?' (पं० रा० कु०)

समाधान—(क) गोस्वामीजी यहाँ केवल उस पदार्थका अपने उरमें आना कहते हैं जो सन्तोंके मुखसे सुना है। समस्त रघुपतिमहिमा तो वेद भी नहीं जानते। अथवा, (ख)—शङ्कर-प्रसादसे सुमति प्राप्त हुई है। ऐसी दिव्य बुद्धिमें सब आ सकता है, कुछ आश्चर्य नहीं है। (पं० रा० कु०)

शङ्का—गोस्वामीजीकी प्रतिज्ञा है कि शिवकृत रामचरितमानसको हम भाषामें करते हैं किन्तु यहाँ *'बेद पुरान उदधि घन साधू.....'* कहनेसे पाया जाता है कि सन्तोंसे वेद-पुराण सुनकर रामचरित कहते हैं। और पूर्व कह आये हैं कि *'मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई। सोइ मगु चलत सुगम मोहि भाई॥'*—यह सब कैसे बने ? (पं० रा० कु०)

समाधान—(१) ग्रन्थकार शिव-मानसकी कथामात्र कहते हैं, यथा—*'कहउँ कथा सोइ सुखद सुहाई।'* (बा० ३५) और सब विचित्रता और अनेक प्रसङ्ग जो कहे हैं, वे सब वेद-पुराणों और मुनियोंके ग्रन्थोंके हैं। अथवा, (२) जिस तरह वर्षा होती है उसी तरह कहते हैं। जल प्रथम सूर्यकिरणोंद्वारा सूर्यमण्डलमें जाता है, फिर क्रमसे चन्द्रमण्डल, वायुमण्डल और मेघमण्डलमें होता हुआ भूमण्डलमें आता है। (१। ७।१२) देखिये। इसी तरह रामयश प्रथम वेद-पुराणसे शिवजीके उरमें आया, यथा—*'बरनहु रघुबर बिसद जसु श्रुति सिद्धांत निचोरि।'* (१। १०९) क्रमशः भुशुण्डिजी, याज्ञवल्क्यजी, श्रीगुरुमहाराज और तत्पश्चात् अनेक सज्जनोंके उरमें आया। श्रीगुरुजीके द्वारा गोस्वामीजीकी मेधामें आया। गुरुको साधु कहा है, यथा— *'परम साधु परमारथ बिंदक। संभु उपासक नहिं हरि निंदक॥'* (७। १०५) (पं० रा० कु०)

(३) *'सुने गुरू ते बीच शर संत बीच मन जान। प्रगट सतहत्तर परे ताते कहे बिरान॥'* (मा० म०) अर्थात् पाँच वर्षके लगभग गुरुसे कई आवृत्ति पढ़ी और फिर सन्तोंसे लगभग 'मन' (=४०) वर्षतक सुना। सतहत्तर वर्षकी अवस्था होनेके पश्चात् मानस-कथा प्रकाशित हुई। इससे यह भाव निकला कि सन्तोंसे जो सुना वह वेद-पुराणादि समुद्रसे निकला हुआ श्रीरामयश जल है जो शिवदत्त मानस-जलमें आकर मिला। (मा० म०)

बरषहिं रामसुजस बर बारी। मधुर मनोहर मंगलकारी ॥ ४ ॥

अर्थ—(साधुरूपी मेघ) राम-सुयशरूपी उत्तम मीठे, मनोहर और मङ्गलकारी जलकी वर्षा करते हैं॥ ४ ॥

नोट—१ जैसे मेघ समुद्रसे जल खींचकर पृथ्वीपर बरसते हैं जो पृथ्वीपर बहता हुआ मानससरके गहरे थलमें जाकर जमा होता है, वैसे ही साधु वेदों-पुराणोंमेंसे राम-सुयश निकालकर सुमतिवान्को सुनाते हैं जो उसे हृदयमें धारण कर लेते हैं।

नोट—२ *'बरषहिं'* इति। समुद्रका जल तटवासियोंको ही सुलभ है, सबको नहीं, कितने ही लोग ऐसे हैं जिन्हें जन्मभर समुद्रका दर्शन भी नहीं हुआ। इसी भाँति अधिकारीका ही वेद-पुराणमें प्रवेश है, शेष जगत्ने तो वेद-पुराणका नाम-मात्र सुन रखा है और मेघ तो ऐसी वर्षा करते हैं कि प्रान्त-का-प्रान्त जलमय हो जाता है, इसी तरह साधुलोग रामसुयशकी ऐसी वर्षा करते हैं कि देश-का-देश यशसे प्लावित हो उठता है, इसीसे उन्हें 'जंगम तीर्थराज' कहा गया है। ये *'सबहि सुलभ सब दिन सब देसा'* होनेसे सर्वोपकारी होते हैं। (वि० त्रि०)

टिप्पणी—'सुन्दर यश है इसीसे *'बर'* वारि कहा। समुद्रमें खारा जल है, वेद-पुराणमें रामयश मधुर जल है। कर्म, उपासना और ज्ञान सब श्रीरामजीहीके यश हैं। *'मधुर मनोहर मंगलकारी'* अर्थात् पीनेमें मधुर है, देखनेमें मनोहर है और इसमें मङ्गलकारी गुण हैं। जलका रोगहारी, पुष्टिकारी इत्यादि होना मङ्गलकारी गुण है'। *मनोहर*=स्वच्छ।

मानस-पत्रिका—'जैसे मेघ जलको वर्षाकालका समय पाकर बरसता है वैसे ही सज्जन लोग राम-सुयश अर्थात् सगुण, निर्गुण दोनोंके यशको सत्सङ्ग पाकर फैलाते हैं।' यहाँ ग्रन्थकारने यह विशेष दिखाया है कि मानसरोवरका जल मेघोंके मुखसे गिरा, भूमिमें पड़ा, तदनन्तर सब गन्दी वस्तुओंसे मिला-जुला आता है, यहाँ तो यह बात नहीं है। *'मधुर स्वादु'* अर्थात् पीनेमें मानसरोवरका जल मीठा एवं सुननेमें रामकथा माधुर्य आदि गुणविशिष्ट। *मनोहर*=सोहावन। कथापक्षमें, *'मनोहर'*=श्रवणकटु आदि दोषरहित। *मंगलकारी*-पापनाशक, आयुवर्द्धक। कथापक्षमें *'मंगलकारी'*=जीवनको सफल करनेवाली।

शुकदेवलालजी—रामसुयशका सुनना, समझना और उससे लोक-परलोक बनना यही जलका पीनेमें मधुर, देखनेमें मनोहर और रोगहारक बलप्रद इत्यादि होना है।

वि० त्रिपाठीजी—मधुर आदि कहकर समुद्रके जलको खारा, भयङ्कर और दोषयुक्त जनाया। खारा, यथा—*'लीलहिं लाँघउँ जलनिधि खारा।'* भयङ्कर, यथा—*'संकुल मकर उरग झख जाती। अति अगाध दुस्तर सब भाँती॥'* दोषयुक्त, यथा—*'तव रिपुनारि रुदन जल धारा। भरेउ बहोरि भयउ तेहि खारा॥'* कुछ विशेष अवसरोंके व्यतिरिक्त समुद्रका जलस्पर्श निषिद्ध है। इसी तरह वेद-पुराणसे सद्यः प्राप्त ज्ञान भी खारा, भयानक और दोषयुक्त-सा होता है। उदाहरण, यथा—*'प्रौढ़ भए मोहि पिता पढ़ावा। समुझौं सुनौं गुनौं नहिं भावा॥'* (यह खारा-सा हुआ)—*मेघनाद मख करै अपावन।*'......*'आहुति देत रुधिर अरु भैंसा।'* (यह भयानक-सा है); और *'श्रुति पुरान बहु कहे उपाई। छूट न अधिक अधिक अरुझाई॥'* (यह दोषयुक्त-सा है) पर यही वेद-पुराणका ज्ञान साधुमुखच्युत होनेसे मधुर, मनोहर, मंगलकारी हो जाता है। यथा—*'श्रवनवंत अस को जग माहीं। जिन्हहिं न रघुपति कथा सुहाहीं॥'* (यह मधुरता), *'सावधान मन करि पुनि संकर। लागे कहन कथा अति सुंदर॥'* (यह मनोहरता) और *'मंगलकरनि कलिमलहरनि तुलसी कथा रघुनाथ की'* (यह मङ्गलकारित्वगुण है।)

नोट—३ *'मधुर मनोहर मंगलकारी'* गुण जो यहाँ कहे हैं, वे पृथ्वीपर पड़नेके पहिले जलमें होते हैं। भूमिपर पड़नेसे जलमें ये गुण नहीं रह जाते।

पं० रामकुमारजी—'वेद-पुराण श्रीरामजीके यश गाते हैं, यथा—*'बंदउँ चारिउ बेद भवसागर बोहित सरिस। जिन्हहिं न सपनेहु खेद बरनत रघुबर बिसद जस॥'* (१। १४) *'जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्य मनपर ध्यावहीं। ते कहहु जानहु नाथ हम तव सगुन जस नित गावहीं॥'* (उ० १३) वेद सब कुछ कहते हैं।

परन्तु उनका सिद्धान्त तो रामयश ही है, यथा—'*बंदउँ पद धरि धरनि सिरु बिनय करउँ कर जोरि। बरनहु रघुबर बिसद जसु श्रुति सिद्धांत निचोरि॥*' (१। १०९)

नोट—४ मानसमयङ्ककार लिखते हैं कि इस चौपाईमें ध्वनि यह है कि 'गुसाईंजीकी अगाध बुद्धिमें पहिले ही यशरूपी जल भरा हुआ था और वेद-पुराणादि सिन्धुसे सन्तरूपी मेघद्वारा यशको पाकर परिपूर्ण हुआ जो आगे कहा है।'

श्रीकरुणासिन्धुजी लिखते हैं कि रामसुयशको '*मधुर मनोहर मंगलकारी*' कहकर सूचित किया कि वेद-पुराणरूपी समुद्रका साधारण जल खारा है, देखनेमें अच्छा नहीं और उसके पी लेनेसे रोग पैदा हो जाते हैं।

शङ्का—समुद्रका जल तो खारा होता है, वेद-पुराणमें खारापन कहाँ है ?

समाधान—श्रीकरुणासिन्धुजी तथा श्रीजानकीदासजी इसका उत्तर यों देते हैं कि—'वेदमें कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड और उपासनाकाण्ड तीनों मिले हुए हैं। इनमेंसे उपासनाकाण्ड मीठा जल है और कर्मकाण्ड खारा जल है।' समुद्रका जल ऊपरसे देखनेसे खारा ही जान पड़ता है। जो भेदी हैं वे उसमेंसे भी मीठा जल भापद्वारा निकाल लेते हैं। यदि उसमें मीठा जल मिला न होता तो उसमेंसे ऐसा जल कैसे निकलता ? मेघ सूर्यकिरणोंकी सहायतासे मीठा जल खींच लेते हैं, सबमें यह शक्ति नहीं होती। वैसे ही वेदों-पुराणोंमेंसे सन्तलोग अपने शुद्ध बोधसे मनन-निदिध्यासन करके श्रीरामसुयश निकाल लेते हैं। जो ऊपरसे देखनेवाले हैं उनको केवल कर्मरूपी खारा ही जल हाथ लगता है। [जो कर्म और ज्ञान भगवत्-सम्बन्धी हैं वे उपासनाहीके अङ्ग हैं, वे खारे नहीं हैं; यथा—'*सो सुखु कर्म धर्म जरि जाऊ। जहँ न रामपदपंकज भाऊ॥*', '*जोग कुजोग ग्यान अग्यानू। जहँ नहिं रामप्रेम परधानू॥*' (अ० २९१)]

☞ श्रीजानकीशरणजी भी श्रीकरुणासिन्धुजी तथा श्रीजानकीदासजीसे सहमत नहीं हैं। वे लिखते हैं कि कर्मकाण्ड रामयशसे पृथक् किसी प्रसङ्गमें नहीं है। देखिये सन्तसमाज प्रयागमें प्रथम ही कर्मरूपी यमुना हैं। भरद्वाजजी कर्मकाण्डी हैं, उन्होंने भी सन्तसभामें कर्म वर्णन किये हैं। यथा—'*भगति निरूपन करम (?)*' '*बिधि बरनहिं तत्व बिभाग*'। श्रीलखनलालजीका कथन निषादराजके प्रति, यथा—'*निज कृत करम भोग सब भ्राता*'। पुन: संयम, नियम, जप-तप, योग-विरागादि ये सब जलचर चारु तड़ागमें वर्णित हैं और सन्तसभारूपी अमराईमें फूलका वर्णन होगा। अतएव कर्मको खारापन कहना परम असम्भव है।' उनका मत है कि 'समुद्रजल खारा और अमङ्गल है। अर्थात् पीनेमें स्वादहीन और रोगकारक है, धान आदि कृषिमें पड़े तो नोनासे कृषि बरबाद हो जाय; तथा रङ्गतमें निकम्मा है, यही अमनोहरता है। इसी तरह वेद-पुराणोंमें प्राकृत राजाओंकी कथा और पापियोंके उद्धार होनेकी कथा रामयशके साथ मिश्रित होनेसे रामयशजलमें मधुरता नहीं रहती— यही जलका खारापन है। रामचरित्र दो प्रकारका है, एक मर्यादापूर्ण, दूसरा लीला-रसमय। वेद-पुराणादिमें लीलाचरित्र विशेष करके कथन किया गया है; वह लीलायश परत्व भी प्राकृत राजाओंके तुल्य जहाँ-तहाँ है—यह वेद-पुराणवर्ती रामयशका मटियाला रङ्ग है। यह लीला देख-सुनके सुकृतरूपी शालि सूखता है, इससे अमङ्गलकारी है। ...... मेघजलमें सब गुण आ जाते हैं। वैसे ही वेद-पुराणके यथार्थतत्त्वको नहीं जाननेसे उससे लाभके बदले हानि होती है। जब सन्त, गुरु (रूपी मेघ) बोध कराते हैं तब उससे वास्तविक बोध-लाभ होता है।' जब साधुरूपी मेघ श्रीरामयशरूपी जलको खींचकर अपने उदरमें रखते तब रामयशकी तीन उत्तम गतियाँ हो जाती हैं—'मधुर, मनोहर और मङ्गलकारी।'

पं० श्रीरामकुमारजीका मत है कि—पृथ्वीके योगसे वर्षाजल अपावन और मलिन हो जाता है, परन्तु यहाँ तो श्रीशङ्करजीके प्रसादसे मिली हुई 'सुमति' भूमि है इसलिये यहाँ वह बात नहीं है। यहाँ उपमाका एक देश लिया गया है। सु० द्विवेदी एवं सू० प्र० मिश्रका भी यही मत है। विशेष चौ० ३ के नोट ४ (ग) में वि० त्रि० जीके भाव देखिये।

प्रश्न—वर्षाके पहिले गर्मी होती है, हवा रुक जाती है। यहाँ वह गर्मी क्या है ?

उत्तर—रामगुणकथनके पूर्व आह्लाद और उत्साह होता है। यही गर्मी है। प्रेममें मग्न होना वायुका

रुकना है, यथा—*'परमानंद अमित सुख पावा॥', 'मगन ध्यान रस दंड जुग पुनि मन बाहेर कीन्ह। रघुपतिचरित महेस तब हरषित बरनै लीन्ह॥'* (१। १११), *'हिय हरषे कामारि तब""।'* (१। १२०), *'भयउ तासु मन परम उछाहा। लाग कहइ रघुपति गुनगाहा॥'* (उ० ६३) इत्यादि।

शार्ङ्गधरके 'गुणायन्ते दोषाः सुजनवदने दुर्जनमुखे गुणा दोषायन्ते तदिदमपि नो विस्मयपदम्। महामेघः क्षारं पिबति कुरुते वारि मधुरं फणी क्षीरं पीत्वा वमति गरलं दुःसहतरम्॥' इस श्लोकके अनुसार भाव यह होता है कि जैसे मेघ खारे जलको पीकर उसे मधुर बना देते हैं और सर्प दूध भी पीकर अत्यन्त दुःसह विष ही उगलता है, वैसे ही सज्जन दोषोंमेंसे गुण निकालकर दे देते हैं और दुर्जन गुणोंमें भी दोष ही दिखाते हैं। (संस्कृत खर्रा)

नोट—५ चौपाई ३ और ४ का अन्वय एक साथ यों किया जाता है—'वेद-पुराण अगाध उदधि, साधु घन, मधुर मनोहर मंगलकारी रामचरित बर बारि, सुमति भूमि, थल हृदय बरषहिं।'

अर्थ—वेद-पुराण अगाध समुद्रसे ग्रहणकर साधुरूपी मेघ जो मधुर-मनोहर-मङ्गलकारी रामचरितरूप उत्तम जल मेधारूपिणी भूमि और हृदयरूपी आशयमें बरसाते हैं।

लीला सगुन जो कहहिं बखानी। सोइ स्वच्छता करै मलहानी॥ ५ ॥
प्रेम भगति जो बरनि न जाई। सोइ मधुरता सुसीतलताई॥ ६॥

शब्दार्थ—**स्वच्छता**=निर्मलता। मल=मैल। **करै मलहानी**=मैलको दूर करती है। **प्रेम भगति**=प्रेमलक्षणा भक्ति, वह भक्ति जो बड़े प्रेमसे की जाय।

अर्थ—सगुण लीला जो विस्तारसे कहते हैं वही (रामसुयश जलकी) निर्मलता है जो मलको दूर करती है॥ ५॥ प्रेमाभक्ति जिसका वर्णन नहीं हो सकता वह इसका मीठापन और सुशीतलता गुण है॥ ६॥

नोट—१ श्रीत्रिपाठीजी लिखते हैं कि—(क) सगुण लीला कहनेसे ही अर्थापत्ति होती है कि निर्गुण लीला भी है। वस्तुतः निर्गुण-सगुणमें कोई भेद नहीं है। शुद्ध ब्रह्मको निर्गुण और मायाशबल ब्रह्मको सगुण कहते हैं—[यह अद्वैतमत है। इस मतसे ब्रह्म गुणरहित माना जाता है और यावत् गुण हैं वे सब मायाके हैं, परन्तु माया स्वयं जड है, वह चेतन ब्रह्मके आश्रयसे सब कार्य करती है, अतः परमाश्रय होनेसे उस ब्रह्मपर सगुणत्वका आरोप किया जाता है। और, विशिष्टाद्वैतमतमें ब्रह्म दिव्य गुणोंसे युक्त माना जाता है, अतः उसकी लीला होना ठीक ही है। गोस्वामीजीके मतानुसार श्रीरघुवंशभूषण 'राम' शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म हैं, यथा—*'सुद्ध सच्चिदानंदमय कंद भानुकुल केतु। चरित करत नर अनुहरत संसृति सागर सेतु॥'* (२। ८७) वे मायाशबल ब्रह्म नहीं हैं, यथा—*'अबिगत गोतीतं चरित पुनीतं माया रहित मुकुंदा।'* (१। १८६),*'ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद। सो अज प्रेमभगति बस कौसल्या के गोद॥'* (१९८) इत्यादि। वे ही निर्गुण हैं, वे ही सगुण हैं और दोनोंसे परे अनुपम हैं, यथा—*'अगुन सगुन गुन मंदिर सुंदर।'* (६। ११४ छंद) *'जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूपसिरोमने।'* इत्यादि। गोस्वामीजी निर्गुण और सगुणमें किञ्चित् भी भेद नहीं मानते, यथा *'सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा॥ अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥ ""'* (११६। १-२) *'जिन्हके अगुन न सगुन बिबेका। जल्पहि कल्पित बचन अनेका॥'* उन्होंने निर्गुण और सगुणकी व्याख्या यह की है—*'एक दारुगत देखिअ एकू। पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू॥'* (१। २३४)] सगुण ब्रह्मके भी सामान्यतः दो भेद माने जाते हैं, एक विश्वरूप, दूसरा लीला-विग्रह जो इच्छामय होनेसे विश्वरूपकी अपेक्षा सूक्ष्म है। ब्रह्म सदा आप्तकाम है, चाहे वह निर्गुणरूप हो, चाहे सगुणरूप हो। उसे किसी प्रकारका कोई प्रयोजन नहीं है, फिर भी दोनों रूपोंकी लीलाएँ होती हैं, निर्गुण ब्रह्म निरीह-निष्क्रिय है पर उसके सन्निधानसे जड मायामें क्रिया उत्पन्न होती है और संसारका व्यापार चल पड़ता है, यही उसकी लीला है, सगुण ब्रह्मकी लीला दूसरे प्रकारकी है। जब-जब धर्मकी ग्लानि और अधर्मका अभ्युत्थान होता है तब-तब साधुओंकी रक्षा और दुष्टोंके विनाशके लिये प्रभु अवतीर्ण हो लीला करते हैं। यथा—*'जब जब होइ धरम कै हानी।""'* इत्यादि।

जो भुशुण्डिजीने *'प्रथमहिं अति अनुराग भवानी॥'* (७। ६४। ७) से *'पुर बरनत नृपनीति अनेका।'* (७। ६८। ६) तक ८४ प्रसङ्गोंमें कहा है वही सब कथा सगुण लीला है। ८४ लक्षयोनियोंसे छुड़ानेवाली है। (ख) *'जो कहहि बखानी'* इति। भाव यह कि निर्गुण लीला बखानकर नहीं कहते, क्योंकि उसीसे संसार फैला हुआ है। कितना भी अध्यारोप किया जाय पर अन्तमें उसका अपवाद ही करना है, अत: उसके विस्तारसे कोई प्रयोजन नहीं है। पर सगुण लीला विस्तारसे कही जाती है कि उसके गानसे लोग भवसागरके पार चले जायँ। रामतापनीय श्रुतिमें कहा है कि श्रीरामजी अपने चरितके द्वारा धर्मनामके द्वारा ज्ञान, ध्यानद्वारा वैराग्य और पूजनद्वारा ऐश्वर्य देते हैं। लीलावर्णनमें नाम-चरित्र, ध्यान और पूजन सभी आ जाते हैं और कर्म, उपासना, ज्ञान इन तीनों काण्डोंका फल सुलभ हो जाता है। अत: सगुण लीलाका वर्णन विस्तारसे करना ही प्राप्त है। (ग) *'सोइ स्वच्छता'* इति। भगवान्‌के जन्म, कर्म दिव्य हैं, उनका शरीर भी भौतिक नहीं, उनके कर्म भी अलौकिक हैं और उनसे वह लिप्त नहीं होते। वे जो कुछ करते हैं, अभिनयकी भाँति करते हैं—*'जथा अनेक बेष धरि नृत्य करइ नट कोइ। जोइ जोइ भाव दिखावै आपुन होइ न सोइ।'* —जिस कथामें ऐसे दिव्य कर्मका निरूपण हो उसे दिव्य न कहना ही अनुचित है और जो दिव्य है वही स्वच्छ है, मनोहर है। जीव अविद्याके वश हो कर्म-फल-भोगके लिये जन्म पाता है और जन्म लेकर फिर कर्म करता है, जो उसके अनागत जन्मका कारण होता है, इसी भाँति कर्मजालमें फँसा हुआ वह दु:ख पाता है। भगवान्‌का कर्म, विपाक (फल) और आशय (संस्कार) से कोई सम्पर्क नहीं रहता, यथा—*'कर्म सुभासुभ तुम्हहि न बाधा।'* (१। १३७) भगवान् स्वतन्त्र हैं। वे जो कुछ करते हैं लोकोपकारार्थ करते हैं। रामयशजलमें सगुणलीलाका बखान है। जलकी शोभा निर्मल (स्वच्छ) होनेमें ही है, इसी भाँति रामयशकी शोभा सगुणलीलाके बखानमें है।

नोट—२ बैजनाथजी *'लीला सगुन'* का अर्थ करते हैं—'गुण सहित लीला' अर्थात् कृपा, दया, उदारता, सुशीलता और माधुरी आदि जो परम दिव्य गुण हैं उनको प्रकट कर जो लीला की है वह 'सगुण लीला' है। जैसे अहल्योद्धारमें उदारता, धनुर्भङ्गमें बल, परशुरामगर्वहरणमें प्रताप, पुरवासियोंमें माधुर्य, निषादसे उदारता और सुशीलता, कोल-भीलोंसे सौलभ्य, गृध्रराज और शबरीजीसे अनुकम्पा, सुग्रीव-विभीषणसे शरणपालता और करुणा एवं राक्षसोंसे युद्धमें शौर्य, वीरता इत्यादि गुणोंसहित जो लीला विस्तारसे कहते हैं वह 'स्वच्छता' है। उज्ज्वलताके छ: अङ्ग हैं। 'औज्वल्य जैसे चन्द्रमामें, नैर्मल्य जैसे शरद्‌में आकाश, स्वच्छत्व जैसे स्फटिक, शुद्धता जैसे गङ्गाजल, सुखमा और दीप्ति जैसे सूर्य। उदारता आदि गुणों-सहित जो लीलाका वर्णन है वह उज्ज्वलताके छ: अङ्गोंमेंसे स्फटिकमणिवत् स्वच्छता गुण है।'

नोट—३(क) *'करै मलहानी'* इति। स्वच्छ जल ही मलको दूर कर सकता है, नहीं तो *'छूटइ मल कि मलहि के धोएँ।'* (७। ४९) जब वर्षा होती है तब संसारका मल दूर हो जाता है। पर्वत, वृक्ष, पृथ्वी सब धुल जाते हैं। इसी भाँति जब श्रीरामयशकी वर्षा होती है तब सगुणलीलाके बखानसे अभ्यन्तर मल दूर हो जाता है। इस बातको सभी श्रोताओंने स्वीकार किया है। यथा—*'गएउ मोर संदेह सुनेउँ सकल रघुपति चरित।'* (७। ६८) (गरुड़जी) *तुम्हरी कृपा कृपायतन अब कृतकृत्य न मोह।'* (७। ५२) (पार्वतीजी), *'जैसे मिटइ मोह भ्रम भारी। कहहु सो कथा नाथ बिस्तारी॥'* (१। ४७) (भरद्वाजजी) गोस्वामीजीने भी वही फल कहा है। यथा—*'रघुबंसभूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं। कलिमल मनोमल धोइ बिनु श्रम रामधाम सिधावहीं॥'* (७। १३०) (वि० त्रि०) (ख) 'स्वच्छता' के साथ *'करै मल हानी'* पद देकर सूचित किया कि ऊपर जो 'मनोहरता' कही थी, वही 'स्वच्छता' है। सगुणलीलाके बखानको 'स्वच्छता' कहा, क्योंकि अवतार लेकर जो लीला प्रभुने की, उसके सुननेसे मनका विकार दूर हो जाता है, मन निर्मल हो जाता है।

मानसपत्रिका—जल और लीला दोनोंसे शुद्धि होती है, जलसे बाहरकी और चरितसे भीतरकी (अर्थात्

मनकी) शुद्धि होती है। दूसरा भाव यह है कि वह सगुण लीला बखान करूँगा जिसमें निर्गुण ब्रह्मके भाव प्रति लीलामें प्रत्यक्षरूपसे दिखलायी पड़ेंगे।

नोट—४ *'करै मल हानी'* इति। यह मल क्या है ? जलके सम्बन्धसे मल शरीरका मैल है जो स्वच्छ जलसे दूर हो जाता है। वर्षा और भूमिके सम्बन्धसे पृथ्वीपर जल पड़ते ही भूमिकी रज आदि जो उस जलमें मिलकर जलको गंदा कर देते हैं वही जलका मल है। श्रीरामसुयश-सम्बन्धमें मोहसे उत्पन्न जो हृदयकी विस्मृति, भ्रम, संशय, विषयवासना, काम, क्रोध, लोभादि विकार हैं वे ही मल हैं। यथा—*'मोहजनित मल लाग बिबिध बिधि कोटिहु जतन न जाई।''''' नयन मलिन परनारि निरखि, मन मलिन बिषय सँग लागे। हृदय मलिन बासना-मान-मद, जीव सहज सुख त्यागे॥ परनिंदा सुनि श्रवन मलिन भे, बचन दोष पर गाये। सब प्रकार मलभार लाग, निज नाथ-चरन बिसराये॥'* (विनय० ८२) इस ग्रन्थमें श्रीभरद्वाजजी, श्रीपार्वतीजी और श्रीगरुड़जीके सन्देह, मोह और भ्रमकी निवृत्ति सगुण चरित-द्वारा दिखायी गयी है। श्रीरामचरित समस्त मलके हरनेवाले हैं, यथा—*'निज संदेह मोह भ्रम हरनी। करउँ कथा'''''।'* (१। ३१) *'काम कोह कलिमल करिगन के। केहरि सावक जन मन बन के॥'* (१। ३२) *'रघुबंसभूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं। कलिमल मनोमल धोइ बिनु श्रम रामधाम सिधावहीं॥'* (७। १३०) इत्यादि।—सगुणलीलाके श्रवणसे भगवान्‌के गुणोंका प्रभाव श्रोताओंके हृदयपर पड़ता है। जिससे उनके हृदयका सूक्ष्म (अभ्यन्तर) मल नष्ट हो जाता है।

मा० प्र० कार लिखते हैं कि 'जब यह कहा गया कि श्रीरामजी बड़े उदार, शीलवान्, वाग्मी, धैर्यवान्, दीनदयालु, गरीबनिवाज, पतितपावन इत्यादि हैं, ऐसा वेद-पुराण कहते हैं', तब मनमें यह मैल रह गया कि 'कौन जाने ये गुण हैं कि नहीं?' जब उक्त गुणोंको रघुनाथजीके अवतारके साथ लीलामें दर्शाया गया तब मनका वह सन्देह (तथा जो मोहजनित मल हृदयमें लगा है वह) दूर हो जाता है और प्रभुमें प्रेम तथा दृढ़ विश्वास हो जाता है कि प्रभु हमारी रक्षा अवश्य करेंगे। यथा—*'प्रभु तरुतर कपि डार पर ते किय आपु समान। तुलसी कहूँ न राम से साहिब सीलनिधान॥'* (१। २९) *'रहति न प्रभु चित चूक किए की। '''''जेहि अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली। फिरि सुकंठ सोइ कीन्हि कुचाली॥ सोइ करतूति बिभीषन केरी। सपनेहुँ सो न राम हियँ हेरी''''' ॥'* (१। २९) इत्यादि। *'गौतम नारि श्रापबस'''''*' से *'अस प्रभु दीनबंधु हरि कारनरहित कृपाल'* तक। (१। २११) *'रघुपति प्रजा प्रेम बस देखी। सदय हृदय दुखु भयउ बिसेषी॥' 'करुनामय रघुनाथ गुसाईं। बेगि पाइअहि पीर पराई॥ '''''सीलु सनेह छाँड़ि नहिं जाई।'''''।'* (२। ८५) *'बेदबचन मुनिमन अगम ते प्रभु करुना ऐन। बचन किरातन्ह के सुनत जिमि पितु बालक बैन॥' 'रामहिं केवल प्रेम पियारा। जानि लेहु जो जाननिहारा॥'''''*' (२। १३६) *'कंदमूल फल सुरस अति दिये राम कहुँ आनि। प्रेम सहित प्रभु खाये बारंबार बखानि॥' '''''जाति हीन अघ जनम महि मुकुति कीन्हि असि नारि।'* (अ० ३४, ३६) *'भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा॥' 'करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। '''''कहहु कवन प्रभु कै असि रीती। सेवक पर ममता अरु प्रीती॥'* (अ० ४३—४५) *'कीन्ह राम मोहि बिगत बिमोहा।''''' भगतबछलता प्रभु कै देखी। उपजी मम उर प्रीति बिसेषी॥'* (७। ८३) इत्यादि रीतिसे सगुणयशका वर्णन होनेसे हृदय निर्मल हो जाता है। श्रीरामयशमें प्रेम होता है। यही 'रामयशका' मनोहरता गुण है।

मा० मा० का मत है कि श्रीरामयशमें जो व्याख्या होती है उसका यथार्थ बोध न होना 'मल' है।

☞ सगुणलीलाका व्यवहार जगत्‌में घर-घरमें है—पुत्रजन्म, यज्ञोपवीत और विवाह आदि घर-घर होते ही रहते हैं। सबोंके हृदयोंमें इस लीला-व्यवहारका रास्ता बना हुआ है, अतएव सुनते ही वह हृदयमें प्रवेश कर जाती है। और, यह नित्य लीला है, भगवान्‌का यश है, अतः इसके श्रवणसे मलका नाश होता है।

नोट—५ अब यह प्रश्न उठता है कि 'रामसुयश' और 'सगुणलीला' तो दोनों एक ही बातें जान पड़ती हैं, तब दो बार क्यों कहा? उत्तर यह है कि रामसुयशमें सगुणलीला सम्मिलित है पर

केवल सगुणलीला ही रामसुयश नहीं है। 'रामसुयश' में निर्गुण-सगुण दोनों ही लीलाएँ मिश्रित हैं, फिर उसमें प्रेमभक्ति भी है। इनमेंसे केवल 'सगुणलीला' का कथन 'स्वच्छता' है।

'प्रेमभगति जो बरनि न जाई।……' इति।

१-ऊपर वर्षाजलमें 'मधुरता, मनोहरता और मङ्गलकारित्व' ये तीन गुण कहे हैं। अब यहाँ बतलाते हैं कि *'श्रीरामसुयश बर बारि'* में ये गुण क्या हैं। स्वच्छता (मनोहरता) सगुण-लीलाका बखान कर कहना है, यह पिछले चरणोंमें बताया। वर्षाजल मीठा (स्वादिष्ट) होता है और वैद्यकमें उसे वात-पित्त-कफके लिये बहुत गुणदायक कहा है। यहाँ (श्रीसुयशके) प्रेमाभक्तिमें ये दोनों गुण हैं। जैसे बहुत मीठा खानेसे मुँह बँध जाता है, वैसे ही प्रेमाभक्तिमें मुखसे वचन नहीं निकलता। यही 'मधुरता' है। नारदभक्तिसूत्रमें भी कहा है—**'अथातो भक्तिं व्याख्यास्यामः। सा कस्मै परमप्रेमरूपा अमृतस्वरूपा च। यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति तृप्तो भवति। यत्प्राप्य न किञ्चिद्वाञ्छति न शोचति न द्वेष्टि न रमते नोत्साही भवति।' 'ॐ अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्।'** (मा० प्र०, वै०, मा० मा०) प्रेमाभक्तिमें देहकी सुध-बुध नहीं रह जाती, कण्ठ गद्गद हो जाता है, मुखसे वचन नहीं निकलता, रोमाञ्च होता है। प्रेमी भक्त कभी खड़ा हो जाता है, कभी बैठ जाता है, कभी रोता है, कभी हँसता है, कभी गाता है, कभी स्वरूपाकार वृत्तिको प्राप्त हो जाता है, इत्यादि ४१ दशाएँ प्रेमलक्षणा-भक्तिमें होती हैं। (भक्तमालकी भगवान् श्रीरूपकलाजीकृत 'भक्ति-सुधाबिन्दु' टीकामें देखिये।) सुतीक्ष्णजी, शबरीजी, श्रीहनुमान्‌जी, श्रीभरतजी, श्रीसनकादि ऋषि एवं श्रीसीताजीकी दशाएँ इसके उदाहरण हैं। यथा क्रमसे (१) सुतीक्ष्णजीकी दशा—*'निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी।……' 'अबिरल प्रेमभगति मुनि पाई।……मानहु चित्र माँझ लिखि काढ़ा।'* (३। १०) (२) शबरीजीकी दशा—*'सबरी परी चरन लपटाई॥ प्रेम मगन मुख बचन न आवा।'* (३। ३४) (३) हनुमान्‌जीकी दशा—*'प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना। सो सुख उमा जाइ नहिं बरना॥ पुलकित तन मुख आव न बचना। देखत रुचिर बेष कै रचना॥'* (४। २) (४) भरतजीकी दशा—*'परे भूमि नहिं उठत उठाये।……बूझत कृपानिधि कुसल भरतहिं बचन बेगि न आवई। सुनु सिवा सो सुख बचन मन ते भिन्न जान जो पावई॥'* (७। ५) (५) सनकादि ऋषियोंकी दशा—*'मुनि रघुपति छबि अतुल बिलोकी। भये मगन मन सके न रोकी॥', 'एकटक रहे निमेष न लावहिं। स्रवत नयन जल पुलक सरीरा॥……'* (उ०। ३३) (६) स्वामिनी श्रीसीताजीकी दशा—*'अधिक सनेह देह भइ भोरी। सरद ससिहि जनु चितव चकोरी॥'* (१। २३२) इत्यादि। ऊपर जो मङ्गलकारित्व गुण कहा था उसीको यहाँ *'सुसीतलताई'* कहा है। क्योंकि प्रेमाभक्तिकी दशामें सुख-ही-सुख होता है; प्रेमके आँसू हृदयको शीतल और शान्त कर देते हैं, *'त्रिबिध ताप भवदाप'* नाशको प्राप्त होते हैं और कामक्रोधादि रोग दूर होते हैं। (म० प्र०) त्रिपाठीजीके मतानुसार इस अर्धालीमें माधुर्य कहा, मंगलकारित्व गुण आगे *'सो जल सुकृत सालि हित होई'* ……में कहेंगे।

२-कोई-कोई टीकाकार 'प्रेम और भक्ति' ऐसा अर्थ *'प्रेमभगति'* का करते हैं। परन्तु ऐसा करनेसे आगे पुनरुक्ति होती है। क्योंकि आगे भक्तिको लता कहेंगे, यथा—*'भगति निरूपन बिबिध बिधाना। छमा दया द्रुम लता बिताना॥'* (१। ३७। १३) दूसरा दोष यह आवेगा कि यहाँ *'जो बरनि न जाई'* यह विशेषण प्रेमभक्तिका ही यथार्थ हो सकता है, केवल भक्तिके लिये ये विशेषण नहीं दिये जा सकते। क्योंकि भक्तिका वर्णन इसी ग्रन्थमें कई जगह किया गया है।

प्रेम-भक्ति (जिसे प्रेमलक्षणा-भक्ति भी कहते हैं) कही नहीं जा सकती। जैसे गूँगेका गुड़, वह स्वाद तो पाता है पर कह नहीं सकता। प्रेम-भक्तिमें जो ऊपरकी दशा होती है वही थोड़ी-बहुत भले ही कही जा सके। यथा—*'सुनु सिवा सो सुख बचन मन ते भिन्न जान जो पावई।'* (उ० ५) *'कहि न जाइ सो दसा भवानी।'* (अ० १०। १०) कारण कि भक्तके प्रेमविभोर हो जानेसे उसके मनकी सङ्कल्प-विकल्प आदि गति रुक जाती है, उसे तो मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कारका विस्मरण हो जाता है। यथा—*'कोउ किछु कहइ न कोउ किछु पूछा। प्रेम भरा मन निज गति छूछा॥'* (२। २४२) *'परमपेम*

पूरन दोउ भाई। मन बुधि चित अहमिति बिसराई॥ कहहु सुपेम प्रगट को करई।' (२। २४१) जहाँ-जहाँ प्रेमदशाके वर्णनमें कविने असमर्थता दिखायी है वहाँ प्रेम-भक्तिका आविर्भाव समझना चाहिये; जैसे कि अयोध्याकाण्डमें तापसप्रसंगमें *'सजल नयन तन पुलकि निज इष्टदेउ पहिचानि। परेउ दंड जिमि धरनि तल दसा न जाइ बखानि॥'* (२। ११०) अरण्यकाण्डमें सुतीक्ष्ण-प्रसङ्गमें *'हे बिधि दीनबंधु रघुराया।'* (३। १०। ३) से *'प्रेम मगन मुनिबर बड़भागी'* तक जो प्रेमका वर्णन है उसके सम्बन्धमें शिवजी कहते हैं *'कहि न जाइ सो दसा भवानी।'* इसी तरह श्रीभरतजी और श्रीहनुमान्‌जी आदिके प्रेमभक्तिकी दशाएँ वर्णन न की जा सकीं। पुलकावली होना, नेत्रोंसे प्रेमाश्रुका प्रवाह चलना, गद्गद होना इत्यादि प्रेम-भक्तिकी दशाएँमात्र हैं। इन दशाओंको आगे रूपकमें कहा है, यथा—*'पुलक बाटिका बाग बन सुख सुबिहंग बिहारु। माली सुमन सनेह जल सींचत लोचन चारु॥'* (३७)

३ पं० रामकुमारजी लिखते हैं कि 'प्रेम-भक्ति'में प्रेम और भक्ति दोनों परिपूर्ण हैं। जैसे जलमें मधुरता और शीतलता रहती है वैसे ही श्रीरामजीके सब यशमें प्रेमभक्ति है। सब रामायणभरके प्रसङ्ग प्रेमभक्तिसे भरे हैं। पृथक्‌से कहना चाहें तो कहते नहीं बनता। इसीसे *'बरनि न जाई'* पद दिया। रामायणभरके प्रसङ्ग प्रेम-भक्तिसे भरे हैं, इसको त्रिपाठीजीने विस्तारसे दिखाया है।

त्रिपाठीजी—राम-भक्तिके आनन्दमें लीन रहना और किसी प्रकारकी कामना न रखना ही 'प्रेमाभक्ति' कहलाती है। साधक-भेदसे इस भक्तिके चौदह भेद ग्रन्थकारने माने हैं। भक्ति, भक्त और भगवान्‌का निरपेक्ष निरूपण नहीं हो सकता। अतः भगवद्यशमें भक्ति और भक्तका वर्णन ओत-प्रोत है। सो सातों काण्डोंके पूर्वार्ध और उत्तरार्धमें एक-एक प्रकारके भक्तोंका वर्णन है। इस प्रकार सम्पूर्ण ग्रन्थमें चौदह प्रकारके भक्तोंका वर्णन पाया जाता है। 'वाल्मीकि-प्रभु-मिलन'-प्रसङ्गमें इसकी कुञ्जी है।

(१) बालकाण्डके पूर्वार्धमें रामचरितके मुख्य श्रोता श्रीभरद्वाजजी और श्रीउमाजी प्रथम प्रकारके भक्त हैं। *'जाके श्रवन समुद्र समाना।'''''* (२। १२८। ४-५) भरद्वाजजी कथामें ऐसे लीन हुए कि उन्होंने कहीं कोई प्रश्न भी नहीं पूछा और याज्ञवल्क्यजीके बारम्बार सम्बोधन करके सावधान करनेपर भी मुनिकी वृत्ति जैसी-की-तैसी रह गयी। इसीसे रावणजन्म कहनेके बाद याज्ञवल्क्यजीने सम्बोधन करना बन्द कर दिया। *'काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा। भएउ निसाचर सहित समाजा॥'* (१। १७६। १) अन्तिम सम्बोधन है। उमाकी भी तृप्ति कथासे नहीं हुई। यथा—*'श्रवन पुटन्ह मन पान करि नहि अघात मति धीर।'* बालकाण्डके उत्तरार्धमें स्वायम्भू मनु-शतरूपा, महाराज दशरथ, महाराज जनक, विदेहराजसमाज—ये सब दूसरे प्रकारके भक्त हैं जिनके विषयमें कहा है—*'लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाषे॥ निदरहिं सरित सिंधु सर भारी। रूप बिंदु जल होहिं सुखारी॥'* (२। १२८। ६-७) मनु-शतरूपाजीने दर्शनके लिये तप किया; यथा—*'देखहिं हम सो रूप भरि लोचन'* और बिधि हरि-हररूपी सिंधु-सरादिका उन्होंने निरादर भी किया। श्रीदशरथजी महाराजके लिये विख्यात है कि *'जिअत राम बिधु बदन निहारा। राम बिरह करि मरन सँवारा॥'* जनकमहाराज स्वयं कहते हैं *'इन्हहिं देखि मन अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा॥'* पुरवासी भी कहते हैं कि *'जिन्ह निज रूप मोहिनी डारी। कीन्हे स्वबस नगर नर नारी॥'* (१। २२९) इस प्रकार सम्पूर्ण उत्तरार्ध ऐसे ही भक्तोंकी प्रेमकथासे परिपूर्ण है।

(२) अयोध्याकाण्ड-पूर्वार्धमें अवधपुरवासी तीसरे प्रकारके भक्त हैं, जिनके सम्बन्धमें कहा—*'जसु तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु। मुकुताहल गुनगन चुन''''' ।'* (२। १२८) इस भक्तिका उत्तरकाण्डमें स्पष्ट उल्लेख है। यथा—*'जहँ तहँ नर रघुपति गुन गावहिं। बैठि परस्पर इहै सिखावहिं॥'* (७। ३०) से *'एहि बिधि नगर नारि नर करहिं राम गुन गान।'* (३०) तक। उत्तरार्धमें *'प्रभुप्रसाद सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहइ नित नासा॥' 'तुम्हहि निवेदित भोजन करहीं। प्रभुप्रसाद पट भूषन धरहीं॥' 'सीस नवहिं सुरगुरु द्विज देखी। प्रीति सहित करि बिनय बिसेषी॥' 'कर नित करहिं रामपद पूजा। रामभरोस हृदय नहिं दूजा॥ चरन रामतीरथ चलि जाहीं।'* (२। १२९। १—५) भरतजीमें ये पाँचों लक्षण घटते हैं। क्रमसे, यथा—*'तेहि पुर बसहिं भरत बिनु रागा। '''''',*

'चलत पयादे खात फल पिता दीन्ह तजि राजु। जात मनावन रघुबरहिं भरत सरिस को आजु॥' (२। २२२) *'करि प्रनाम पूछहिं जेहिं तेहीं', 'कतहुँ निमजन कतहुँ प्रनामा।'* (२। ३१२) *'नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदयँ समाति।'* (२। ३२५) *'चले राम बन अटन पयादे।'* (२। ३११। ३)

(३) अरण्यकाण्डके पूर्वार्धमें ऋषिगण पाँचवें प्रकारके भक्त हैं जिनके नियम ये हैं कि—*'मंत्रराज नित जपहिं तुम्हारा' 'पूजहिं तुम्हहि सहित परिवारा।' 'तरपन होम करहिं बिधि नाना।' 'बिप्र जेवाइ देहिं बहु दाना।' 'तुम्ह तें अधिक गुरहि जिय जानी। सकल भाय सेवहिं सनमानी॥'* और *'सब करि मागहिं एक फलु रामचरन रति होउ।'* (२। १२९) ऋषियोंमें ये पाँचों लक्षण घटते हैं। क्रमसे उदाहरण; यथा— *'राम अनुज समेत बैदेही। निसि दिनु देव जपत हहु जेही॥'* (३। १२) (अगस्त्यजी), एवं *'जे राममंत्र जपंत संत अनंत जन मनरंजनं।'* (३। ३२) (गृध्रराजजी); *'भजे सशक्ति सानुजं॥'* (३। ४) (अत्रिजी) एवं *'दिव्य बसन भूषन पहिराए।'''''* (३। ५) (अनुसूयाजी), *'करिहहिं बिप्र होम मख सेवा।'* (१। १६९) से स्पष्ट है कि ऋषियोंका यह नित्य कर्म है। *'अब प्रभु संग जाउँ गुर पाहीं। तुम्ह कहँ नाथ निहोरा नाहीं॥'* (३। १२। ३) (सुतीक्ष्णजी); *'जोग जग्य जप तप ब्रत कीन्हा। प्रभु कहँ देइ भगति बर लीन्हा॥'* (३। ८) (शरभंगजी), अरण्यके उत्तरार्धमें छठे प्रकार, *'काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा॥' 'जिन्ह के कपट दंभ नहिं माया।'* (२। १३०) के भक्त नारदजी हैं। यथा—*'काम कला कछु मुनिहि न ब्यापी', 'भएउ न नारद मन कछु रोषा', 'मृषा होउ मम श्राप कृपाला'* (इससे मदमानरहित जनाया), *'साचेहु उन्हके मोह न माया', 'राम सकल नामन्ह ते अधिका।'''''* (वरदानमें अपने लाभकी बात न माँगी), *'मुनिगति देखि सुरेस डेराना'* (क्षोभ नहीं हुआ), *'उदासीन धन धाम न जाया', 'तब बिबाह मैं चाहउँ कीन्हा। प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा॥' 'साचेहु उन्हके मोह न माया।'*

(४) किष्किन्धाकाण्डके पूर्वार्धमें सुग्रीवजी सातवें प्रकारके भक्त हैं जिनके लक्षण ये हैं—*'सबके प्रिय'* १ *'सबके हितकारी'* २। *'दुख सुख सरिस'* ३ *प्रसंसा गारी॥' 'कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी॥' तुम्हहि छाँड़ि गति दूसरि नाहीं।'* (२। १३०। ३—५) सुग्रीवजीमें ये सब लक्षण हैं। यथा- *'दीन्हेउ मोहि राज बरिआई', 'बालि परम हित जासु प्रसादा। मिलेहु राम तुम्ह समन बिषादा॥'* (शत्रुका भी हित चाहते हैं); *'सत्रु मित्र सुख दुख जग माहीं। मायाकृत परमारथ नाहीं॥' 'बिषय बस्य सुर नर मुनि स्वामी। मैं पावँर पसु कपि अति कामी॥'* (सत्य-सत्य कह दिया); *'सो सुग्रीव दास तव अहई', 'सुनु हनुमंत संग लै तारा। करि बिनती समुझाउ कुमारा॥'* उत्तरार्धमें आठवें प्रकारके भक्त चौदहों सुभट हैं जो दक्षिण भेजे गये। इस प्रकारके भक्तोंके लक्षण ये हैं—*'जननी सम जानहिं परनारी। धन पराव बिष तें बिष भारी॥' 'जे हरषहिं पर संपति देखी। दुखित होहिं पर बिपति बिसेषी॥' 'जिन्हहिं राम तुम्ह प्रान पिआरे।'* (२। १३०। ६—८) ये सब इन भटोंमें हैं, यथा—*'मंदिर एक रुचिर तहँ बैठि नारि तप पुंज।'* (२४) *'दूरि ते ताहि सबन्हि सिरु नावा।' 'तेहि तब कहा करहु जल पाना। खाहु सुरस सुंदर फल नाना॥' 'धन्य जटायू सम कोउ नाहीं' 'अस कहि लवनसिंधु तट जाई। बैठे कपि सब दर्भ डसाई॥' 'रामकाज लवलीन मन बिसरा तन कर छोह।'*

(५) सुन्दरकाण्डके पूर्वार्धमें नवें प्रकारके अर्थात् *'स्वामि सखा पितु मातु गुर जिन्हके सब तुम्ह तात।'* (२। १३०) भक्त श्रीहनुमान्‌जी हैं। यथा—*'हरष हृदय निज नाथहि चीन्ही।'* (४। २) एवं *'रामदूत मैं मातु जानकी', 'कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा', 'ये सब सखा सुनहु मुनि मेरे', 'सेवक सुत पति मातु भरोसे'* एवं *'सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं,' 'सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत। मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥'* (४। ३) (यह उपदेश है। अतः गुरु हैं और मन्त्रराजकी परम्परासे भी गुरु हैं)। उत्तरार्धमें दसवें प्रकारके (अर्थात् *'अवगुन तजि सबके गुन गहहीं। बिप्र धेनु हित संकट सहहीं॥' 'नीति निपुन जिन्ह कइ जग लीका'* इन लक्षणोंसे युक्त) भक्त श्रीविभीषणजी हैं। यथा—*'जौं कृपाल पूँछेहु मोहि बाता। मति अनुरूप कहौं हित ताता॥'* (५। ३८) *'बिप्ररूप धरि बचन सुनाए। सुनत बिभीषन उठि तहँ आए॥'* (५। ६) *'मैं जानउँ तुम्हारि सब रीती। अति नय निपुन न भाव अनीती॥'* (५। ४६)

(६) लङ्काकाण्ड-पूर्वार्धमें समुद्र ग्यारहवें प्रकारका भक्त है जिसके लक्षण हैं—*'गुन तुम्हार समुझइ निज दोषा। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा॥' 'रामभगत प्रिय लागहिं जेही।'* (२। १३१। ३-४) समुद्रमें इन लक्षणोंके उदाहरण, यथा—*'प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्ही', 'प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई। उतरिहि कटकु न मोरि बड़ाई॥'* (५। ५९) *'जलनिधि रघुपति दूत बिचारी। तैं मैनाक होहि श्रमहारी॥'* (५। १) उत्तरार्धमें बारहवें प्रकार (अर्थात् *'जाति पाँति धनु धरमु बड़ाई। प्रिय परिवार सदन सुखदाई॥' 'सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई।'* (२। १३१। ५-६) के भक्त वानर हैं। यथा—*'मम हित लागि तजे इन्ह प्राना।'* (६। ११३) *'मम हित लागि जन्म इन्ह हारे।'* (७। ८) *'मम हित लागि भवन सुख त्यागे।'* (७। १६) *'हरि मारग चितवहिं मति धीरा।'* (१। १८८)

(७) *'सरगु नरकु अपबर्ग समाना। जहँ तहँ देख धरे धनु बाना॥' 'करम बचन मन राउर चेरा'* ऐसे जो तेरहवें प्रकारके भक्त हैं वे उत्तरकाण्डके पूर्वार्धमें सनकादिजी हैं। यथा—*'समदरसी मुनि बिगत बिभेदा॥' 'आसा बसन ब्यसन यह तिन्हहीं। रघुपति चरित होइ तहँ सुनहीं॥'* (७। ३२) चौदहवें प्रकारके भक्त *'जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेह।'* (२। १३१) उत्तरार्धमें श्रीभुशुण्डिजी हैं। यथा—*'मन तें सकल बासना भागी। केवल रामचरन लय लागी॥'* (७। ११०)

नोट—६ **'सोइ मधुरता सुसीतलताई'** इति। भक्तिको कथामृतकी मधुरता कहा गया है, यथा—*'ब्रह्म पयोनिधि मंदर ग्यान संत सुर आहिं। कथा सुधा मथि काढ़हिं भगति मधुरता जाहिं॥'* (७। १२०) बैजनाथजीका मत है कि प्रेम मधुरता है और भक्ति राम-यशकी सुशीतलता है जिससे जीवकी चाहरूपी प्यास मिट जाती है, त्रिताप दूर होते हैं। मा० प्र० का मत है कि जिसे मङ्गलकारित्व गुण कहा था वही यहाँ 'सुशीतलता' कहा गया क्योंकि प्रेमाभक्तिकी दशामें सुख-ही-सुख है, प्रेमाश्रु हृदयको शीतल कर देते हैं, कामक्रोधादि रोग दूर हो जाते हैं। त्रिपाठीजीका मत है कि यहाँ केवल माधुर्यगुण कहा है। मङ्गलकारित्व गुण अगली अर्धालीमें *'सो जल सुकृत सालि हित होई'* में कहेंगे।

वि० त्रिपाठीजी लिखते हैं कि रामकथामें जो मिठास है वह प्रेमाभक्तिकी है। भक्ति-मिठासके उत्कर्ष-से ही जहाँ-तहाँ रामकथाको अमृत कहा गया है। *'सुसीतलताई'* का भाव यह है कि जीव और संसारमें तप्य-तापक भाव-सम्बन्ध है। विचारशीलके लिये संसार दुःखरूप है, यथा—*'काम क्रोध मद लोभ रत गृहासक्त दुखरूप।'* दुःखद होनेसे संसार तापक है, दुःख पानेसे जीव तप्य है। तापको दुःख और शीतलताको सुख माना गया है। *'सुसीतलताई'* का अर्थ तरावट है। जल यदि अति शीतल हो तो दुःखद हो जाता है, अतः *'सुसीतलताई'* कहा। रामयशमें मिठास और तरावट है। अर्थात् रामयश सुननेमें भी प्रिय लगता है और साथ-ही-साथ दुःखका भी नाशक है। यथा—*'सुनतहि सीता कर दुख भागा' 'मन-करि बिषय अनल बन जरई। होइ सुखी जौं एहि सर परई॥'*

टिप्पणी—प्रथम जलको मधुर कह आये हैं, यथा—*'मधुर मनोहर मंगलकारी।'* अब यहाँ पुनः *'मधुर'* कहते हैं, यह क्यों ? इसका समाधान यह है कि—(१) प्रथम जलको मधुर कहा, अब यह बताते हैं कि जलमें जो 'मधुरता' गुण है वह क्या वस्तु है, वह मधुरता प्रेमभक्तिकी है। अथवा, (२) यों कहिये कि पहले जलका मधुर होना कहा, अब कहते हैं कि जैसे जलमें मीठा घोल दें तो वह अधिक मीठा हो जाता है वैसे ही प्रेमभक्ति मिलनेसे रामयश-जल अधिक मधुर हो गया। (पं० रा० कु०)

नोट—७ 'यहाँतक पृथ्वीपर गिरनेके पहलेके गुण कहे। आगे पृथ्वीपर गिरनेपरके गुण कहते हैं।

सो जल सुकृत-सालि हित होई। रामभगत-जन जीवन सोई॥ ७॥

अर्थ—वह राम-सुयश-जल सुकृतरूपी धानको हितकर है और रामभक्तलोगोंका जीवन भी वही है॥ ७॥

नोट—१ *'सो जल सुकृत-सालि हित होई'* इति। (क) सुकृत-(१। २७) (२) *'सकल सुकृत फल राम सनेहू'* में देखिये। जप-तप-व्रत-पूजा आदि, विप्रसेवा, श्रवण-कीर्तन आदि सब सुकृत हैं। (वै०)

(ख) शालि—दोहा १९ *'बर्षारितु रघुपति भगति तुलसी सालि······'* में देखिये। (ग) भाव कि जैसे वर्षाजलसे शालि बढ़ता और पुष्ट होता है; वैसे ही रामसुयशके गानसे भक्तोंके सुकृत बढ़ते हैं। वही राम-सुयश-जल वा सुकृतकी वृद्धि भक्तोंका जीवन है, क्योंकि जल न होनेसे धान नहीं हो सकता, धानके बिना जीवन नहीं। इसी तरह बिना रामसुयशके सुकृत न बढ़ेंगे और *'सकल सुकृत फल राम सनेहू'* है, इनकी वृद्धिके बिना श्रीरामजीमें प्रेम नहीं होगा।—दोहावलीका दोहा ५६८ भी इसी आशयका है। यथा:—*'बीज राम-गुन-गन नयन जल अंकुर पुलकालि। सुकृती सुतन सुखेत बर बिलसत तुलसी सालि॥'*

वि० त्रि०-१ (क) यहाँ *'रामसुयश बर बारि'* का मङ्गलकारित्व दिखाते हैं। वर्षाके जलसे धान उपजता है, यहाँ धान उपलक्षण है; सभी अन्न वर्षासे ही होते हैं पर धानमें विशेषता यह है कि इसे बड़ी प्यास होती है, इसे पानीकी बड़ी आवश्यकता होती है, पानी सूखा और धान गया। सुकृत, यथा—*'तीर्थाटन साधन समुदाई'* से *'जहँ लगि साधन बेद बखानी।'* (७। १२६। ४—७) तक सब सुकृतके अन्तर्गत हैं। सुकृतको शालिसे उपमा दी, क्योंकि सुकृतको श्रीरामयशजलकी प्यास होती है, जैसे शालिको वर्षाजलकी, दुष्कृत तो रामयशजलसे विमुख ही रहता है, यथा—*'पापवंत कर सहज सुभाऊ। भजन मोर तेहि भाव न काऊ॥'* यहाँ खेत, किसान आदि क्या हैं यह *'तुलसी यह तन खेत है मन बच करम किसान। पाप पुन्य दुइ बीज हैं बवै सो लुनै निदान॥'* में कहे हैं। (ख) *'सुकृत सालि हित होई'* कहकर कर्मकाण्डियोंको—प्रवृत्तिमार्गवालोंको भी श्रीरामसुयशकी अपरिहार्य आवश्यकता जनायी। बिना रामसुयशके जाने अति कष्टसे अनुष्ठित धर्म उत्साहपूर्वक भगवदर्पण नहीं किया जा सकता और *'हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा।'* तथा *'बिद्या बिनु बिबेक उपजाएँ'* *'श्रम फल पढ़े किएँ अरु पाएँ'* सब निष्फल हो जाता है।

नोट-२ (क) *'रामभगत जन'* इति। अर्थात् आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और ज्ञानी ये चारों प्रकारके भक्त। ज्ञानीहीमें प्रेमी भक्त भी शामिल हैं।—विशेष २२ (७) तथा दोहा २२ में देखिये। त्रिपाठीजीका मत है कि इससे साधनभक्तिवाले चारो प्रकारके और सिद्धिभक्ति (प्रेमाभक्ति) के चौदह प्रकारके भक्तोंका ग्रहण है (जो चौदह स्थानोंके व्याजसे वाल्मीकिजीने श्रीरामजीसे कहे हैं)। (ख) *'जीवन सोई'* इति। श्रीराम-नामकी उपमा पूर्णचन्द्रसे दी है और चरितकी चन्द्रिकासे। यथा—*'राका रजनी भगति तव रामनाम सोइ सोम।'* (३। ४२) *'रामचरित राकेस-कर सरिस सुखद सब काहु।'* (१। ३२) इस तरह नाम और चरितका नित्य सम्बन्ध दिखाया। बिना चन्द्रके चन्द्रिकाका अस्तित्व नहीं होता एवं बिना चरितके नाम निस्तेज है और बिना नामके चरितको आधार ही नहीं रहता। सब प्रकारके भक्तोंका आधार नाम है; यथा, *'चहूँ चतुर कहँ नाम अधारा।'* यहाँ प्रमाणित होता है कि बिना चरितके नाम भी अकिञ्चित्कर है। अतः श्रीरामयशको भक्तोंका जीवन कहा। भावार्थ यह कि कर्मकाण्डके अनुयायियोंको तो रामयश 'हित' है पर उपासनाकाण्डवालोंका तो प्राण ही है। इससे रामयशका मङ्गलकारी होना वर्णन किया। (वि० त्रि०)

(ग) बैजनाथजी लिखते हैं कि यहाँ सुकृत शालि हैं और रामभक्तजन कृषिकार हैं। शालिका वर्षा-जलसे परिपूर्ण उपजना, सुकृतोंकी परिपूर्ण वृद्धि होना है। जलवृष्टिसे कृषिकारका जीवन, श्रीरामयश-श्रवणसे रामभक्तोंका जीवन अर्थात् आत्माको आनन्द। (घ) पाँडेजी 'रामभक्त' और 'रामभक्तजन' इस प्रकार अर्थ करके रामभक्तसे श्रीशङ्कर और श्रीयाज्ञवल्क्य आदि एवं रामभक्तजनसे श्रीपार्वती-भरद्वाजजी आदिका भाव होना लिखते हैं। श्रीरामयश ही भक्तोंका जीवन है तभी तो श्रीहनुमान्‌जीने श्रीरघुनाथजीसे यह वर माँगा था कि—हे वीर! जबतक पृथ्वीतलपर आपका चरित्र रहे तबतक मेरे शरीरमें प्राण रहे और आपके दिव्य चरित्ररूपी कथाको अप्सराएँ मुझे बराबर सुनाती रहें, यथा—**'यावद्रामकथा वीर चरिष्यति महीतले। तावच्छरीरे वत्स्यन्तु प्राणा मम न संशयः॥ यच्चैतच्चरितं दिव्यं कथा ते रघुनन्दन। तन्ममाप्सरसो राम श्रावयेयुर्नरर्षभ॥'** (वाल्मी० ७। ४०। १७-१८) अप्सराएँ तथा गन्धर्व उनको बराबर श्रीरामचरित सुनाया ही करते हैं। मं० श्लो० ४ **'सीतारामगुणग्राम······'** में देखिये।

मेधा महि गत सो जल पावन। सकिलि श्रवन मग चलेउ सुहावन॥ ८॥

शब्दार्थ—मेधा=अन्त:करणकी वह शक्ति जिससे जानी, देखी, सुनी या पढ़ी बातें मनमें दिन-रात बनी रहती हैं, भूलती नहीं। बातको स्मरण रखनेकी मानसिक शक्ति। धारणावाली बुद्धि।—'**धीर्धारणावती मेधा।**' (अमर० १। ५। २) पुन: 'मेधा' कानके उस भागको कहते हैं जो श्रवणद्वारपर होता है और जो बातको सुनकर ग्रहण करता है=ग्रहण-बुद्धि जो सदा कानके समीप ही खड़ी रहती है। सकिलि=बटुरकर, एकत्र होकर, सिमिटकर।

अर्थ-(साधुरूपी मेघोंद्वारा बरसाया हुआ) वह पावन और सुहावन (श्रीरामयश) जल 'मेधा' (धारणा-शक्ति वा ग्रहण-बुद्धि) रूपिणी पृथ्वी (प्रान्तभूमि) पर प्राप्त हुआ और सिमिटकर श्रवणरूपी मार्गसे (भीतर हृदय थलकी ओर) चला॥ ८॥

त्रिपाठीजी—धारणा-शक्ति सुमति-भूमिमें अगाध हृदय (शुद्ध मन) की प्रान्तभूमि है। श्रवणरन्ध्रमें प्रवेश करनेके पहले ही जलका मेधामहिगत होना कहा है। कारण कि वेदान्तके मतसे पञ्च ज्ञानेन्द्रियोंमेंसे दो इन्द्रियाँ चक्षु और श्रोत्र ऐसी हैं जो बाहर जाकर विषयको ग्रहण करती हैं। न्यायशास्त्र श्रोत्रेन्द्रियको बाहर जानेवाली नहीं मानता। '**वेदान्तवेद्यं विभुम्**' आदि पदोंके प्रयोगसे श्रीगोस्वामीजीकी अधिक श्रद्धा वेदान्तमें ही ज्ञात होती है, अत: श्रोत्रेन्द्रियका बाहर जाकर विषय ग्रहण करना ही गोस्वामीजीको इष्ट है। इन्द्रियके साथ वृत्ति भी बाहर जाती है और निस्सन्देह यह वृत्ति धारणाशक्तिवाली है, नहीं तो शब्दार्थका ग्रहण न होता। अत: रामयशरूप वारिका साधुमेघ मुखच्युत होनेपर पहले मेधामहिगत होना ही प्राप्त है। (इस तरह जहाँतकका जल मानससरमें बहकर आता है, वहाँतक मानससरकी प्रान्तभूमि हुई। इसी प्रकार जहाँतककी बात सुनायी दे वहाँतक मेधाकी प्रान्तभूमि है।)

नोट—१ मा० पत्रिकाकार कहते हैं कि जहाँतककी बात सुनायी दे, वहाँतक ग्रहण-बुद्धिकी पहुँच है। 'ग्रहण-बुद्धि ही श्रोत्रेन्द्रियद्वारा श्रीरामजीके सुयशरूप अक्षर और अर्थसमूहोंको धारणकर सुमतिको पहुँचाती है।' इस तरह इनके मतानुसार मेधा ग्रहण-बुद्धि है।

मा० प्र० कारका मत है कि बुद्धि आठ प्रकारकी है, *'सुमति भूमि थल।·····'* (१। ३६। ३) देखिये वाल्मी० ४। ५४। २ पर भूषणटीकामें वे आठ प्रकार ये बताये गये हैं-'**ग्रहणं धारणं चैव स्मरणं प्रतिपादनम्। ऊहापोहार्थविज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धीगुणा:॥**' मा० प्र० के मतानुसार सर्वधारणत्वगुण लेकर 'सुमति' को 'भूमि' कहा गया और चतुष्टय अन्त:करणमेंसे बुद्धिको ही हृदय कहा गया। भूमिके साथ ग्रहण-बुद्धिका और थलके साथ धारणबुद्धिका रूपक है। वे *'मेधा महिगत·····'* का अर्थ यह करते हैं कि साधुरूपी मेघोंने रामयश जल बरसा। वह मेधा ग्रहण-बुद्धि (जो पूर्व कह आये हैं अर्थात् सुमतिभूमि) में प्राप्त हुआ तब सिमिटकर श्रवणबुद्धिके मार्ग होकर धारणबुद्धिरूप थल (हृदय) को चला। इस मतके अनुसार सुमतिभूमि और मेधा-महि एक जान पड़ते हैं।

नोट—२ (क) *'सो जल पावन'* इति। महिगत होनेपर भी 'पावन' कहते हैं, यद्यपि वह प्रान्तभूमिकी मिट्टी आदिके योगसे गँदला हो गया है। कारण यह है कि यह दोष आगन्तुक है, जल तो स्वभावसे ही मधुर और शीतल है, जहाँ वह स्थिर हुआ तहाँ वह फिर स्वच्छ और शीतल हो जाता है। जो प्रारम्भमें स्वच्छ था और अन्तमें भी स्वच्छ ही होगा, वह वर्तमानमें आगन्तुक दोष आ जानेपर भी स्वच्छ ही है, अत: *'सो जल पावन'* कहा। जैसे वर्षाजल पृथ्वीके दोषसे गँदला हो जाता है वैसे ही मेधामहिगत श्रीरामसुयश भी श्रोताके मेधाके दोषसे लिप्त हो जाता है। (वि० त्रि०) (ख) *'सकिलि·····'* इति। शब्द होनेका देश विस्तृत है और श्रवण-प्रणालिका बड़ी सङ्कीर्ण है; इससे श्रीरामयशजलका सिमिटकर आना कहा। सरकी प्रान्तभूमि बहुत दूरतक होती है। प्रान्तभूमिपर बरसा हुआ जल जब सिमिटकर चलता है तब एक सङ्कीर्ण रास्ता-सा बन जाता है, उसी मार्गसे होकर वह सब जल बहता है और सरमें जाता है। यथा—*'सिमिटि सिमिटि जल भरहिं तलावा।'* (४। १४) इसी तरह मेधामहिगत श्रीरामयशजल सिमिटकर श्रवणरन्ध्रद्वारा हृदयरूपी थलमें

गया। सुननेके बाद ही बात हृदयमें आती है। हृद्गत होनेका मार्ग श्रवणेन्द्रिय ही है, यथा—*'मृतक जिआवनि गिरा सुहाई। श्रवनरंध्र होइ उर जब आई॥'* (१। १४५। ७) अत: उसे *'श्रवन मग'* कहा। *'सकिलि'* शब्द देकर सूचित किया कि जब बात समझमें आ जाती है तब वही श्रवण-बुद्धिमें आती है, नहीं तो सुना-न-सुना बराबर हो जाता है। (ग)—तालाबमें बिना प्रयत्नके दूरतकका जल आता है, वैसे ही अन्य स्थानोंमें वर्णित रामयशका समाचार परम्परासे रामयशरसिकके यहाँ अनायासेन आया ही करता है। *'सकिलि'* से यह भी जनाया कि सब चरित्र एकाग्र होकर सुना। (वि० त्रि०) (घ) रामसुयशके सुननेमें बड़ा स्वाद है, अत: सुननेमें वह सुहावन है । यथा—*'कहेउँ राम बन गवन सुहावा' 'उमा कहिउँ सब कथा सुहाई।'*

खर्रा—इस स्थानमें बुद्धिके चार स्वरूप कहे हैं—एक जल रोपनेवाली, एक जल-कर्षण करनेवाली, एक जल-धारण करनेवाली और एक जलकी रक्षा करनेवाली।

भरेउ सुमानस सुथल थिराना। सुखद सीत रुचि चारु चिराना॥ ९॥

शब्दार्थ—**थिराना**=स्थिर हो गया अर्थात् मैल-मिट्टी आदि नीचे बैठ गयी, जल साफ थिर हो गया। **सीत** (शीत)=शीतल।=शीतकाल, शरद्‌ऋतु। (पां०) **रुचि**=रुचिकर, स्वादिष्ट।=मधुर (करु०, मा० प्र०)। **चारु**=सुन्दर, निर्मल, स्वच्छ।=पवित्र (मा० प०)। **चिराना**=चिरकालका हुआ, पुराना हुआ।=परिपक्व हुआ।

अर्थ १—और (वह श्रवणमार्गसे चला हुआ श्रीरामयश-जल) सुन्दर मानसमें भरा और सुन्दर थल पाकर (वहाँ) स्थिर हुआ। फिर पुराना होकर सुन्दर, रुचिकारक और शीतल तथा सुखदायी हुआ॥ ९॥

अर्थ २—सुन्दर मानस भर उठा, अच्छे थलमें जल थिराया और सुखद, ठण्डा, सुन्दर, स्वादु और चिराना हुआ अर्थात् पक गया। (वि० त्रि०)

अर्थ ३—उस रामयश-जलसे सुन्दर मानसका सुन्दर थल भर गया और स्थिर हो गया तथा रुचिरूपी शरद्-ऋतु पाकर पुराना होकर सुखदायी हुआ। (पां०)

नोट—१ *'भरेउ सुमानस.....'* इति। (क) 'सुमानस' श्लिष्ट है। वर्षाजल 'सुंदर मानस-सर' में भरा और श्रीरामयशजल कविके 'सुन्दर मन' में भरा। (ख) मानसके भरनेपर उसका 'सुमानस' नाम हुआ। पहले केवल 'मानस' नाम था। यथा—*'जस मानस जेहिं बिधि भयउ।'* इसी तरह जल भर जानेपर 'थल' का नाम 'सुथल' पड़ा। —*'भरेउ सुमानस सुथल.....'*। (पं० रामकुमारजी) पुन:, भाव कि मन दो प्रकारका होता है, शुद्ध और अशुद्ध। यथा—'**मनस्तु द्विविधं प्रोक्तं शुद्धं चाशुद्धमेव च। अशुद्धं कामसंकल्पं शुद्धं कामविवर्जितम्॥**' कामसङ्कल्पवाला मन अशुद्ध है और कामविवर्जित मन शुद्ध है। कामनारहित मन 'सुमानस' है। इसीको अगाध हृदय कह आये हैं। कामसे भरा न होनेसे इसमें गहराई है। अब वह मन रामसुयशसे भर गया। उसमें किसी दूसरी वस्तुके लिये स्थान नहीं। (वि० त्रि०) (ग) *'सुथल'* का भाव कि जल गहरे स्थानमें ही थिराता है। जहाँ लोगोंके आने-जानेका रास्ता रहता है, थल उथला है, वहाँ जल नहीं थिराता, यथा—*'सदा मलीन पंथके जल ज्यों कबहुँ न हृदय थिरान्यो'* (विनय०)। (घ)—यहाँ श्रवण, मनन, निदिध्यासन और समाधि कहे गये। *'सकिलि श्रवन मग चलेउ सुहावन'* में श्रवण, *'भरेउ सुमानस'* से मनन (क्योंकि सुनी हुई बातको मनमें बिठाना ही 'मनन' है) और *'सुथल थिराना'* से निदिध्यासन कहा। मनको थिर करना समाधि है। श्रीरामयशके विषयमें मनको एकाग्र किया, यह संप्रज्ञात-समाधि है। यथा—*'हर हिय रामचरित सब आए। प्रेम पुलक लोचन जल छाए॥' 'श्रीरघुनाथ रूप उर आवा। परमानंद अमित सुख पावा॥'* (करु०, वि० त्रि०)

नोट—२ *'थिराना।.....'* 'चिरान' इति। (क) मा० दी० कार लिखते हैं कि 'चावल दो सालका होनेपर पुराना और तीन सालका पुराना होनेपर 'चिराना' कहा जाता है, वैसे ही वर्षाजल बरसातमें नया, शरद् (कुआर-कार्तिक) में स्थिर होनेपर पुराना और हिम तथा शिशिर-ऋतुमें 'चिराना' हुआ।' (बैजनाथजीके मतसे कुआरमें पुराना और कार्तिकमें 'चिराना' होता है।) (ख) मा० प्र०—कार कहते हैं कि पृथ्वीपर जल पड़नेसे गँदला हो जाता है। शरद्-ऋतुमें जब जलकी मिट्टी बैठ जाती है, गँदलापन दूर हो जाता है, जल थिरता है, तब

ऊपर-ऊपर सुन्दर शीतल निर्मल जल प्राप्त होता है और शरद्-ऋतुके बीतने और हिम-ऋतुके आनेपर जलमें पूर्व-गुण फिर आ जाते हैं। 'शीत, रुचि और चारु' ये जो तीन गुण यहाँ कहे हैं ये ही पूर्वके 'मङ्गलकारी, मधुर और मनोहर' गुण हैं। शीतल जल नीरोग (गुणकारी) होता है इसीसे शीतसे पूर्वका मङ्गलकारित्व गुण कहा। रुचि स्वादको कहते हैं इसीसे 'रुचि' से 'मधुर गुण' का ग्रहण हुआ और 'चारु' का अर्थ है 'दीप्तिमान्, सुन्दर', अतः इससे 'मनोहर गुण' लिया। (ग)—गोस्वामीजी अपनी रामायण-रचनाको 'चिरान' कहते हैं। (श्रीरूपकलाजी) (घ) मा० म० कार लिखते हैं कि *'पढ़्यो गुरूते बीच शर संत बीच मन जान। गौरी शिव हनुमत कृपा तब मैं रची चिरान॥'* अर्थात् गोस्वामीजी जगत्के कल्याणके लिये संवत् १५५४ में प्रकट हुए। पाँच वर्षकी अवस्थामें उन्होंने गुरुजीसे रामचरित श्रवण किया। फिर ४० (चालीस) वर्षकी अवस्थामें सन्तोंसे सुनकर उन्होंने उसे सैंतीस वर्ष मनन किया, तदनन्तर अठहत्तर वर्षकी अवस्था सं० १६३१ में रामचरितमानस प्रकट हुआ। इसी कारण श्रवण-मगसे चलकर थिराना और फिर चिराना कहा। (यह बात 'मूल गुसाईंचरित' से भी सिद्ध होती है। इस मतके अनुसार बालपनेमें जो सुना वह मानसमें पहलेहीसे था। फिर सन्तोंसे युवावस्थामें सुना, यही नया है। सैंतीस वर्ष मनन किया, यह 'थिराना' हुआ। ७८ वर्षकी अवस्थामें वह 'चिराना' अर्थात् परिपक्व हुआ।) (ङ) त्रिपाठीजीका मत है कि गुरुमुखसे जो रामयश बारम्बार सुना था उसीका मनन और निदिध्यासन किया तब उसके गुण प्रकट हुए, विषय अभ्रान्त हो गया, उसमें आनन्द आने लगा, दुःख दूर हो गये। यही 'सुखद' होना है।

प्रश्न— वर्षा, शरद् और हेमन्तमें जो जलका नया, पुराना और चिराना होना कहा है, वह रामसुयशमें क्या है?

उत्तर—सन्तोंके मुखसे सगुण-लीला-सहित रामसुयश-जलकी वर्षा हुई तब वह सुयश सुमति-भूमिपर पड़कर मेधा-बुद्धिसे होकर श्रवणबुद्धिद्वारा हृदयरूपी थलपर जाकर टिका। यह नयापन है। मननद्वारा हृदयमें स्थिर होना पुराना होना है और जैसे मिट्टी आदि बैठ जानेके पश्चात् हेमन्त-ऋतुमें जल पूर्ववत् निर्मल, मधुर और गुणकारी हो जाता है, वैसे ही निदिध्यासनद्वारा श्रीरामसुयशके पूर्व-गुण सगुण-लीला-रूपी स्वच्छता, प्रेम-भक्तिरूपी मधुरता और शीतलता दिखायी देने लगे। यही उसका चिराना है। (म० प्र०)

प्रश्न—वर्षाजल भूमिपर पड़नेपर गँदला हो जाता है। श्रीरामसुयश सुननेपर ग्रहण-बुद्धिमें आया तो यहाँ बुद्धिरूपी भूमिके संयोगसे इसमें क्या गँदलापन आ गया?

उत्तर—१ (क) संसारी जीवोंकी बुद्धि विषयासक्त होती है, त्रिगुणात्मिका मायामें लिप्त रहती है। उसमें राजस-तामस गुण बहुत रहता है जिससे मनमें अनेक संशय, भ्रम और कुतर्क आदि उठते रहते हैं। अतएव उसकी समझमें श्रीरामसुयश शीघ्र क्योंकर आ सकता है? जैसा कहा है—*'किमि समुझौं मैं जीव जड़ कलिमल ग्रसित बिमूढ़।'* (१। ३०) इसको समझानेके लिये प्राकृत दृष्टान्तों, उदाहरणों और उपमाओं आदिका प्रयोग किया गया (जो उसके हृदयमें पूर्वसे थीं)। हृदय-थलमें श्रीरामसुयश इनके सहित पहुँचा। बुद्धिके योगसे सब बात ग्रहण हुई। ऊपरकी सब बातें ही मलिनता व गँदलापन हैं। (मा० प्र०) (ख) 'सन्तोंने जब निर्मल यशकी वर्षा की तब श्रोता कविकी बुद्धिमें पड़नेसे बुद्धिका राजस गुण उसमें मिल गया, इसीसे यह ढाबर हो गया।' (करु०) (अर्थात् जैसे भूमिमें तो रज पूर्वसे ही थी, उसके मिल जानेसे वर्षाजल गँदला हो जाता है, वैसे ही प्राकृत बुद्धिमें जो राजस गुण है वही भूमिकी रज है, बुद्धिकी उत्पत्ति पृथिवी-तत्त्वसे है—**'बुद्धिर्जाता क्षितेरपि'**। यह राजस गुण ही मलिनता है) मनन करनेपर बुद्धिका राजस गुण और सन्तोंकी दी हुई प्राकृत दृष्टान्त आदि क्रमशः हटे। फिर निदिध्यासन (अच्छी तरह अभ्यास) करनेसे रामसुयश केवल निर्मल आनन्दरूप देख पड़ा, अन्तःकरण शान्त हुआ और सबके लिये सुखदाता, शीतल और रुचिकर हो गया। (करु०)

२—बैजनाथजीका मत है कि—'श्रीराम-सुयशरूपजलमें, मेधारूपी भूमिका स्पर्श करते ही विषयसुखवासनारूप रज मिल गया जिससे वह ढाबर हो गया। जब वह सुन्दर मनरूप मानसमें भरा तब सुथलरूपी सुबुद्धि

पाकर वह थिर हो गया अर्थात् बुद्धिके विचारसे कुतर्करूप मल नीचे बैठ गया, निर्मल यश रह गया। यहाँ भक्तिरूपी शरद् पाकर अर्थात् नवधा कुआरमें पुरान हुआ और प्रेमा कार्त्तिकमें चिरान हुआ। फिर राम-विरह आतप पाकर यशरूप जल औटकर सुन्दर हो गया, जीवको स्वच्छ देख पड़ा और मीठा लगा। पुनः सुखद हुआ अर्थात् कामादि रुजको हरनेवाला हुआ।'

मा० प०—जल चिरान अर्थात् पुराना होनेसे परिपक्व होकर सुखद, रुचिवर्द्धक और सुस्वाद हो जाता है। एवं सन्तोंके मुखसे वर्णित रामयशरूप जल मेधारूपी भूमिके स्पर्शसे सांसारिक विषयसुखवासनारूप रजसे जो अन्तःकरण ढाबर हो गया था जब वह जल सुन्दर मनरूप मानसमें भरा तब सुबुद्धि पाकर स्थिर हुआ अर्थात् बुद्धि-विचारद्वारा कुतर्क-कुपन्थरूप मल नीचे बैठ गया और केवल प्रेम-ही-प्रेम रह गया, वह शरदरूप नवधा भक्तिद्वारा परिपक्व होकर काम-क्रोधादिका नाशक हुआ। [यह सब बैजनाथजीका ही लिया हुआ है]

पं० रामकुमारजीके मतानुसार गँदलापन पृथ्वीके योगसे प्राकृत जलमें होता है; पर यहाँ 'सुमति' रूपी भूमि है और 'मेधा' महि है। यहाँ गँदलापन नहीं है। फिर वहाँ प्राकृत मानससर और थल हैं और यहाँ 'सुमानस' और 'सुथल' हैं यहाँ रूपकके सब अङ्ग नहीं लिये जायँगे।

दोहा—सुठि सुंदर संबाद बर बिरचे बुद्धि बिचारि।
तेइ एहिं पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि॥ ३६॥

शब्दार्थ-सुठि (सुष्ठु)=अत्यन्त, बहुत ज्यादा, उत्तम। यथा—*'तुम्ह रीझहु सनेह सुठि थोरें।'* (१। ३४२)

अर्थ—अत्यन्त श्रेष्ठ और सुन्दर संवाद (जो) बुद्धिने विचारकर रचे हैं वे ही इस पवित्र सुन्दर तालाबके चार मनोहर घाट हैं॥ ३६॥

नोट १—*'सुठि सुंदर संबाद बर'* इति। *'सुठि सुन्दर'* और *'बर'* का भाव यह है कि—

१ (क) जब जिसको ही विचारने लगेंगे तब वह ही प्रधान जान पड़ेगा। अथवा, (ख) भरद्वाज-याज्ञवल्क्य-सत्सङ्ग होनेपर भरद्वाजका रामचरित्र मूढ़ बनकर पूछना याज्ञवल्क्य मुनिको बहुत अच्छा लगा और उन्होंने कहा-*'चाहहु सुनै रामगुन गूढ़ा। कीन्हिहु प्रश्न मनहु अति मूढ़ा॥ तात सुनहु सादर मनु लाई। कहहुँ राम कै कथा सुहाई॥'* (१। ४७) इसीलिये इसको सुन्दर और वर कहा। पार्वतीजीका प्रश्न रामतत्त्वकी प्राप्तिके लिये सहज सुन्दर छलविहीन होनेसे शिवजीके मनको भाया। इसी तरह गरुड़जीका मोह जो शिवादिसे न छूटा था वह भुशुण्डि-आश्रमके पास पहुँचते ही छूट गया और भुशुण्डिजीको भी परम उत्साह हुआ, इसलिये ये दोनों संवाद भी श्रेष्ठ हुए। गोस्वामीजीका संवाद दीनतासे पूर्ण है। सज्जन सुख मानकर सुनते हैं, इसलिये यह भी 'सुन्दर वर' है। पुनः, ये चारों घाट विचारद्वारा अनुभवसे रचे गये हैं; इसलिये चारों वर और सुन्दर हैं। *'तस कहिहउँ हिअँ हरिके प्रेरें'* कहा ही है। भगवान् श्रीरामजी एवं श्रीहनुमान्‌जीकी प्रेरणासे बने हैं, अतः सुन्दर हुआ ही चाहें। (मा० त० वि०) अथवा, (ग) इन संवादोंके वक्ता-श्रोताओंकी श्रेष्ठताके सम्बन्धसे उनके संवादोंको भी *'सुठि सुन्दर'* और *'बर'* कहा। अथवा, संवादोंका विषय परम मनोहर श्रीरामचरित होनेसे उनको *'सुठि सुन्दर बर'* कहा। अथवा,

२ (त्रिपाठीके मतानुसार)—(क) इन चारों संवादोंमें चार पृथक्-पृथक् कल्पोंकी कथाएँ हैं। श्रीरामावतार एक कल्पमें एक ही बार होता है। मानसमें चार कल्पोंकी कथाएँ हैं। भुशुण्डीजीने नारदशापवाले अवतार (कल्प) की कथा कही, यथा—*'पुनि नारद कर मोह अपारा।'* शङ्करजीने मनु-शतरूपा-वरदानवाले कल्पकी कथा विस्तारसे कही। याज्ञवल्क्यजीने जलंधर-रावणवाले कल्पकी और गोस्वामीजीने जय-विजय, रावण-कुम्भकर्णवाले कल्पकी कथा कही। यथा—*'महाबीर दिति-सुत संघारे।'* चारों कल्पोंकी कथाएँ एक-सी हैं, अतः एक साथ कही गयीं। अतः संवादोंमें वैकुण्ठनाथ, नारायण तथा ब्रह्मके अवतारोंकी कथाएँ होनेसे उन्हें *'सुठि सुन्दर बर'* कहा। पुनः, (ख) 'दूसरी बात यह है कि रामचरित्रको मणिमाणिक्य कहा है, यथा—*'सूझहिं*

रामचरित मनि मानिक। गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक॥' (१। १) सो श्रीरामकथाकी भी यहाँ चार खानि कही गयी हैं। जिनके ऊपर गुरुकी कृपा होती है वे ही बतला सकते हैं कि यह कथा किस खानिकी है।' उनमेंसे शङ्करजीकी कथा सर्पमणि (शङ्कररूपी सर्प 'गरलकण्ठ' से निकली), याज्ञवल्क्यजीकी कथा माणिक्य और भुशुण्डीजीकी गजमुक्ता है; अत: मणि, माणिक्य, मुक्तावत् स्वभावसे ही *'सुठि सुंदर'* है। इसपर ग्रन्थकारका और भी कहना है कि श्रीशङ्करजी आदि सुकवि हैं और उनकी कविता मणि है। मणि आदिकी भाँति जहाँ उत्पन्न हुईं वहाँ वैसी शोभित नहीं हुईं जैसी कि मेरे विरचित संवादमें पड़कर शोभित हुईं। यथा—*'नृप किरीट तरुनी तनु पाई। लहहिं सकल सोभा अधिकाई॥'* (१। ११। १-३) यहाँ ज्ञान नृप है; यथा—*'सचिव बिराग बिबेक नरेसू'* (२। २३५) कर्म मुकुट है, यथा—*'मुकुट न होहिं भूप गुन चारी॥ साम दाम अरु दंड बिभेदा। नृप उर बसहिं नाथ कह बेदा॥'* (६। ३७) साम, दाम, दण्ड और विभेद—ये चारों कर्म हैं, उसे अपह्नुति-अलङ्कारद्वारा मुकुट कहा। उपासना तरुणी है, यथा—*'भगति सुतिय (कल करन बिभूषन)।'* (१। २०) सो ये तीनों कविताएँ ग्रन्थकर्ताके ज्ञानघाट, कर्मघाट और उपासनाघाटपर आकर क्रमश: अत्यन्त शोभित हुईं। अत: *'सुठि सुंदर बर'* कहा। रह गया तुलसी-सन्त-संवाद, उसे ग्रन्थकर्ता सीपीका मोती कहते हैं, यथा—*'हृदय सिंधु मति सीप समाना। स्वाति सारदा कहहिं सुजाना॥ जौं बरषै बर बारि बिचारू। होहिं कबित मुकुतामनि चारू॥ जुगुति बेधि पुनि पोहिअहिं रामचरित बर ताग। पहिरहिं सज्जन बिमल उर सोभा अति अनुराग॥'* (१। ११) यह संवाद भी सुठि सुन्दर है। इसकी शोभा भी सज्जनका उर पाकर अत्यन्त बढ़ गयी। अत: यह संवाद भी *'सुठि सुन्दर बर'* है। अर्थात् चारों घाट रत्नमय हैं।

३—ग्रन्थके अन्तमें कहा है कि *'यह सुभ संभु उमा संबादा। सुख संपादन समन बिषादा॥ भव भंजन गंजन संदेहा। जन रंजन सज्जन प्रिय एहा॥'* (७। १३०) मुख्य संवाद रामचरितमानसका यही है। इसीसे समाप्तिमें *'संभु उमा संबादा'* पद देकर तब उसका माहात्म्य वा फल कहा है। जो माहात्म्य यहाँ कहा, वह चारों संवादोंका माहात्म्य है; क्योंकि चारों संवाद एक-दूसरेमें गठे और गुँथे हुए हैं और सब मिलकर 'रामचरितमानस' ग्रन्थ रचा गया। इसलिये चारों संवाद सुठि, सुन्दर और वर हुए।

४—सुधाकर द्विवेदीजी कहते हैं कि 'अब ग्रन्थकार चारों घाटोंका नामकरण दिखलाते हैं। कर्म, ज्ञान, उपासना और दैन्य। इनके बनानेवाले कारीगर बड़ोंकी बुद्धि और विचार हैं—*'बिरचे बुद्धि बिचारि।'* इन्हींके द्वारा इन घाटोंकी रचना है। इनकी सामग्री *'सुठि सुंदर संबाद बर'* है, इसके दो अर्थ हैं—(१) अपनी उत्तम बुद्धिसे जो श्रेष्ठ संवाद है। (२) *सुठि*=कर्मकाण्ड। *सुन्दर*=ज्ञानकाण्ड। *संबाद*=उपासनाकाण्ड। *बर*=दैन्यघाट। यह अर्थ ग्रन्थकारहीके लेखसे व्यञ्जित होता है। साफ-साफ ग्रन्थकारने घाटके चार विशेषण लिखे हैं, यदि यह अर्थ अभिप्रेत न होता तो चार विशेषण क्यों लिखते?'

नोट—२ ग्रन्थकारने *'सुठि सुंदर संबाद बर'* जो यहाँ कहा है उसे अन्ततक निबाहा है। भुशुण्डि-गरुड़-संवादके विषयमें शिवजी कहते हैं—*'सो संबाद उदार जेहि बिधि भा आगे कहब।'* (१२०) पुन:, *'गिरिजा संत समागम सम न लाभ कछु आन।'* (१२५) इसमें वक्ता और श्रोता दोनोंको बड़ा आनन्द मिला था। शिव-पार्वती-संवादके विषयमें याज्ञवल्क्यजीका वचन है कि *'यह सुभ संभु उमा संबादा। सुख संपादन समन बिषादा॥ भवभंजन गंजन संदेहा। जन रंजन सज्जन प्रिय एहा॥'* (१३०) श्रीशिवजी प्रश्नोंको सुनकर बहुत सुखी हुए थे। यथा—*'परमानंद अमित सुख पावा।'* (१११) और पार्वतीजीको तो कथा सुनकर परम विश्राम ही हुआ। गोस्वामीजीने याज्ञवल्क्य-भरद्वाज-संवादके विषयमें भी *'सुभग'* पद दिया है, यथा—*कहउँ जुगल मुनिबर्ज कर मिलन सुभग संबाद।'* (१। ४३) और देखिये, दोनों मुनियोंको इस समागमसे कितना आनन्द हुआ, यथा—*'सुनु मुनि आजु समागम तोरें। कहि न जाइ जस सुख मन मोरें॥'* (१। १०५) *'भरद्वाज मुनि अति सुख पावा।'* (१। १०४) अब रहा, तुलसी-सन्त-संवाद। इसको अपने मुखसे कैसे कहें? *'सुनहु सकल सज्जन सुख मानी'*, *'साधु-समाज भनित सनमानू'* से स्पष्ट है और नित्य देखनेमें आ ही रहा है कि आपके इस कथासे सज्जनोंको कैसा सुख मिल रहा है। उपर्युक्त कारणोंसे *'सुठि सुंदर बर'* पद दिया गया।

* 'संवाद बर बिरचे बुद्धि बिचारि' *

१—'*संबाद*' का अर्थ बातचीत है। 'संवाद' शब्दसे श्रोता और वक्ता दोनोंका समीप होना और आपसमें बात करना, शङ्का-समाधान करना पाया जाता है। गोस्वामीजी ग्रन्थमें चार संवाद बुद्धिसे रचे हुए लिखते हैं। गोस्वामीजीका संवाद सज्जनोंसे है। आप रामचरितमानस उनको सुनाते हैं, यथा—'*रामचरितमानस मुनिभावन। बिरचेउ संभु सुहावन पावन॥ कहउँ कथा सोइ सुखद सुहाई। सादर सुनहु सुजन मन लाई॥*.....' (१। ३५) प्रथम भूमिका बाँधकर मानसका स्वरूप और उसके प्रचारका हेतु इत्यादि कहकर आप सज्जनोंसे कहते हैं कि यही कथा श्रीयाज्ञवल्क्य मुनिने श्रीभरद्वाज मुनिसे कही थी। हम आपको उन्हींका पूरा संवाद सुना देते हैं।

कवियों और वक्ताओंकी यह शैली है कि जब वे कोई बात कहते हैं तो प्रथम उसकी भूमिका बाँधते हैं। वैसे ही यहाँ संवादके पहले ग्रन्थकार यह बता देते हैं कि इन दोनों मुनियोंका समागम कब और क्यों हुआ और कथा कहनेका क्या कारण था। '*अब रघुपतिपदपंकरुह हिय धरि पाइ प्रसाद। कहउँ जुगल मुनिबर्ज कर मिलन सुभग संबाद॥*' (१। ४३) यहाँसे लेकर '*करि पूजा मुनि सुजस बखानी। बोले अति पुनीत मृदु बानी॥*' (१। ४५। ६) तक '*मिलन*' कहा। इसके आगे '*नाथ एक संसउ बड़ मोरें। करगत बेद तत्व सब तोरें॥*.....' (१। ४५। ७) से भरद्वाज-याज्ञवल्क्य-संवादका आरम्भ हुआ। ये वाक्य भरद्वाज मुनिके हैं। याज्ञवल्क्य मुनिका उत्तर '*जागबलिक बोले मुसुकाई।*' (१। ४७। २) से शुरू होता है। भरद्वाजजीकी प्रशंसा करके श्रीरामकथाका कुछ महत्त्व कहकर आप बोले कि श्रीपार्वतीजीने भी ऐसा ही सन्देह किया था तब महादेवजीने विस्तारसे उनको समझाया था। हम तुमसे वही संवाद कहे देते हैं, तुम्हारा सन्देह दूर हो जायगा। यथा—'*ऐसेइ संसय कीन्ह भवानी। महादेव तब कहा बखानी॥ कहउँ सो मति अनुहारि अब उमा संभु संबाद।*' (४७) और उस संवादके पूर्व उस संवादका समय और कारण भरद्वाजजीको कह सुनाया। यथा—'*भयउ समय जेहि हेतु जेहि सुनु मुनि मिटिहि बिषाद।*' (४७) *एक बार त्रेताजुग माहीं। संभु गये कुंभज रिषि पाहीं॥*.....' से लेकर '*बैठीं सिव समीप हरषाई। पूरुब जन्म कथा चित आई॥ पति हिय हेतु अधिक अनुमानी। बिहँसि उमा बोली प्रिय बानी॥ कथा जो सकल लोक हितकारी। सोइ पूछन चह सैलकुमारी॥*' (१०७। ६) तक यह प्रसङ्ग है। इसके आगे श्रीपार्वतीमहेश्वर-संवाद है। श्रीपार्वतीजी पूछेंगी और शिवजी कहेंगे। '*बिस्वनाथ मम नाथ पुरारी। त्रिभुवन महिमा बिदित तुम्हारी॥*' (१०७। ७) से यह संवाद शुरू होता है। आपके वचन सुनकर शिवजीने '*परमानंद अमित सुख*' पाया और फिर '*रघुपतिचरित महेस तब हरषित बरनै लीन्ह।*' (१। १११) आपने श्रीरामकथा तथा श्रीरामनाम और श्रीरामरूपका परत्व आदि कहा, जिसमें प्रथम प्रश्नका उत्तर भी आ गया और श्रीपार्वतीजीका संशय भी दूर हुआ। तब उन्होंने यह प्रश्न किया कि '*राम ब्रह्म चिनमय अबिनासी। सर्बरहित सब-उर-पुरबासी॥ नाथ धरेउ नरतनु केहि हेतू*.....' (१। १२०) इसपर शिवजीने उनकी प्रशंसा की और कहा कि हम तुमको रामचरितमानसकथा सुनाते हैं जो भुशुण्डिजीने गरुड़जीसे कही थी। यथा—'*सुनु सुभ कथा भवानि रामचरितमानस बिमल। कहा भुसुंडि बखानि सुना बिहगनायक गरुड़॥ सो संबाद उदार जेहिं बिधि भा आगे कहब। सुनहु राम अवतार चरित परम सुंदर अनघ॥ हरि गुन नाम अपार कथा रूप अगनित अमित। मैं निज मति अनुसार कहउँ उमा सादर सुनहु॥*' (१। १२०) शिवजीने कथा कहना शुरू किया और यह कह दिया कि भुशुण्डि-गरुड़-संवाद जिस तरह हुआ यह पीछे कहेंगे। यह संवाद उत्तरकाण्डमें है—'*ऐसिअ प्रस्न बिहंगपति कीन्हि काग सन जाइ। सो सब सादर कहिहउँ सुनहु उमा मन लाइ॥*' (उ०। ५५) '*मधुर बचन तब बोलेउ कागा॥ नाथ कृतारथ भयउँ मैं तव दरसन खगराज। आयसु देहु सो करउँ अब प्रभु आयहु केहि काज॥*' (६३) *सुनहु तात जेहि कारन आयउँ। सो सब भयउ दरस तव पायउँ॥*.....' (७। ६४। १) से यह संवाद शुरू होता है।

ऊपरके लेखसे यह स्पष्ट हो गया कि तुलसी-सन्त-संवादके अन्तर्गत याज्ञवल्क्य-भरद्वाज-संवाद है, जिसके अन्तर्गत शिव-पार्वतीसंवाद है और इस संवादके अन्तर्गत भुशुण्डि-गरुड़-संवाद है।

२-☞संवादोंका वृत्तान्त कैसे गुसाईंजीको प्राप्त हुआ, यह ३४ (११) में लिखा जा चुका है।

३-अब यह देखना है कि कौन संवाद कहाँ समाप्त किया गया है। सबके पीछे भुशुण्डि-गरुड़-संवाद है। इसलिये जरूरी है कि उसके वक्ता शिवजी उस संवादकी इति लगाकर तब अपना संवाद समाप्त करें। इसी तरह शिव-पार्वती-संवादकी इति लगानेपर उसके वक्ता याज्ञवल्क्यजी अपने संवादको समाप्त करेंगे; जिसके पीछे ग्रन्थके मुख्य वक्ता अपने कथनको समाप्त करेंगे। यही कारण है कि इति विलोमसे लगायी गयी है अर्थात् जो क्रम प्रारम्भका है उसका उलटा समाप्तिमें है।

संवाद		इति कहाँ हुई
श्रीभुशुण्डि-गरुड़-संवाद	१	*'तासु चरन सिरु नाइ करि प्रेम सहित मतिधीर। गयउ गरुड़ बैकुंठ तब हृदय राखि रघुबीर॥'* (७। १२५)
श्रीशिव-पार्वती-संवाद	२	*'मैं कृतकृत्य भइउँ अब तव प्रसाद बिस्वेस। उपजी राम भगति दृढ़ बीते सकल कलेस॥'* (७। १२९)
श्रीयाज्ञवल्क्य-भरद्वाज-संवाद	३	*'यह सुभ संभु उमा संबादा। सुख संपादन समन बिषादा॥ भव भंजन गंजन संदेहा। जन रंजन सज्जन प्रिय एहा॥ राम उपासक जे जग माहीं। एहि सम प्रिय तिन्ह के कछु नाहीं॥'* (७। १३०)
श्रीतुलसी-संत-संवाद	४	*'रघुपति कृपा जथा मति गावा। मैं यह पावन चरित सुहावा॥'* से 'ते संसारपतङ्गघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः' (ग्रन्थके अन्तमें)।

प्रश्न—संवादोंमें *'विलोम इति'* लगानेका क्या भाव है?

उत्तर—*'विलोम इति'* का भाव यह है कि गोस्वामीजी ग्रन्थकार हैं। यदि ग्रन्थकर्त्ता आदि-अन्तमें न रहे तो ग्रन्थको आरम्भ और समाप्त कौन करे? इसीसे आदि-अन्तमें आप ही रहे हैं। प्रारम्भ और इति, चारोंकी पृथक्-पृथक् कही हैं, बीचमें मुनि-संवाद और शिवपार्वती-संवाद मिलाये हैं। (पं० रामकुमारजी)

नोट—३ गोस्वामीजीने अपना संवाद याज्ञवल्क्यजीके संवादमें मिलाया। यथा—*'कहौं जुगल मुनिबर्ज कर मिलन सुभग संबाद।'* (१। ४३) याज्ञवल्क्यजीने अपना संवाद शिवजीके संवादमें मिलाया। यथा—*'कहउँ सो मति अनुहारि अब उमा संभु संबाद।'* (१। ४७) शिवजीने अपना संवाद भुशुण्डिजीके संवादमें मिलाया। यथा—*"सो संबाद उदार जेहि बिधि भा आगे कहब।'* (१। १२०) इसी तरह तालाबके घाट मिलाये जाते हैं

नोट—४-गोस्वामीजीने अन्तमें मनहीको उपदेश देकर ग्रन्थको समाप्त किया है और आदिसे अन्ततक स्थान-स्थानपर मनहीको उपदेश दिया है। इसका कारण केवल उनका कार्पण्य है। कथा सज्जनोंसे कह रहे हैं, सज्जनोंको भला कैसे उपदेश देते? उपदेश तो कुटिल जीवोंको दिया जाता है, सन्तमें कुटिलता कहाँ? इसलिये मनकी ओटमें *'कुटिल जीव निस्तार हित'* उपदेश देते आये। पर आपका संवाद सज्जनोंहीसे है। 'मन' को बारम्बार उपदेश करनेके कारण कुछ महानुभावोंने गोस्वामीजीका संवाद अपने मनहीसे होना माना है और किसी-किसीने आपका संवाद अपने गुरु एवं अपने प्रेमियोंसे माना है।

'बिरचे बुद्धि बिचारि' इति।

१—बैजनाथजी लिखते हैं कि 'मानस-सरमें पाषाण-मणि-चित्रित चार घाट हैं। यहाँ प्रथम संवाद गोस्वामीजीका जो *'भाषा बद्ध करब मैं सोई'* है वह दैन्यतारूप श्वेतपाषाणरचित है। इस संवादमें धाम

मणिवत् चित्रित है क्योंकि यह अयोध्यापुरीमें प्रारम्भ हुआ और उसीके प्रभावसे ग्रन्थका माहात्म्य माना है। यथा—*'सब बिधि पुरी मनोहर जानी। सकल सिद्धिप्रद मंगल खानी॥ बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा। सुनत नसाहिं काम मद दंभा॥'''''*(१। ३५) दूसरा संवाद भरद्वाज-याज्ञवल्क्यका कर्मकाण्डरूप हरित-पाषाण रचित है। इसमें 'लीला' मणिवत् चित्रित है। यथा—*'महामोह महिषेस बिसाला। रामकथा कालिका कराला॥ रामकथा ससि किरन समाना। संत चकोर करहिं जेहि पाना॥'* (१। ४७। ६-७) तीसरा संवाद शिव-पार्वतीजीका ज्ञानरूप स्फटिकपाषाणरचित है। इसमें 'नाम' मणिवत् चित्रित है। यथा—*'कासी मरत जंतु अवलोकी। जासु नाम बल करउँ बिसोकी॥'* (१। ११९। १) चौथा संवाद भुशुण्डि-गरुड़का उपासनारूप लालपाषाण-रचित है। इसमें प्रभुका रूप मणिवत् चित्रित है। यथा—*'परम प्रकास रूप दिन राती। नहिं कछु चहिअ दिआ घृत बाती॥'* (७। १२०)

२-त्रिपाठीजी—पहले ग्रन्थकारने कहा था कि *'मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई। तेहिं मग चलत सुगम मोहि भाई॥'* (१। १३। १०) पर संवादकी रचनामें इन्होंने किसीका अनुकरण नहीं किया। चार-चार कल्पकी कथाओंका एक साथ कथन कहीं भी नहीं पाया जाता। सभीने किसी-न-किसी कल्पविशेषके रामावतारकी कथा कही है, यथा—*'कलप कलप प्रति प्रभु अवतरहीं। चारु चरित नाना बिधि करहीं॥ तब तब कथा मुनीसन्ह गाई।'''''* यहाँपर ग्रन्थकारने अपनी बुद्धिसे काम लिया है, किसीका अनुकरण नहीं किया, इसीलिये कहते हैं कि *'बिरचे बुद्धि बिचारि।'* कर्मकाण्डी, ज्ञानी, उपासक और दीन सर्वसाधनहीन सब प्रकारके अधिकारियोंका काम एक ही रामचरितमानससे चल जाय, इस बातको बुद्धिसे विचारकर ग्रन्थकर्त्ताने चारों संवादोंकी, अपने रामचरितमानसके लिये रचना की।

३-श्रीकान्तशरणजी लिखते हैं—'लोकमें घाटकी जब विशेष रचना होती है तब मणि-माणिक्य आदि भी लगाये जाते हैं। वैसे ही रचना इन घाटोंमें भी है। श्रीरामचरितको भी मणि-माणिक्यके समान कहा है; यथा—*'सूझहिं रामचरित मनि मानिक। गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक॥'* (दो० १) यहाँ चार संवादरूप खानोंके चरित्र चार प्रकारके रत्न हैं। श्रीशिवजी गरलकण्ठ हैं, अतः इनकी कविता सर्पमणि है। याज्ञवल्क्यकी कथा माणिक्य है, क्योंकि यह *'पावन पर्बत बेद पुराना।'* (७। ११९) से निकलती है। यही बात *'करगत बेद तत्त्व सब तोरे।'* (१। ४४) से सूचित की गयी है। भुशुण्डिजीकी कथा गजमुक्ता है, क्योंकि जैसे हाथीके खानेके दाँत और तथा दिखानेके और होते हैं, वैसे ये देखनेमें काक हैं पर बोलते मधुर हैं; यथा—*'मधुर बचन बोलेउ तब कागा।'* (७। ६२) अतः यह कथा मणि-माणिक्य मुक्तारूप होनेसे *'सुठि सुंदर'* है, क्योंकि यह सुकवियोंद्वारा निर्मित है पर इनकी कविताएँ जहाँ उत्पन्न हुई वहाँपर शोभित नहीं हुई, जैसे मेरे संवादमें पड़कर हुईं; यथा—*'मनि मानिक मुकुता छबि जैसी। अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी॥ नृप किरीट तरुनी तनु पाई। लहहिं सकल सोभा अधिकाई॥ तैसेहिं सुकबि कबित बुध कहहीं। उपजहिं अनत अनत छबि लहहीं॥'''''* (दो० १०) (यह पूरा लेख त्रिपाठीजीका है जो उन्होंने *'सुठि सुंदर बर'* पर लिखा है। केवल प्रारम्भमें कुछ शब्द बढ़ाकर उसे अपने तिलकमें दिया और ग्रन्थभरमें उनका नाम कहीं भी नहीं दिया है।)

४—पं० रूपनारायण मिश्रजी कहते हैं कि श्रीपण्डितजीने इस मानस महारूपकको विशेष सुशोभित करनेका प्रयत्न किया है। ढङ्ग बहुत सुन्दर है परन्तु इसमें कतिपय त्रुटियाँ जान पड़ती हैं, उनको दूर करनेसे वह और सुन्दर होगा। टीकाकार, कथावाचक आदिको सदा सावधान रहना चाहिये कि कविके भाव आदिमें विरोध हो ऐसी कोई कल्पना आदि न होने पावे। यहाँ चार संवादोंको खानें कहा है, परन्तु गोस्वामीजीने संवादोंको घाट कहा है। अपि च, चार खानोंकी यहाँ आवश्यकता भी नहीं, क्योंकि सर्पमणि और गजमुक्ता खानोंमें नहीं होतीं। अब यद्यपि पूर्व प्रसङ्गमें रामचरितको मणि-माणिक्य कहा है, तथापि इस प्रसङ्गमें उसको जल कहा है; यथा—*'बरषहिं राम सुजस बर बारी।'* यद्यपि सूक्ष्मविचार करनेसे चरित्र और सुयशमें कुछ भेद हो सकता है, तथापि *'सूझहिं*

रामचरित……।' यहाँपर रामचरितसे रामसुयश ही अभीष्ट है, जिसको इस प्रसङ्गमें जल कहा है। रामचरितशब्दसे सुयश तथा कविता अर्थात् दोहा, चौपाई आदि छन्द, अर्थ, भाव, ध्वनि, अवरेव, रस आदि अङ्गोंका ग्रहण होता है। परन्तु प्रायः इन सबोंका रूपक आगे अलग-अलग बताया है। अतः रामचरितशब्दसे यहाँ क्या लिया जाय कि जिसे रत्न समझा जाय, यह सन्देह रह जाता है। 'हाथीके दाँत खानेके और तथा दिखानेके और होते हैं' यह कथन प्रायः कपटके दृष्टान्तमें कहा जाता है। इसके बदले यों कहना ठीक होगा कि जैसे हाथी रंगरूपसे बेडौल दीखता है परन्तु अन्दर मुक्ता धारण करता है, वैसे……। तथा उपर्युक्त उद्धरणमें 'कविता' शब्द आया है और उसपर कुछ विशेष भाव भी कहा गया; परन्तु यहाँ 'कविता' शब्दसे क्या अभीष्ट है यह सन्देह हो जाता है; क्योंकि यहाँकी सब कविताएँ श्रीगोस्वामीजीकी बनायी हुई हैं अन्य वक्ताओंकी नहीं। मेरी तुच्छ बुद्धिमें इस विषयमें ऐसा आता है कि श्रीगोस्वामीजी, श्रीयाज्ञवल्क्यजी, श्रीशिवजी और श्रीभुशुण्डिजीके संवादोंमें क्रमशः दैन्य, कर्म, ज्ञान और उपासनाकी प्रधानता महानुभावोंने मानी है। जैसे रत्नोंसे घाटकी शोभा होती है वैसे ही दैन्य आदिसे उन संवादोंकी शोभा है। अतः इन्हीं दैन्यादि चारोंको रत्न मानना ठीक होगा। यद्यपि आगे ज्ञानको मराल, धर्म (कर्म) को जलचर और भक्तिनिरूपणको द्रुम कहा है तथापि वहाँ यह समाधान हो सकता है कि इन महात्माओंके निजी खास वचनोंमें जो ये विषय प्रतिपादित हैं उनको रत्न माना जाय और जो दूसरोंके भाषणमें आये हैं उनको मराल आदि कहा जाय। इस प्रकार *'बिरचे बुद्धि बिचारि'* के 'वि' उपसर्गको लक्षित करके जो भाव पण्डितजीने कहे हैं वे प्रायः सब लग जाते हैं।

यह जो उन्होंने लिखा है कि 'चार-चार कल्पोंकी कथाएँ एक साथ कहीं नहीं पायी जातीं। इसीसे *'बिरचे बुद्धि बिचारि'* लिखा है अर्थात् अपनी ही बुद्धिसे काम लिया है'—यह कहाँतक ठीक होगा यह विचारणीय है। चार कल्पोंकी कथाएँ तो शिवजीने कही हैं, इसमें गोस्वामीजीने कोई रद्दोबदल (फेर-फार) नहीं किया है। यदि इसको उनकी बुद्धिका विलास माना जायगा तब तो इतिहासकी सत्यता ही न रह जायगी। हाँ, संवादको जो घाटरूपकी कल्पना दी गयी वह कविकी है।

टिप्पणी—१ *'तेइ एहि पावन सुभग सर*……' इति। ऊपर (१। ३६। ८) में जलको पावन और सुहावन कहा है, इसीसे यहाँ तालाबको भी पावन और सुभग कहा। कहनेका तात्पर्य यह है कि पृथ्वीके योगसे जल अपावन और मलिन हो जाता है सो बात इसमें नहीं हुई, क्योंकि शिवजीकी दी हुई सुमति है। अथवा, (ख)—संवाद अत्यन्त सुन्दर है इससे घाटको मनोहर कहा, रामयशसे पूर्ण है इससे सरको सुभग कहा—('मनोहर'का अर्थ यह भी है कि चारों ही श्रोताओंका मन हर लेते हैं, जिस घाटमें उतरे उसीमें रामयश मिलता है। अर्थात् सब घाट रामयशमय हैं।)

त्रिपाठीजी—(क) मलके दूर करनेवाली वस्तुएँ *'पावन'* कहलाती हैं और मनको आकर्षण करनेवाली *'सुंदर'* कहलाती हैं। मन स्वभावसे ही विषयकी ओर आकृष्ट होता है। अतः पावन और सुन्दर दोनों गुणोंका एकत्र होना दुर्लभ है परन्तु यह सर पावन भी है और सुन्दर भी। पावन इसलिये है कि वेदान्तवेद्य पुरुषका इसमें वर्णन किया गया है। यथा—*'जेहि महुँ आदि मध्य अवसाना। प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना॥'* और सुन्दर इसलिये है कि विषयी जीवोंके चित्तको भी आकर्षित करता है। यथा—*'बिषइन्ह कहँ पुनि हरिगुन ग्रामा। स्रवन सुखद अरु मन अभिरामा॥'* (७। ५३) (ख) संवादपक्षमें *'सुठि सुंदर'* और घाटके पक्षमें *'मनोहर'* कहा है, इससे सिद्ध होता है कि *'सुठि सुंदर'* ही *'मनोहर'* है। यद्यपि सुन्दरता और मनोहरतामें वस्तुभेद नहीं है, तथापि सुन्दरताके उत्कर्षमें मनोहरता आती है। यथा—*'तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुंदर॥'*

टिप्पणी—२ (क) 'मानससरमें चार घाट हैं, यहाँ चार संवाद हैं, समता केवल इतनेहीमें है। यदि कोई कहे कि 'घाटसे जलकी प्राप्ति होती है तो शिव-मानसमें घाट कहाँ है, और अन्य ग्रन्थोंमें घाट कहाँ है, रामयश सबको प्राप्त होता है', तो उसपर कहते हैं कि गोस्वामीजी रूपक कह रहे हैं, चार

संवाद कहकर उन्होंने अपने ग्रन्थमें चार घाट बनाये और सब रामयश आपहीने कहा है। यदि घाट न बनाते, केवल रामयश कहते तो क्या लोगोंको न प्राप्त होता?' अवश्य प्राप्त होता। पुनः, (ख) घाटके द्वारा जलकी प्राप्ति होती है, यहाँ वक्तालोग रामयश कह गये हैं, इसीसे सब लोगोंको प्राप्त हुआ।

'घाट मनोहर चारि' इति।

गोस्वामीजीने संवादको घाट कहा, घाटको मनोहर कहा और यह लिखते हैं कि बुद्धिने इन्हें विचारपूर्वक रचा है। रचा ही नहीं बल्कि ***'बिरचे'*** अर्थात् विशेष रीतिसे रचा है। मानस-परिचारिकाकार लिखते हैं कि 'इन शब्दोंसे प्रतीत होता है कि इन घाटोंमें कुछ-न-कुछ विचित्रता, विलक्षणता अवश्य है। ये चारों एक समान न होंगे। तभी तो चार घाट कहे हैं, नहीं तो घाटका कौन नियम?' इसी विचारसे प्रायः सभी प्रसिद्ध टीकाकारोंने अपनी-अपनी बुद्धि घाटके रूपकको पूरा निबाह देनेमें लगायी है।

१—पं० रामकुमारजी लिखते हैं कि 'सरमें चार घाट होते हैं। इसलिये उसकी जोड़में यहाँ चार संवाद कहे। केवल इतनेहीमें समता है।' (मानसपरिचारिका, मानसतत्त्वविवरण और बैजनाथजीके तिलक इत्यादिमें घाटोंका रूपक पूरा-पूरा दिखाया गया है।)

२—प्रायः तालाबमें चार घाट हुआ करते हैं। ग्रन्थकारने पम्पासरके वर्णनमें भी यह बात कही है। यथा—***'पुनि प्रभु गए सरोबर तीरा। पंपानाम सुभग गंभीरा॥ संत हृदय जस निर्मल बारी। बाँधे घाट मनोहर चारी॥'*** (आ० ३९) चारों घाट एक-से नहीं होते। घाटोंमेंसे एक घाट सपाट होता है, जिसमें लँगड़े-लूले और पशु सुगमतासे जलतक पहुँचकर स्नान-पान कर सकते हैं। लौकिक तालाबोंमें प्रायः इस घाटको **'गऊघाट'** कहते हैं। यह घाट आजकलके तालाबोंमें प्रायः 'पूर्व' दिशामें होता है। दूसरा घाट 'पञ्चायतीघाट' कहलाता है, जिसमें सर्वसाधारण लोग बेरोक-टोक स्नान-पान करते हैं। यह प्रायः 'दक्षिण' दिशामें होता है। तीसरा घाट 'राजघाट' कहलाता है, जिसमें केवल उत्तम वर्णके अथवा बड़े लोग स्नान-पान करते हैं। यह घाट प्रायः 'पश्चिम' दिशामें होता है । चौथा घाट 'पनघट एवं स्त्रीघाट' कहलाता है। यहाँ पुरुषोंको जानेका अधिकार नहीं, क्योंकि यहाँ सती साध्वी स्त्रियाँ पीनेको जल भरती हैं तथा स्नान करती हैं। अच्छे सरमें यह घाट झँझरीदार होता है कि बाहरसे भी कोई देख न सके। यथा—***'पनिघट परम मनोहर नाना। तहाँ न पुरुष करहिं अस्नाना॥'*** (७। २८) यह घाट प्रायः 'उत्तर' दिशामें होता है।

३—अब यह प्रश्न होता है कि 'ग्रन्थकारने जो चार संवाद चार घाट कहे हैं तो कौन संवाद कौन घाट है और क्यों?' या यों कहिये कि 'इन घाटोंके कारीगरोंके नाम और काम क्या-क्या हैं?' और इसका उत्तर यह दिया जाता है कि—

(क) तुलसी-सन्त-संवाद **'गोघाट'** के समान है। कारण यह है कि यह संवाद दीनतासे परिपूर्ण है। गोस्वामीजीने आदिके ३५ दोहोंमें विशेषकर और ग्रन्थमें स्थान-स्थानपर दीनता दर्शायी है। यथा—***'सूझ न एकउ अंग उपाऊ। मन मति रंक मनोरथ राऊ॥'*** ***'लघु मति मोरि चरित अवगाहा।'*** (१। ८) इत्यादि। अपनेको लूला-लँगड़ा वा छोटी चींटी-सम कहा है—***'अति अपार जे सरित बर जौं नृप सेतु कराहिं। चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु बिनु श्रम पारहि जाहिं॥'*** (१। १३) ☞जो सकल साधनरूपी अङ्गसे हीन हैं वे इस घाटमें आकर राम-सुयश-जलको प्राप्त करके भव पार होंगे। यह घाट अति सरल है, इसमें सबका निर्वाह है। (मा० प्र०)

☞दीनतासे परिपूर्ण होनेके कारण इस संवादका 'दैन्यघाट' नाम रखा गया है। गोस्वामीजीका मत दोहावलीके ***'तुलसी त्रिपथ बिहाइ गो राम दुआरे दीन।'*** इस दोहेमें स्पष्ट है। वे कर्म, ज्ञान, उपासना तीनों मार्गोंको छोड़ एकमात्र दैन्यभावको ग्रहण किये हुए हैं। पाँडेजी इसे 'प्रपत्ति' घाट कहते हैं। त्रिपाठीजी दैन्यप्रधान कहनेका कारण यह लिखते हैं कि इनसे कोई पूछता नहीं है (प्रश्न नहीं करता है), पर ***'करन***

पुनीत हेतु निज बानी' वे स्वयं अति उत्सुक हैं, कविसमाजमें वरदान माँगते हैं कि *'साधुसमाज भनिति सनमानू'* हो। जानते हैं कि मुझसे कहते न बनेगा, पर अपनी रुचिसे लाचार हैं। अतः कहते हैं—*'मति अति नीचि ऊँचि रुचि आछी।'* (१। ८। ६, ९) *'निज बुधि बल भरोस मोहि नाहीं। तातें बिनय करौं सब पाहीं॥'* (१। ८। ४)

(ख) याज्ञवल्क्य-भरद्वाज-संवाद 'पञ्चायतीघाट' के समान है। इसे 'कर्मकाण्डघाट' भी कहते हैं। कारण कि इस संवादमें कर्मकाण्डकी प्रधानता है।

श्रीजानकीदासजी लिखते हैं कि 'कर्मकाण्डका यह स्वरूप है कि प्रथम गौरी, गणेश, महेशका मङ्गल करें, याज्ञवल्क्यजीने यही किया है। देखिये, याज्ञवल्क्यजीने प्रथम कहा है कि *'तात सुनहु सादर मन लाई। कहहुँ राम कै कथा सुहाई॥'* (४७) परन्तु *'रामकथा'* न कहकर वे प्रथम शिव, शक्ति और गणेश आदिका चरित और महत्त्व कहने लगे। ऐसा करनेमें याज्ञवल्क्यजीका अभिप्राय यह है कि शैव, शाक्त, गाणपत्य इत्यादिको भी इस मानसमें स्नान कराना चाहिये। वे लोग अपने-अपने इष्टका महत्त्व इसमें सुनकर इस ग्रन्थको पढ़ेंगे।' तीनोंके महत्त्वका लक्ष्य; यथा—*'संकर जगतबंद्य जगदीसा। सुर नर मुनि सब नावत सीसा॥'* (१। ५०) *'सब सुर बिष्नु बिरंचि समेता। गए जहाँ सिव कृपानिकेता॥ पृथक पृथक तिन्ह कीन्हि प्रसंसा। भए प्रसन्न चंद्र अवतंसा॥'* (१। ८८) इत्यादि शिवमहत्त्वके वाक्य हैं। *'मयना सत्य सुनहु मम बानी। जगदंबा तव सुता भवानी॥ अजा अनादि सक्ति अबिनासिनि। सदा संभु अरधंग निवासिनि॥ जग संभव पालन लय कारिनि। निज इच्छा लीला बपु धारिनि॥'* (१। ९८)—इत्यादि शक्तिमहत्त्वके सूचक वाक्य हैं। और, *'मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संभु भवानि। कोउ सुनि संसय करै जनि सुर अनादि जिय जानि॥'* (१। १००) इत्यादि गणेश-महत्त्वके लक्ष्य हैं। इस प्रकार याज्ञवल्क्यजीने कर्मपूर्वक तीनोंका महत्त्व कहकर तब श्रीरामकथा कही जिसमें अन्य देवोंके उपासक भी अपने-अपने इष्टकी उपासनासहित श्रीरामचरितमानस सरमें स्नान करें।

त्रिपाठीजी लिखते हैं कि प्रश्नकर्ता भरद्वाजजीका कर्मविषयक ही प्रश्न हुआ। *'एक राम अवधेस कुमारा। तिन्ह कर चरित बिदित संसारा॥ नारि बिरह दुख लहेउ अपारा। भयउ रोष रन रावन मारा॥'*—ये दोनों कर्म मानों प्रश्नकर्ताको पसन्द नहीं आये। कर्मविषयक प्रश्न करनेसे ही याज्ञवल्क्यजीने *'मनहु अति मूढ़ा'* कहा है; फिर भी शील-गुणकी परीक्षा करके तब रामचरित्र कहा है।

इसके प्रवर्तक श्रीयाज्ञवल्क्यजी और श्रीभरद्वाजजी हैं। वक्ताके वचनोंमें प्रायः कर्महीका प्रतिपादन पाया जाता है। यथा—*'भरद्वाज सुनु जाहि जब, होत बिधाता बाम। धूरि मेरु सम जनक जम ताहि ब्याल सम दाम॥'* (१। १७५) *'यह इतिहास पुनीत अति उमहि कही बृषकेतु। भरद्वाज सुनु अपर पुनि रामजनम कर हेतु॥'* (१। १५२) *'सो मैं तुम्ह सन कहउँ सबु सुनु मुनीस मन लाइ। रामकथा कलिमल हरनि मंगल करनि सुहाइ॥'* (१। १४१) इत्यादि।

इनके प्रसङ्गोंका उपक्रम और उपसंहार कर्महीपर जहाँ-तहाँ मिलता है। उनमेंसे कहीं-कहीं प्रसङ्गसे श्रीरामपरत्व भी कहा गया है। मकर-स्नान, गणपति, शिव और शक्तिकी पूजा एवं महत्त्व वर्णनके पीछे मुख्य देवका आराधन है। ☞कर्मपूर्वक संवाद होनेके कारण इस संवादका 'कर्मकाण्डघाट' नाम रखा गया।

(ग) उमा-शम्भु-संवाद राजघाटतुल्य है। यह संवाद ज्ञानमय है। यथा—*'झूठेउ सत्य जाहिं बिनु जानें। जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचानें॥ जेहि जाने जग जाइ हेराई। जागे जथा सपन भ्रम जाई॥'* (१। ११२) *'जासु सत्यता तें जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया॥'* (१। ११७) *'जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा।'* (१। ११६। ४) से *'राम सो परमातमा भवानी।'* (११९। ५) तक, इत्यादि ज्ञानप्रतिपादक वचनोंसे शिवजीका कथन प्रारम्भ हुआ है। पं० रामकुमारजीका मत है कि ज्ञानका यही स्वरूप है कि परमेश्वर सत्य है, जगत्का प्रपञ्च असत्य है। यथा—*'सत हरिभजन जगत सब सपना'*, *'रजत सीप महँ भास जिमि०'* इत्यादि।

श्रीपार्वतीजीको ज्ञानविषयक सन्देह हुआ। उनके प्रथम प्रश्न ब्रह्मविषयक ही हैं। यथा-'*प्रथम सो कारन कहहु बिचारी। निर्गुन ब्रह्म सगुन बपु धारी॥*' (१। ११०। ४) '*प्रभु जे मुनि परमारथबादी। कहहिं राम कहुँ ब्रह्म अनादी॥*"" *राम सो अवधनृपति सुत सोई। की अज अगुन अलखगति कोई॥ जो नृप तनय त ब्रह्म किमि नारि बिरह मति भोरि।*' (१०८) सती-तनमें भी उनको यही शङ्का हुई थी कि '*ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद। सो कि देह धरि होइ नृप जाहि न जानत बेद॥*' (५०) इसीसे शङ्करजीने प्रथम ब्रह्मनिरूपण ही किया।

प्रथम ही वचनमें ज्ञान भरा है। ज्ञान अगम्य है। यह संवाद दुर्गम है। इसके अधिकारी ज्ञानी हैं। यह सबके समझमें जल्द नहीं आ सकता। इसीसे इसका 'ज्ञानकाण्डघाट' नाम रखा गया है और इसके प्रवर्तक श्रीशिव-पार्वतीजी हैं।

(घ) भुशुण्डि-गरुड़-संवाद 'पनघट' घाटके तुल्य है। जैसे सती स्त्री अपने पतिको छोड़ दूसरे पतिपर दृष्टि नहीं डालती, वैसे ही ये अनन्य उपासक हैं, अपने प्रभु और उनके चरित्रको छोड़ दूसरेकी बात भी नहीं करते। किसीका मङ्गलतक नहीं करते। यथा—'*प्रथमहिं अति अनुराग भवानी। रामचरितसर कहेसि बखानी॥*' (७। ६४। ७) इस संवादमें उपासनाहीकी प्रधानता है, यथा—'*सेवक सेब्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि।*' (उ० ११९) से '*जासु नाम भव भेषज हरन घोर त्रय सूल। सो कृपालु मोहिं तोहि पर सदा रहउ अनुकूल॥*' (७। १२४) तक। इसीसे इसका 'उपासनाकाण्डघाट' नाम रखा गया है। त्रिपाठीजी लिखते हैं कि 'इस संवादमें ऐश्वर्यविषयक सन्देह है। यथा—'*सो अवतार सुनेउँ जग माहीं। देखेउँ सो प्रभाव कछु नाहीं॥ भवबंधन ते छूटहिं नर जपि जाकर नाम। खर्ब निसाचर बाँधेउ नागपास सोइ राम॥*' (७। ५८) भगवान्‌में समग्र ऐश्वर्य है। अनन्य उपासक अपने भगवान् (इष्ट) के ऐश्वर्यका अपकर्ष सह नहीं सकता, अत: (गरुड़को) '*उपजा हृदय प्रचंड बिषादा।*' (७। ५८) गरुड़के कहनेपर कि '*मोहि भयउ अति मोह प्रभुबंधन रन महुँ निरखि। चिदानंद संदोह राम बिकल कारन कवन॥*' (७। ६८) '*देखि चरित अति नर अनुहारी। भयउ हृदय मम संसय भारी॥*' श्रीभुशुण्डिजी ऐश्वर्यका वर्णन करते हैं। गरुड़-ऐसे उपासकको पाकर अत्यन्त गोप्य रहस्य कहते हैं। जैसा शिवजीके '*पाइ उमा अति गोप्यमपि सज्जन करहिं प्रकास।*' (७। ६९) से स्पष्ट है। इस संवादका सम्बन्ध रहस्य-विभागसे है, इसीसे यहाँ श्रीरामभक्ति एवं परत्वके अतिरिक्त अन्य चर्चा ही नहीं। यहाँ भक्तिरहित व्यक्तिका प्रवेश नहीं है। यहाँ तो '*भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा*' उन्हींका प्रवेश है।

त्रिपाठीजी लिखते हैं कि 'इसका सम्बन्ध रहस्यविभागसे है, इसीलिये यहाँके श्रोता-वक्ता पक्षी रखे गये हैं। यह घाट अन्य सभी घाटोंसे पृथक् है, क्योंकि किसी घाटसे इसमें रास्ता नहीं है। यथा—'*यह रहस्य रघुनाथ कर बेगि न जानै कोइ। जो जानै रघुपति कृपा सपनेहु मोह न होइ॥*' (७। ११६) अत: इसकी कथा चौरासी प्रसङ्गोंमें अलग उत्तरकाण्डमें कही गयी।'

नोट—५ (क) श्रीसुधाकर द्विवेदीजीका मत उपर्युक्त दिये हुए घाटों, संवादों और उनके प्रवर्तकोंके नामोंसे कुछ भिन्न ही है । हम उनके शब्दोंको ही यहाँ उद्धृत किये देते हैं—'यदि चारों ओरसे ऐसा पक्का घाट बना हो जो टूटे नहीं तो बाहरके मैले सरोवरमें नहीं आ सकते। इसलिये याज्ञवल्क्य-भरद्वाज, भुशुण्डि-गरुड़, महादेव-पार्वती और नारद-वाल्मीकिके संवादरूप चारों घाट ऐसे मजबूत बने हैं जो कभी टूटनेवाले नहीं । ये घाट आप सुन्दर और साफ हीरेके हैं, सर्वदा मानसको निर्मल रखनेवाले हैं। महादेव-पार्वती-संवाद राजघाट, भुशुण्डि-गरुड़-संवाद गोघाट जहाँ पशु-पक्षी सब सुखसे स्नान-पान करें। नारद-वाल्मीकि-संवाद द्विजघाट जहाँ ऊँची-जातिके लोग स्नान कर सकते हैं और याज्ञवल्क्य-भरद्वाज-संवाद रामघाट है जहाँ सुखसे सर्वजातिके लोग स्नान करते हैं।'

(ख) मा० त० वि० कारका मत है कि— 'बुद्धिके विचारद्वारा अनुभवात्मक रचा गया है, यथा—'*समुझि परी कछु मति अनुसारा।*' (१। ३१) '*जस कछु बुधि बिबेक बल मोरें। तस कहिहौं हिय हरिके प्रेरें॥*'

(१। ३१) अतएव यह 'बुद्धि-विचार' नाम-घाट है। अथवा जिन-जिन रामायण आदिमें रामचरित इन चारके संवादानुसार है, उन-उनका ही भाव लेकर विरचा है; अतः उन्हीं-उन्हींके सम्बन्धसे घाटोंकी संज्ञा है। इस प्रकार महारामायण-अध्यात्मादिके तत्त्व-सम्बन्धसे शङ्करघाट, भुशुण्डि रामायणादिके तत्त्व-सम्बन्धसे भुशुण्डिघाट, श्रीरामतापिनी उत्तरार्ध इत्यादिके तत्त्व-सम्बन्धसे याज्ञवल्क्य वा भरद्वाजघाट और सत्योपाख्यान, अग्निवेश, वाल्मीकीय, बहुधा उपनिषद्-संहिता, स्मृति-श्रुति सम्मति, सद्गुरु उपदेश, स्वानुभव-सम्मति तथा यत्र-तत्र उल्थाके अनुसार जिसमें रचना की गयी वह 'बुद्धिविचार' घाट है। अथवा, कर्म, उपासना, ज्ञान, दैन्य। अथवा, **बहिः अन्तर धन इति प्रज्ञ त्रिधा,** चौथा मिश्रित ये चतुर्धा बुद्धिविचार नाम मनोहर चार घाट हैं।'

नोट—६ 'पूर्व आदि दिशाओंका विचार किस प्रकार किया गया? तुलसी-संत-घाटको पूर्वदिशाका घाट क्यों कहा गया? इत्यादि शंकाएँ भी यहाँ उठ सकती हैं। इनका समाधान इस प्रकार हो सकता है कि—दिशाओंकी गिनती पूर्वसे प्रारम्भ होती है और यहाँ सर्व प्रथम संवाद श्रीतुलसीदासजी ग्रन्थकर्त्ता और संतका है। दूसरे, लोकमें लँगड़े-लूलों, पशु-पक्षियों आदिके जल पीनेके लिये सपाट-घाट होता है। वह भी प्रायः पूर्वदिशामें ही होता है, अतः तुलसी-संत-संवाद पूर्वघाट हुआ। परिक्रमा पुण्यस्थानों, सर, मन्दिर आदिकी दक्षिणावर्त होती है। दक्षिणावर्त प्रदक्षिणा करते चलें तो पूर्वके पश्चात् क्रमशः दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाएँ पड़ेंगी। श्रीरामचरितमानसमें क्रमशः तुलसी-सन्त-संवादके अन्तर्गत याज्ञवल्क्य-भरद्वाज, शिव-पार्वती और भुशुण्डि-गरुड़-संवाद आते हैं। अतएव इनको क्रमसे दक्षिण, पश्चिम और उत्तरके घाट कहे गये। ये ही क्रमसे दैन्य वा प्रपत्ति (गौघाट), कर्म (सर्वसाधारण स्मार्त आदि सब मतवालोंका 'पञ्चायती' घाट), ज्ञान (राजघाट) और उपासना वा पनघट घाट हैं। जैसे तुलसी-सन्तके अन्तर्गत शेष तीनों संवाद वैसे ही प्रपत्तिके अन्तर्गत कर्म, ज्ञान और उपासना सब हैं।'

त्रिपाठीजी—एक ही तालाबमें चारों घाट हैं। अतः चारों एक होनेपर भी दिशाभेद (दृष्टिकोणभेद) से पृथक् हैं। दैन्य घाटके सम्मुख पड़ता है; कर्म, उपासना बायें-दाहिने पड़ते हैं; इस भाँति ज्ञानघाट-कर्मघाटके सम्मुख उपासनाघाट पड़ता है, दैन्य और ज्ञान दाहिने-बायें हैं। भाव यह कि **'ज्ञानमार्गं तु नामतः'** अर्थात् नामसे ज्ञानमार्गकी प्राप्ति होती है। दैन्यमार्गवालेको केवल नाम-बल हैं, अतः ज्ञान उसके सम्मुख पड़ता है। कर्म और उपासनाका समुच्चय विहित है;—**'विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदो भयं सह। अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥'** कर्म और उपासनाका जो एक साथ सेवन करता है वह कर्मसे मृत्युको तरकर उपासनासे अमृतका भोग करता है। अतः कर्मघाटको उपासनाके सम्मुख कहा। दायें-बायेंवाले। (पार्श्ववर्ती) का भी प्रभाव पड़ता ही है, पर वे साक्षात् सम्मुख नहीं हैं।

नोट—७ 'जो रामचरितमानस शिवजीने ही रचा वही तो सबने कहा, उसमें कर्म, ज्ञान, उपासना आदि कहाँसे आये? वहाँ तो जो एकका सिद्धान्त है वही सबका चाहिये?' यदि कोई यह शङ्का करे तो उसका उत्तर यह है कि सबका सिद्धान्त एक रामचरितमानस ही है। चारों वक्ता श्रीरामजीके उपासक हैं परन्तु श्रीरामचरितमानसमें चार प्रकारके घाट बँधे हैं। कारण यह है कि श्रीशिवजीने जो मानस रचा है वह अत्यन्त दुर्गम है, जैसा ग्रन्थके अन्तमें कहा गया है—**'यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमम्'** वह समस्त जीवोंको सुगमतासे प्राप्त हो जाय, यह सोचकर कविने भगवान् शङ्करकी दी हुई सुन्दर बुद्धिसे विचारकर इसमें चार प्रकारके संवादरूपी चार घाट रचे, जो ज्ञानी हैं वे ज्ञानघाट होकर श्रीरामयश-जल प्राप्त करें, उपासक उपासनाघाट होकर, कर्मकाण्डी, स्मार्त पञ्चायती, भक्त कर्मघाट होकर और सर्व-कर्म-धर्मसे पङ्गु सर्वसाधनहीन दैन्य वा प्रपत्तिघाट होकर उसी श्रीरामयशजलको प्राप्त करें। श्रीरामचरितमानस एक ही है, पर उसके आश्रित कर्म, ज्ञान, उपासना, दीनता सभी हैं।—ये सब भाव ***'बिरचे बुद्धि बिचारि'*** इन शब्दोंकी ही व्याख्या है। (मा० प्र०)

वि० त्रिपाठीजी लिखते हैं कि श्रीरामचरितमानसके चारों वक्ताओंके मानसोंमें भी कुछ सूक्ष्म भेद हुए हैं, फिर भी गोस्वामीजीने अपने मानसमें चार घाट बनाकर प्रत्येक घाटके लिये वक्ता और श्रोता नियत कर दिये हैं जिसमें रास्ता अलग-अलग होनेपर भी प्राप्य स्थान एक ही रहे। रूपकमें जहाँ कहीं भेद पड़ता है, उसे किसी-न-किसी जगह व्यक्त कर दिया है। यथा—*'जे पदसरोज मनोज अरि उर सर सदैव बिराजहीं।'* इससे पता चलता है कि श्रीशिवजीके 'मानससर' में सरकारके चरण ही कमल हैं। पर गोस्वामीजी स्पष्ट कहते हैं कि *'छंद सोरठा सुंदर दोहा। सोइ बहु रंग कमल कुल सोहा॥'* (३७। ५) मेरे मानसमें तो छन्द-सोरठा-दोहारूपी कमल हैं, मैं सरकारके चरणोंको मानसका कमल न बना सका। *'जो भुसुंडि मन मानस हंसा।'* (१। १४६) *'हर हृदि मानस बाल मरालं।'* (३। ११) इन पदोंसे पता चलता है कि भुशुण्डिजी तथा शङ्करजीके मानससरमें स्वयं सरकार हंसरूप थे, पर गोसाईंजी कहते हैं कि इतना सौभाग्य मेरा नहीं, मेरे मानसमें तो *'ग्यान बिराग बिचार मराला'* हैं। रूपकके शेष अङ्ग सबके मानसोंमें समान मालूम होते हैं।

☞ संवादका रूपक घाटसे बाँधा गया। यह रूपक आगे दिये हुए नकशोंसे सुगमतासे समझमें आ जायगा।

चार मुख्य संवाद	श्रीतुलसी-सन्त	श्रीयाज्ञवल्क्य-भरद्वाज	श्रीशिव-पार्वती	श्रीभुशुण्डि-गरुड़
१- संवादोंकी भूमिका	'वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्द-सामपि' मं० श्लोक १ से	*'भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा।......'* (१। ४४। १) से *'करि पूजा मुनि सुजस बखानी। बोले अति पुनीत मृदु बानी॥'* (४५। ६) तक।	*'कहउँ सो मति अनुहारि अब उमा संभु-संबाद॥'* (४७) से *'कथा जो सकल लोक हितकारी। सोइ पूछन चह सैल कुमारी॥'* (१०७। ६) तक।	*'ऐसिअ प्रश्न बिहंगपति कीन्हि काग सन जाइ। सो सब सादर कहिहउँ सुनहु उमा मन लाइ॥'* (उ०। ५५) से *'मधुर बचन तब बोलेउ कागा।'* (उ०६३।८) तक)।
२- संवाद कहाँसे प्रारम्भ हुआ	*'बरनउँ रघुबर बिसद जसु सुनि कलि कलुष नसाइ* (२९) *जागबलिक जो कथा सुहाई। भरद्वाज मुनिबरहि सुनाई॥ कहिहउँ सोइ संबाद बखानी। सुनहु सकल सज्जन सुख मानी॥'* (बा० २९।३०) से *'कहउँ*	*'नाथ एक संसउ बड़ मोरे। करगत बेद तत्त्व सब तोरे॥'* (४५। ७) से	*'बिस्वनाथ मम नाथ पुरारी। त्रिभुवन महिमा बिदित तुम्हारी॥'* (१०७। ७) से	*'आयसु देहु सो करउँ अब प्रभु आयहु केहि काज॥'* (उ० ६३) से

चार मुख्य संवाद	श्रीतुलसी-सन्त	श्रीयाज्ञवल्क्य-भरद्वाज	श्रीशिव-पार्वती	श्रीभुशुण्डि-गरुड़
	जुगल मुनिबर्ज कर मिलन सुभग संबाद।' (४३) तक। वस्तुतः सारा राम-चरितमानस तुलसी-संत-संवाद है। सब संवाद तुलसी-दासजीने सुनाये हैं।			
३-संवादोंकी इति कहाँ लगायी गयो*	*'रघुपति कृपाँ जथा मति गावा। मैं यह पावन चरित सुहावा॥'* (७। १३०। ४) (पं० रा० कु०)	*'यह सुभ संभु उमा संबादा। सुख संपादन समन बिषादा॥'* (उ० १३०) (पं० रा० कु०)	*'रामकथा गिरिजा मैं बरनी। कलि-मल समन मनो-मल हरनी॥'* (उ० १२९) (पं० रा० कु०) *'मैं कृतकृत्य भइउँ अब...... ।'* (मा० सं०)	*'तासु चरन सिर नाइ करि प्रेम सहित मति धीर। गयउ गरुड़ बैकुंठ तब हृदय राखि रघुबीर॥'* (उ० १२५)
४-घाटके रूपक-में कौन संवाद कौन घाट है	दैन्यघाट (यह संवाद दीनता और कार्पण्यसे परिपूर्ण है)	कर्मकाण्डघाट (इसमें कर्मकाण्डकी विशेषता है। मकर-स्नान, गौरी-गणेश-महेशकी पूजा, महत्त्व आदिका वर्णन करके तब मुख्य देवकी कथा है)।	ज्ञानघाट यह ज्ञान और अनुभवपूर्ण संवाद है। ज्ञानमय वचनोंसे ही इसका प्रारम्भ हुआ है।	उपासनाघाट इसमें अनन्य उपासनाकी रीति आद्योपान्त भरी है।
५-लौकिक सरके किस घाटके तुल्य ये घाट हैं।	गऊघाट *(जहँ जल पिअहिं बाजि गज ठाटा)*	पंचायतीघाट *(मज्जहिं तहाँ बरन चारिउ नर)*	राजघाट *(राजघाट सब बिधि सुंदर बर)*	पनघट *(तहाँ न पुरुष करहिं असनाना)*

* मयङ्ककार प्रथम तीन संवादोंकी इति यों लगाते हैं। तुलसी-सन्त—'वर्णानामर्थसंघानाम्' से 'बोले अति पुनीत मृदु बानी' तक याज्ञवल्क्य-भरद्वाज—'बिस्वनाथ मम नाथ पुरारी। त्रिभुवन महिमा बिदित तुम्हारी॥' तक शिव-पार्वती—'बहु बिधि उमहिं प्रसंसि पुनि बोले कृपानिधान' तक।

* श्रीसीताराम *

॥ श्रीरामचरितमानस-सर ॥

उत्तर-दिशा

'नाथ कृतारथ भयउँ मैं तव दरसन खगराज।
आयसु देहु सो करउँ अब प्रभु आयहु केहि काज॥
सदा कृतारथरूप तुम्ह कह मृदु बचन खगेस।
जेहि कै अस्तुति सादर निज मुख कीन्ह महेस॥' इत्यादि।

पश्चिम-दिशा

'बिस्वनाथ मम नाथ पुरारी। त्रिभुवन महिमा बिदित तुम्हारी॥' इत्यादि। दोहा (१०७।७) से।

पूर्व-दिशा

'कहउँ कथा सोइ सुखद सुहाई। सादर सुनहु सुजन मन लाई॥' *(१।३५) इत्यादि।

'नाथ एक संसउ बड़ मोरे। करगत बेदतत्त्व सब तोरे॥' (४५ । ७) इत्यादिसे।

दक्षिण-दिशा
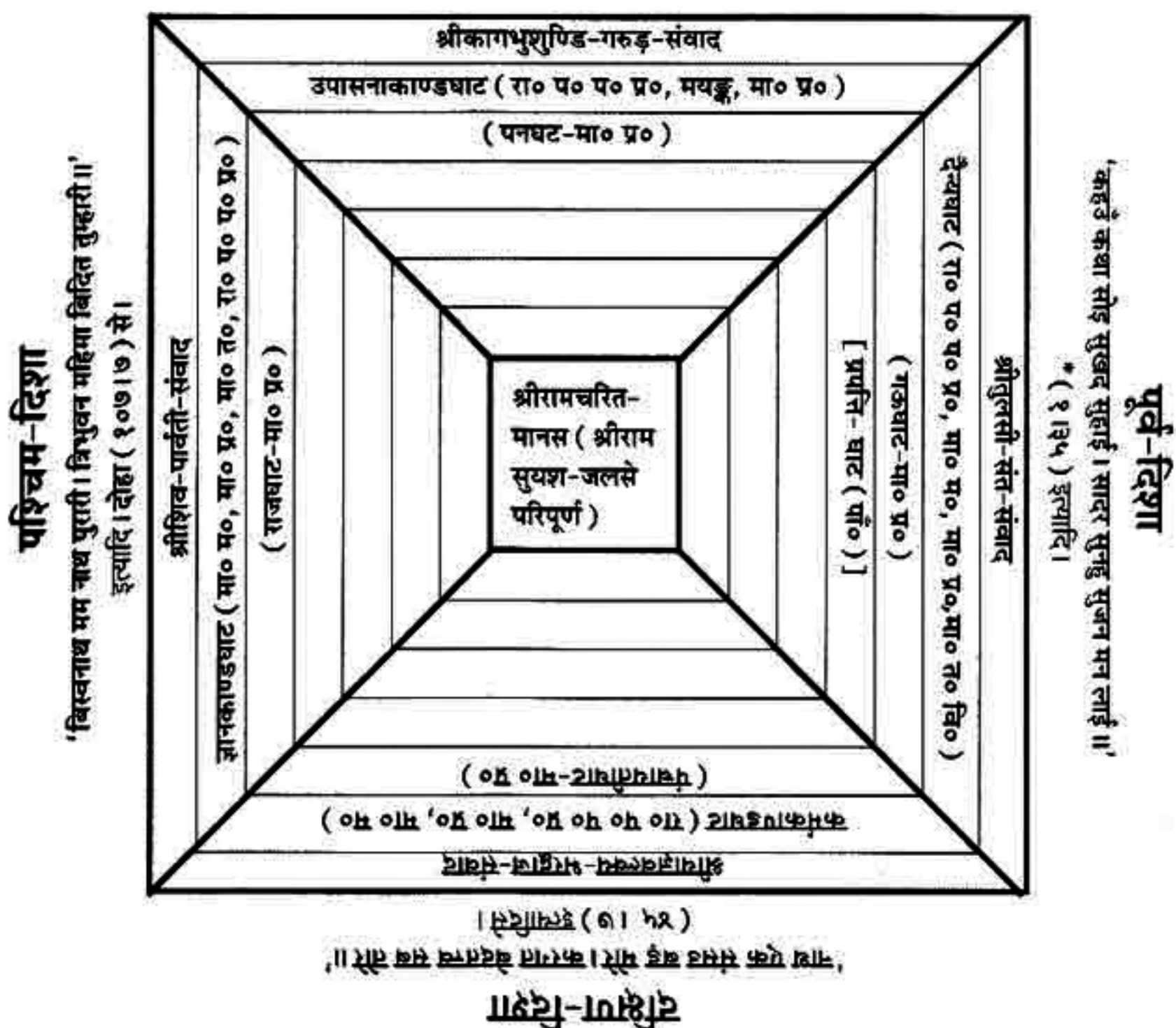
* मयङ्ककारके मतानुसार यह संवाद 'वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि' से प्रारम्भ हुआ है और 'करि पूजा मुनि सुजस बखानी। बोले अति पुनीत मृदु बानी॥' पर समाप्त हुआ। संवाद और घाटक्रम अधिक मतके अनुसार यहाँ सरमें दिखाया गया है। भिन्न-भिन्न मतोंका उल्लेख पूर्व पृष्ठोंमें किया जा चुका है।

सप्त प्रबंध सुभग सोपाना। ग्यान नयन निरखत मन माना॥ १॥

शब्दार्थ—प्रबंध—यह शब्द 'प्रबन्धकल्पना' से लिया गया है जिसका अर्थ है—वाक्यविस्तारकी रचना, काण्ड। **सोपान**=सीढ़ी। **निरखत**=देखते ही। **मन माना**=मन रमता है, प्रसन्न होता है; मान लेता है अर्थात् उसको प्रतीति हो जाती है। यथा—*'कौसिक कहेउ मोर मन माना', 'मन माना कछु तुम्हहिं निहारी।'*

अर्थ—सात सुन्दरकाण्ड ही इस मानसकी सुन्दर (सात) सीढ़ियाँ हैं। ज्ञानरूपी नेत्रसे देखते ही मन प्रसन्न होता है॥ १॥

नोट—१ (क) घाट बँधनेपर भी सीढ़ीके बिना जलका मिलना अति कठिन जानकर ग्रन्थकार स्वयं ही सीढ़ीका निर्माण करते हैं। घाटमें सीढ़ियाँ होती हैं। ऊपर चार संवादोंको चार घाट कहा है। अब बताते हैं कि वहाँ मानस-सरमें सीढ़ियाँ हैं, यहाँ रामचरितमानस-सरमें सप्त प्रबन्ध सात काण्ड ही सात सीढ़ियाँ हैं। ['यह शङ्का न करनी चाहिये कि लोगोंने पीछेसे वाल्मीकीय आदिके आधारपर सातों प्रबन्धोंके बाल, अयोध्या आदि नाम रख दिये, क्योंकि बिना इनके माने काम नहीं चलता। ग्रन्थभरमें कहीं किष्किन्धाका नाम नहीं आया है। यदि चौथे प्रबन्धका नाम किष्किन्धा न मानिये तो *'मंत्रिन्ह पुर देखा बिनु साईं'* अथवा *'अर्धराति पुर द्वार पुकारा'* इन अर्धालियोंके *'पुर'* का पता ही न चलेगा कि वह कौन-सा पुर था, जिसका हाल कह रहे हैं'। (वि० त्रि०) परन्तु उत्तरकाण्डमें उन्हींका मत इसके विरुद्ध है—(मा० सं०)।] आगे कहेंगे कि इन सातों सीढ़ियोंपर रामसुयश-जल परिपूर्ण भरा है, इन्हीं सीढ़ियोंपरसे होकर कविता-सरजू बहेगी। (ख) अब यह प्रश्न हो सकता है कि 'जब सातों सीढ़ियोंपर जल भरा है तो सब सीढ़ियाँ दिखायी कैसे देती हैं?' उसीका समाधान दूसरे चरणमें करते हैं कि *'ग्यान नयन निरखत मन माना'* अर्थात् साधारण नेत्रोंसे ये नहीं दिखायी दे सकतीं, इनके देखनेके लिये ज्ञान-नयन चाहिये। उनसे देखनेसे प्रतीति होगी कि हम यथार्थ ही कह रहे हैं।

श्रीकाष्ठजिह्वास्वामीजीका एक पद ज्ञान-नयनपर है—*'कई तरहकी ते अँखियाँ नर चितवत जिन आँखिन से। ई अँखियाँ तो इतर जननकी काम एक ताकन से॥ वेद अँखियन ते ब्राह्मण देखैं भूप चार-वाकन से। रसिया रस अनुभवसे देखे पशु पक्षी नाकन से॥ नारी गतिसे बैद बिलोकहिं जोतिषि ग्रह आँकन से। ध्यानकलासे जोगी देखे चतुर चाल डाकन से॥ बड़े अमीर अमीरी किसमत परख लेत साकन ते। देव अंश अंतरगत परखहिं बदन नयन झाँकन ते। कई तरहकी ते अँखियाँ०।'*

टिप्पणी—१ 'सातों सीढ़ियोंमें जल होना कैसे कहा? ऊपरकी सीढ़ी तो जल-रहित होगी और यदि ऊपरकी सीढ़ीमें जल नहीं है तो ऊपरवाला सोपान (काण्ड) भी रामयश-जलसे रहित होना चाहिये। पुनः यदि सातों जलमें डूबी हैं तो नीचेकी सीढ़ीका जल मिलना दुर्लभ है क्योंकि जल अगाध है?'—इस शङ्काका समाधान यह है कि 'यहाँ रूपक है, साक्षात् सीढ़ियाँ नहीं हैं और न साक्षात् जल ही है। रामयश सातों काण्डोंमें भरा है और लोगोंको प्राप्त भी होता है; इतने ही देशमें उपमा है। सात जो प्रबन्ध हैं सोई सुन्दर सोपानका प्रबन्ध अर्थात् प्रकर्ष करके बाँधना है, इसीसे *'प्रबन्ध'* पद यहाँ दिया है।'—[समाधान यों भी हो सकता है कि—यहाँ इन्हीं शङ्काओंके निराकरणके लिये कविने प्रथम ही *'बिरचे बुद्धि बिचारि'* कहा और यहाँ *'ग्यान नयन निरखत मन माना'* कहा है। भाव यह है कि यहाँ प्रथम सीढ़ीसे लेकर अन्ततक सभी सीढ़ियोंमें जल भरा है; परन्तु जिनको ज्ञान-नयन नहीं हैं उनको तो अन्तिम सीढ़ीपर भी उनका अभाव ही देख पड़ेगा और ज्ञानदृष्टिसे देखनेवालेको तो प्रथम सीढ़ीपर भी अगाध जल ही मिलेगा।]

टिप्पणी—२ (क) *'सुभग'* कहकर सूचित किया है कि सब सोपान रामयशसे परिपूर्ण हैं। (ख) मानसके भरनेपर उसका *'सुमानस'* और *'थल'* का *'सुथल'* नाम पड़ा; यथा—*'भरेउ सुमानस सुथल थिराना।'* इसी तरह जब ग्रन्थकारके मनमें वेद-पुराणकी सब बातें आ गयीं, तब घाट-सीढ़ी इत्यादिकी रचनाका

विचार हुआ। बालकाण्डसे उत्तरकाण्डतक क्रमसे सीढ़ियाँ कहीं। इन सबोंमें रामयश भरा है और इनको उ० १२९ में *'रघुपति भगति केर पंथाना'* कहा है; इन्हीं कारणोंसे सोपानको *'सुभग'* कहा। घाटको *'मनोहर'* कह ही आये, तब उसकी सीढ़ियाँ क्यों न सुन्दर हों? (ग) *'मन माना'* कहनेका भाव यह है कि मनका स्वभाव यह है कि प्रत्यक्ष देखनेहीसे मानता है। उसपर कहते हैं कि यहाँ यह बात नहीं है,यह बाहरके नेत्रोंसे नहीं देख पड़ता, ज्ञाननेत्रसे देख पड़ता है और ज्ञाननेत्रसे देखनेपर मन प्रसन्न हो जाता है।

नोट—२ पुराने खर्रेमें लिखा है कि सुभगसे जनाया कि 'वह घाट मणियोंसे रचा गया है, वैसे ही यहाँके घाट *'रामचरित चिंतामनि चारू'* मय है। शृङ्गारादि नवों रसोंमें प्रवेश किये हुए जो रामचरितमानस है वही अनेक रङ्गोंकी मणियाँ हैं।' परन्तु यहाँ रामचरितको मणि और नवों रसोंको अनेक रङ्ग माननेसे पूर्वापरविरोध होता है; क्योंकि इस रूपकमें रामयशको जल और रसोंको जलचर कहा गया है (दोहा ३६ में पं० रूपनारायणजीकी टिप्पणी देखिये)। सम्भवत: इसी कारणसे पं० रामकुमारजीने साफ खर्रोंमें इस भावको निकाल दिया।

सू० प्र० मिश्र—१(क) **सुभग**=सुन्दर=अपूर्व। भाव यह है कि सातों काण्डोंकी कथा श्रुति, स्मृति, महाभारत, पुराण आदिकोंसे अपूर्व है। इसकी अपूर्वता यह है कि ज्ञानकी परम अवधिके पहुँचे बिना भी रामचरित्रका सुननेवाला जन परमपदका भागी हो जाता है। '**भजन्नपक्वोऽथ पतेत्ततो यदि।**' सीढ़ीको सुन्दर माननेका भाव यह है कि और सीढ़ियोंके समान न इनमें काई लगती है, न ये पुरानी होकर बिगड़ जाती हैं और न इनपरसे चलनेवालेको कोई भय रह जाता है। सातों काण्डोंकी कथाको सीढ़ी माननेका भाव यह है कि सीढ़ीद्वारा लँगड़ा, लूला, अन्धा, कमजोर सभी अनायास चढ़ सकते हैं और बड़े-बड़े कठिन रास्तोंको पार कर सकते हैं, चढ़नेकी सारी कठिनता जाती रहती है और अगम राह सुगम हो जाती है। अब यह स्पष्ट हो गया कि रामचरित्रके अधिकारी सभी हैं और हो सकते हैं; इस राहमें किसी विशेष पाण्डित्य आदिकी कोई किसीकी भी आवश्यकता नहीं है। यह राजमार्ग है। सभी इसके द्वारा मुक्तिके अधिकारी हो सकते हैं। इसीलिये ग्रन्थकारने आगे *'ग्यान नयन निरखत मन माना'* कहा अर्थात् ये बातें बिना ज्ञानके समझमें नहीं आवेंगी। (ख) *'मन माना'* शब्दमें यह ध्वनि है कि फिर किसी बातकी कुछ भी कमी रह ही नहीं जाती और अवश्य मनुष्य परमपदका अधिकारी हो जाता है। *'मन माना'* के और भी अर्थ ये हैं—एक 'जो बातें मनमें माने उनको देख सकता है।' दूसरे, अवश्य मन मान जाय अर्थात् सुखी हो जाय।' दूसरा भाव यह है कि समुद्र सात हैं, जिनमेंसे अन्तिम मधुर जलका है, बिना मधुर जलके तृप्ति नहीं होती। वैसे ही श्रीरामजीका साम्राज्य बिना देखे आनन्द नहीं प्राप्त होता।

त्रिपाठीजी—श्रीरामचरितके साथ-साथ प्रत्येक काण्डमें दो-दो प्रकारके भक्तोंकी कथाएँ हैं। इस भाँति सातों काण्डोंमें वाल्मीकिजीकी कही हुई चौदह प्रकारकी भक्तियोंका निरूपण है—यह पूर्व कहा जा चुका है। इनमेंसे किसी प्रकारका आश्रयण करनेसे परम कल्याण है, फिर भी ये परस्पर असम्बद्ध नहीं हैं, किसीका आश्रयण करनेसे अन्यमें विचरणकी शक्ति आप-से-आप हो जाती है। अत: ये प्रबन्ध पृथक्-पृथक् होते हुए भी परस्पर सम्बद्ध हैं; क्योंकि सभी भक्तिके प्रतिपादक हैं, यथा—*'एहि महँ रुचिर सप्त सोपाना। रघुपति भगति केर पंथाना॥'* (७। १२९) और मुक्ति भक्तिको छोड़कर कहीं रह नहीं सकती; यथा—*'राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआईं॥'* (७। ११९)

नोट—३ *'रघुपति भगति केर पंथाना'* से सूचित होता है कि ये सातों सोपान श्रीरामजीकी उत्तरोत्तर भक्तिके मार्ग हैं। प्रत्येक काण्डकी जो फलश्रुति वा माहात्म्य कहा गया है उससे यह बात स्पष्ट हो जाती है।

प्रथम सोपान—*'उपबीत ब्याह उछाह मंगल सुनि जे सादर गावहीं। बैदेहि राम प्रसाद ते जन सर्बदा सुखु पावहीं॥ सिय रघुबीर बिबाहु जे सप्रेम गावहिं सुनहिं। तिन्ह कहुँ सदा उछाहु मंगलायतन राम जसु॥'*

द्वितीय सोपान—'*कलिमल समन दमन मन राम सुजस सुखमूल। सादर सुनहिं जे तिन्ह पर राम रहहिं अनुकूल॥*' (३। ६)

तृतीय सोपान—'*राम भगति दृढ़ पावहिं बिनु बिराग जप जोग॥*'

चतुर्थ सोपान—'*भव भेषज रघुनाथ जसु सुनहिं जे नर अरु नारि। तिन्ह कर सकल मनोरथ सिद्ध करहिं त्रिसिरारि॥*'

पञ्चम सोपान—'*सुख भवन संसय समन दवन बिषाद रघुपति गुन गना।...... सकल सुमंगल दायक रघुनायक गुन गान। सादर सुनहिं ते तरहिं भव सिंधु बिना जलजान॥*'

षष्ठ सोपान—'*यह रावनारि चरित्र पावन राम पद रतिप्रद सदा। कामादिहर बिज्ञानकर सुर सिद्ध मुनि गावहिं मुदा॥*'

'*समर बिजय रघुबीर के चरित जे सुनहिं सुजान। बिजय बिबेक बिभूति नित तिन्हहि देहिं भगवान॥*'

सप्तम सोपान—'*रघुबंस भूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं। कलि मल मनोमल धोइ बिनु श्रम राम धाम सिधावहीं॥*'

संवत् १६६१वाले बालकाण्डकी '**इति**' इस प्रकार है—'**श्रीरामचरितमानसे (स) कलकलिकलुष विध्वंसने प्रथमः सोपानः समाप्तः।**' राजापुरके अयोध्याकाण्डमें '*इति*' नहीं है। श्रीपंजाबीजी, रामायणपरिचर्याकार, श्रीबैजनाथजी, बाबा हरिदासजी, श्रीभागवतदासजी, वीरकविजी आदिने सोपानोंके नाम भी '*इति*' में दिये हैं। इन नामोंमें भेद है। इससे सन्देह होता है कि गोस्वामीजीने नाम दिये हों। सम्भव है कि पीछे फलश्रुतिके अनुकूल '*इति*' में महानुभावोंने नाम भी रख दिये हों। उदाहरणार्थ कुछ पुस्तकोंमें दी हुई इतियाँ लिखी जाती हैं—

	प्रथमसोपान	द्वितीयसोपान	तृतीयसोपान	चतुर्थसोपान	पञ्चम०	षष्ठम०	सप्तम०
भा० दा० छ० रा० बा० दा०	सुखसम्पादनो नाम प्रथमः सोपानः	×	विमलवैराग्य सम्पादनो नाम तृतीयःसोपानः	विशुद्धसंतोष सम्पादनो नाम......	ज्ञानसम्पा- दनो नाम ”	विमल विज्ञान सम्पादनो......	अविरल हरिभक्ति सम्पादनो०
रा० प०	विमलसंतोष सम्पादनो......	×	” ”	”		”	”
पं०	अविरलभक्ति सम्पादनो......		” ”	ज्ञानवैराग्य सम्पादनो......	विमल विज्ञान......	विमल विज्ञान......	अविरल हरिभक्ति......
वीरकवि	विमलसंतोष सम्पादनो......	विमलविज्ञान वैराग्य......	” ”	विशुद्धसंतोष सम्पादनो०	ज्ञान सम्पादनो......	विशुद्ध संतोष सम्पादनो०	अविरल हरिभक्ति सम्पादनो''

श्रीबैजनाथजीमें प्रथम छः काण्डोंकी इति एक ही है '**विमलवैराग्यसम्पादनो**' सातवेंमें इति नहीं दी है। विचार करनेसे श्रीभागवतदासजीके नाम विशेष उपयुक्त जान पड़ते हैं। रा० प० मेंकी इतियाँ (केवल प्रथम सोपानको छोड़कर) सब वही हैं, जो भा० दा० में हैं। विमल सन्तोष चतुर्थमें आया है, इसलिये प्रथम सोपानमें भी वही नहीं होना चाहिये। दूसरे प्रथम सोपानमें 'सर्वदा सुख'की प्राप्ति कही है, अतः उसका नाम 'सुख सम्पादन' ठीक है। दूसरे सोपानमें इति नहीं है, उसकी इति अरण्यकाण्ड दोहा ६ में है; तथापि काण्डके अन्तमें भरतचरितश्रवणका माहात्म्य कहा गया है। उसके अनुसार उस सोपानको 'प्रेम एवं भवरसविरति' नाम दे सकते हैं। सुखभोगके पश्चात् उससे वैराग्य और श्रीरामजीमें प्रेम होता है जिससे श्रीरामजीकी अनुकूलता होती है।

पं० रामकुमारजी (किष्किन्धाकाण्डके अन्तमें) लिखते हैं कि प्रत्येक काण्डके अन्तमें जो फलश्रुति है, वही सोपानका नाम है। जैसे कि—(१)बालकाण्डकी फलश्रुतिमें व्रतबन्ध और विवाह आदिका वर्णन है। यह सब कर्म है और कर्मका फल सुख है। इसीसे बालकाण्ड 'सुखसम्पादन' नामका सोपान है। (२) अयोध्याकाण्डकी फलश्रुतिमें 'प्रेम और विरति' का वर्णन है, अतः वह 'प्रेम-वैराग्यसम्पादन' नामका काण्ड है। (३) अरण्यकाण्डकी फलश्रुतिमें वैराग्य है, इसलिये वह 'विमल-वैराग्य-सम्पादन' नामका सोपान है। [तीसरा सोपान 'दृढ़भक्ति-सम्पादन' है—*'रामभगति दृढ़ पावहिं।'''''* परन्तु इसे 'विमल वैराग्यसम्पादन' नाम दिया गया, जिसका कारण सम्भवतः यह है कि माहात्म्यके पश्चात् इसमें कविने मनको उपदेश किया है कि *'दीप सिखा सम जुबति तन मन जनि होसि पतंग। भजहिं राम तजि काम मद करहिं सदा सत संग॥'*] (४) चौथेको *'सकल मनोरथ'* सिद्ध करनेवाला कहा है। मनोरथसिद्धिसे सन्तोष होता है, इसीसे इसका 'विशुद्ध-सन्तोष-सम्पादन' नाम है। (५) पाँचवें सोपानको *'सकल-सुमंगलदायक'* कहा है। सुमङ्गल ज्ञानका नाम है। इसीसे वह 'ज्ञान-सम्पादन' नामका सोपान है। (६) छठे को *'विज्ञानकर'* कहा है, अतः इसका 'विज्ञानसम्पादन' नाम है। और (७) सातवें सोपानमें *'अबिरल हरिभक्ति'* का वर्णन है। यथा—*'कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम। तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥'* इसीसे वह 'अविरल-हरिभक्तिसम्पादन' नामका सोपान है। ☞सारांश यह है कि जैसा क्रम सातों सोपानोंकी फलश्रुतिमें है, उसी प्रकार धर्म, वैराग्य, सन्तोष, ज्ञान, विज्ञान और हरिभक्तिकी प्राप्तिका क्रम है। अर्थात् धर्मका फल वैराग्य, वैराग्यका संतोष, सन्तोषका ज्ञान, ज्ञानका विज्ञान और विज्ञानका फल हरिभक्ति एवं रामधामप्राप्ति है।

नोट—४ *'ज्ञान नयन निरखत'* इति। 'ज्ञाननयनसे क्या देखे?' के उत्तरमें महानुभावोंने यह लिखा है—

(१) मानसदीपक तथा रा० प्र० एवं मानसपत्रिकाकार लिखते हैं कि शास्त्रजन्य ज्ञानसे इन सीढ़ियोंको देखना चाहिये। इस तरहसे कि बालकाण्ड प्रथम सोपानमें श्रीसीतारामसंयोग बना; इसलिये यह सोपान 'सांख्यशास्त्र' है। अयोध्याकाण्ड दूसरा सोपान वैशेषिक अर्थात् वैराग्यशास्त्र है, क्योंकि इससे वैराग्यका उपदेश मिलता है। अरण्यकाण्ड तीसरा सोपान मीमांसाशास्त्र है, क्योंकि इसमें क्षत्रियका परमधर्म दुष्टनिग्रह और सज्जनपालनताका वर्णन है। इसी तरह, किष्किन्धाकाण्ड चौथा सोपान योगशास्त्र है। सुन्दरकाण्ड पाँचवाँ सोपान न्यायशास्त्र है। लङ्का वेदान्त है और उत्तर साम्राज्य-शास्त्र है।—(अधिक देखना हो तो रामायण-परिचर्या और मानसपत्रिका देखिये)

(२) बैजनाथजी—ज्ञान-नयनसे क्या देखे? यह कि—बाल सांख्यशास्त्र है, अयोध्या वैशेषिक, अरण्य मीमांसा, किष्किन्धा योग, सुन्दर न्याय, लङ्का वेदान्त और उत्तर साम्राज्य है। अथवा ज्ञानकी सप्त भूमिकाएँ हैं वे ही सप्त सोपान हैं। अथवा, नवधा-भक्तिकी नौ सीढ़ियोंमेंसे श्रवण-कीर्तन ये बाहरसे चढ़नेकी दो सीढ़ियाँ हैं और शेष सात भीतरकी सात सीढ़ियाँ हैं।—(यह भाव *'एहि महँ रुचिर सप्त सोपाना। रघुपति भगति केर पंथाना॥'* इस चौपाईके आधारपर कहा गया जान पड़ता है।) अथवा, ज्ञानसे यह विचार करना चाहिये कि यहाँ चार संवाद चार घाट हैं। शिवकृत मानससरमें चार घाट कौन हैं; विचारनेसे जान पड़ेगा कि नाम, रूप, लीला और धाम ही चार घाट थे। उन्हींके अवलम्बपर चारों संवाद हैं। इन संवादोंके अन्तर्गत धाम आदिका वर्णन सात-सात ठौर जो ग्रन्थमें है वही सातों प्रबन्ध सातों सुन्दर सीढ़ियाँ हैं। —रामचरित जलरूप है। उसके प्रारम्भमें जो प्रथम सीढ़ी है वह देखनेमात्र खुली है, अन्य छः सीढ़ियाँ जलसे डूबी हैं। प्रारम्भ समय जो अवधप्रभाव वर्णन किया—*'रामधामदा पुरी सुहावनि। लोक समस्त बिदित अति पावनि॥'* (१। ३५। ३) इत्यादि प्रथम सोपान है फिर श्रीरामजन्मसमय जो वर्णन किया—*'अवधपुरी सोहइ एहि भाँती।'* (१। १९५) इत्यादि दूसरा सोपान है। फिर विवाहसमय, वनसे लौटनेपर, राज्याभिषेक होनेपर, भुशुण्डि-प्रसङ्गमें तथा शिववचनमें जो धामका वर्णन है, यथा—*'जद्यपि अवध सदैव सुहावनि।'*(१। २९६)*'जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि''''''।'* (७। ४) *'देखत पुरी अखिल अघ भागा।'* (७। २९) *'अवध प्रभाव जान तब प्रानी।'* (७। ९७) *'पुरी प्रभाव अनुग्रह मोरे।'''''* (७। १०९)।—ये शेष पाँच सीढ़ियाँ धाम-सप्त-प्रबन्ध

दैन्यघाटमें हैं। इसी प्रकार याज्ञवल्क्य-भरद्वाज-संवाद लीला-अवलम्ब कर्मघाटमें सप्तप्रबन्ध लीला सोपान हैं। यथा—*'तेहि अवसर भंजन महि भारा। हरि रघुबंस लीन्ह अवतारा॥'* (१। ४८) *'पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा। बालचरित पुनि कहहु उदारा॥'* (१। ११०) *'जब जब होइ धरम कै हानी।''''' तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि''''।'* (१। १२१) *'एक बार तिन्ह के हित लागी। धरेउ सरीर भगत अनुरागी॥——'* (१। १२३) *'तहाँ जलंधर रावन भयऊ। रन हति''''।'* (१। १२४) *'नारद श्राप दीन्ह एक बारा॥—— एक कलप एहि हेतु प्रभु लीन्ह मनुज अवतार।'* (१। १२४—१३९) *'प्रभु अवतार कथा पुनि गाई।—'* (७। ६४) से ६८ (७)। तक। इसी तरह शिव-पार्वती-संवाद ज्ञानघाट नामावलम्ब नामके सात प्रबन्ध हैं, यथा—*'रामनाम कर अमित प्रभावा।'* इत्यादि *'कासी मरत जंतु अवलोकी। जासु नाम—— ॥ बिबसहु जासु नाम नर कहहीं। जन्म अनेक रचित अघ दहहीं॥'* (१। ११९) *'जासु नाम सुमिरत एक बारा।''''''* (२। १०१) *'राम राम कहि जे जमुहाहीं।——'*(२। १९४) *'राका रजनी भगति तव राम नाम सोइ ——।'* (३। ४२) *'रामनाम बिनु गिरा न सोहा।'* (५। २३) *'तीरथ अमित कोटि सम पावन। नाम अखिल अघपूग नसावन॥'* (७। ९२) तथा भुशुण्डि-गरुड़-संवाद उपासनाघाटरूपावलम्ब रूपके सात प्रबन्ध हैं, यथा—*'नील सरोरुह नील मनि नील नीरधर स्याम।'* (समग्ररूप वर्णन। १। १४६)*'काम कोटि छबि स्याम सरीरा।——'* इत्यादि। (१। १९९) *'पीत बसन परिकर कटि भाथा।——'* इत्यादि। (१। २१९) *'सोभासींव सुभग दोउ बीरा।——'* (१। २३३)*'सहज मनोहर मूरति दोऊ।——'*(१। २४३) *'केकिकंठ द्युति स्यामल अंगा।——'* (१। ३१६) *'मरकत मृदुल कलेवर स्यामा।——'*(७। ७६-७७)

(३) सूर्यप्रसाद मिश्रजी—भाव यह कि इसमें भीतर षट् शास्त्रोंके तत्त्व भरे हैं। (क) सांख्यमें प्रकृति-पुरुषका विचार है, इसका काम तीनों दुःखोंसे रहित होना है। इसमें २५ तत्त्वोंकी उत्पत्ति मायासे कही है जिनके विवेकसे दुःख निवृत्त होता है। रामजीमें प्रथम कुछ इच्छा न थी, पर जब श्रीजानकीजीका फुलवारीमें संयोग हुआ तब इन्द्रियोंके कार्य उनमें होने लगे। मायाके सब कार्य बालकाण्डमें हैं। यह भी दिखता है कि प्रकृति पुरुषके अधीन है। (ख) वैशेषिकका विषय पदार्थविवेचनपूर्वक वस्तुवैराग्य है। इसमें ६ पदार्थ माने गये हैं, इनके ज्ञानसे विरक्ति होती है। अयोध्याकाण्डमें रामजीका विशेष धर्मपर आरूढ़ होना दिखाया है। (ग) मीमांसाका सिद्धान्त है कि वेदविहित कर्मके अनुष्ठानद्वारा परम पुरुषार्थ लाभ होता है। अरण्यकाण्डमें सब बातें राजधर्म अनुष्ठानहीकी हैं। धर्मसे स्वर्गकी प्राप्ति है, मोक्ष नहीं, मोक्षके लिये योगयुक्त धर्मानुष्ठान चाहिये, इसीलिये किष्किन्धाका आरम्भ है। (घ) योगका विषय चित्तवृत्तिनिरोध है, इसका काम शान्ति है। अपने निरुपाधिस्वरूपको जानना इसका सिद्धान्त है। इन बातोंका ज्ञान बिना तर्कशास्त्रके नहीं होता, अतः सुन्दरकाण्डका प्रारम्भ है। (ङ) न्यायका विषय १३ पदार्थोंका जानना है। इनमेंसे ५ इन काण्डोंमें पूर्ण रीतिसे हैं—प्रतिज्ञा समुद्रबन्धनकी, इसका 'हेतु' रामबाण, 'उपनयन' समुद्रबन्धन, 'निगमन' पार जाना, 'उदाहरण' रामबाणका *'संधानेउ धनु''''''।'* न्याययुक्त योगसे मोक्ष नहीं, इसलिये वेदान्तस्वरूप लङ्काकाण्डका आरम्भ है। (च) वेदान्तका स्वरूप ब्रह्म-जीवका ऐक्य है। जीवरूप विभीषण-वैराग्यने भ्रातृसुखत्यागपूर्वक, रामसे बढ़कर कुछ नहीं, इस विवेकसहित, महामोहरावणके नाशकी इच्छासे परब्रह्म राम-जानकीका दर्शन-लाभ किया। (छ) यद्यपि उपर्युक्त बातें ब्रह्मानन्दप्रापक हैं तथापि यह आनन्द क्षणिक है, रामजीकी साम्राज्यलक्ष्मीकी शोभा बिना और किसीमें सामर्थ्य नहीं है कि मनको स्थिर रखे, इसलिये साम्राज्यस्वरूप उत्तरकाण्डका आरम्भ है। इससे सिद्ध हुआ कि सर्वगुणसम्पन्न जीवका रामभक्ति बिना सब साधन व्यर्थ है। (परन्तु ये सब क्लिष्ट कल्पनाएँ हैं।)

(४) सूर्यप्रसाद मिश्रजी—बैजनाथजीने जो लिखा है वह ठीक नहीं है। सात प्रबन्ध सात ठिकाने वर्णन *'रामधामदा पुरी सुहावनि'* इत्यादि, ये बातें उनकी ठीक होतीं यदि ग्रन्थकार सात स्थलोंको जो मानसभूषणकारने लिखी हैं छोड़कर अयोध्याके विषयमें और कुछ कहीं न लिखते, पर ग्रन्थकारने और भी स्थलोंमें अयोध्याका माहात्म्य कहा है। इसी तरह और भी तीनों घाट जो लिखे हैं वे भी निर्मूल हैं।

(५) त्रिपाठीजी—'*ग्यान नयन*""*माना।*' भाव कि गुरुपदसे प्राप्त दिव्य ज्ञानदृष्टिद्वारा देखनेसे सातों सोपान मणि-माणिक्य-मुक्ताके बने हुए दिव्य तेजोमय दिखायी पड़ते हैं। ज्ञानघाटके सोपान मणिमय, कर्मघाटके माणिक्यमय, उपासनाके गजमुक्तामय और दैन्यके मुक्तामय दिखायी पड़ते हैं। भावार्थ यह है कि वेदराशिकी भाँति ये तेजोमय हैं। भरद्वाजजीको जब इन्द्रदेवने वेदराशिका दर्शन कराया, तो वे उन्हें तेजके पहाड़ोंकी भाँति दिखायी पड़े। इसी भाँति दिव्यदृष्टि पानेसे ये वेदावतार सातों सोपान तेजोमय दृष्टिगोचर होते हैं। प्रकाशावरण क्षीण करनेमें समर्थ होनेसे तेजोमय कहा।

(६) सु० द्विवेदीजी—'सातों काण्ड इस मानसकी सात सीढ़ियाँ। इनपर क्रम-क्रमसे मन चढ़ता और ज्ञानदृष्टिसे देखता जाय अर्थात् ऐसा न हो कि पहली सीढ़ी बालकी बिना पूरी किये दूसरी सीढ़ी अयोध्या-पर पैर रखे, ऐसा करनेसे पहली सीढ़ीमें कहाँ-कहाँपर कैसे-कैसे चित्र उरेहे हैं, यह देखनेमें न आयेगा और पहलीको छोड़कर दूसरीपर पैर रखनेमें सम्भव है कि पैर फिसल जाय। चित्रके सब अङ्ग साफ-साफ देख पड़ें इसलिये ज्ञाननयन कहा। भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, 'सत्यम्' इन सातों लोकरूप सीढ़ीपर चढ़ जानेसे अन्तमें सत्यलोकमें ईश्वरसे भेंट होती है, इसी तरह यहाँ भी उत्तरके अन्तमें ईश्वरप्राप्ति है।'

(७) त्रिपाठीजी—ये सप्त प्रबन्ध सप्त पुरियोंकी भाँति मुक्तिके प्रापक हैं। बालकाण्ड अयोध्यापुरी है क्योंकि श्रीरामजन्मभूमि होनेसे बालचरित आदि इसीमें हुए। अयोध्याकाण्ड मथुरा है क्योंकि जैसे श्रीकृष्णजीके मथुरागमनसे गोपिकाओंको तीव्रातितीव्र विरह हुई वैसे ही श्रीरामवनवाससे अवधवासियोंकी वही गति हुई। दूसरे मथुरामें अवतार होनेका बीज इसी काण्डमें है। भगवान्‌ने ऋषियोंसे कहा था कि कृष्णावतारमें तुम्हारे मनोरथ पूरे करेंगे, जैसा श्रीकृष्णोपनिषद्‌में स्पष्ट है। अरण्यकाण्डमें तो मायाका काग, खर-दूषणादिकी माया, मायापतिकी मायासे खरादिका वध, मायाका संन्यासी, मायाका मृग, मायाकी सीता सब माया-ही-माया है और महामाया सतीको मोह भी इसीमें हुआ। अतः इसे 'माया' पुरी कहा। किष्किन्धाको 'काशी' कहा क्योंकि '*सो कासी सेइय कस न*' प्रारम्भमें ही कहा है। काशीमें ही श्रीराममन्त्रके अनुष्ठानसे भगवान् शङ्करको श्रीरामजी मिले, वैसे ही इस काण्डमें रुद्रावतार श्रीहनुमान्‌से श्रीरामजीकी भेंट हुई। सुन्दरकाण्ड काञ्चीपुरी है, क्योंकि यह पुरी साझेकी है। आधी शिवकाञ्ची है, आधी विष्णुकाञ्ची। इसी प्रकार यहाँ पूर्वार्धमें हनुमत्-चरित्र है और उत्तरार्धमें रामचरित। लङ्का अवन्तिका है, क्योंकि यहाँ महाकालका लिङ्ग है और लङ्काकाण्डमें शिवलिङ्गकी स्थापना है। उत्तरकाण्ड द्वारावती है, क्योंकि श्रीकृष्णजीने राज्यभोग किया और पुरीको ले गये, वैसे ही श्रीरामजीने '*गुनातीत अरु भोग पुरंदर*' होकर राज्य किया और प्रजासहित अपने धामको गये। अतः सबको सुभग कहा, ज्ञानदृष्टिसे ही यह समझ पड़ता है।

मा० प्र०—सीढ़ी नीचेसे बँधती है। नीचे और ऊपरकी सीढ़ियाँ बड़ी होती हैं और बीचकी छोटी होती हैं। वैसे ही यहाँ श्रीरामचरितमानससरमें, बालकाण्डसे प्रारम्भ होकर उत्तरकाण्डपर समाप्ति है। नीचेकी दो सीढ़ियाँ बाल और अयोध्या हैं जो बड़ी हैं, लङ्का और उत्तरकी दो सीढ़ियाँ हैं, यह भी बड़ी हैं। अरण्य, किष्किन्धा और सुन्दर बीचकी सीढ़ियाँ हैं अतः ये छोटी हैं।

नोट—५ पं० रामकुमारजीका मत है कि सीढ़ियाँ ऊपरसे बनी हैं। हमारी समझमें इनका मत ठीक है। पहाड़ोंपर तालाबके घाटकी सीढ़ियाँ ऊपरसे काट-काटकर बनायी जाती हैं। दूसरे ऐसा माननेसे प्राकृत तालाबके साथ जैसा लोगोंका व्यवहार होता है इससे उसकी प्रायः समता आ जाती है। जैसे तालाबकी ऊपरवाली सीढ़ी प्रथम मानी जाती है, उसका आरम्भ भी यहींसे होता है, यहाँ आकर तब दूसरी, तीसरी इत्यादि सीढ़ियोंपर जाते हैं, इत्यादि; वैसे ही यहाँ भी गोस्वामीजीने प्रथम सोपान बालकाण्ड माना है; यहींसे इसका प्रारम्भ भी है, अनुष्ठान-पाठ आदि भी प्रायः यहींसे प्रारम्भ होता है, इत्यादि।

नोट—६ नीचेकी सीढ़ी दाबकर ऊपरकी सीढ़ी बनायी जाती है। यहाँ एक काण्डकी फलश्रुतिका दूसरे काण्डके मङ्गलाचरणसे संयोग होना ही 'दाबना' है। काण्डोंका सम्बन्ध मिलाना सीढ़ियोंका जोड़ना है। (मा० प्र०) जोड़ और दाबना निम्न नकशेसे स्पष्ट हो जायँगे।

१-प्रथम सोपान (बालकाण्ड) के अन्तमें *'आए ब्याहि राम घर जब तें। बसे अनंद अवध सब तब तें॥'* (१। ३६१। ५) है। इसका जोड़ द्वितीय सोपान अयोध्याकाण्डके आदिके *'जब तें राम ब्याहि घर आए। नित नव मंगल मोद बधाए॥'* (२। १। १) से है।

२-अयोध्याकाण्डके अन्तमें *'भरत चरित करि नेम तुलसी जे सादर सुनहिं।'* (२। ३२६) का सम्बन्ध तृतीय सोपान (अरण्यकाण्ड) के आदिके *'पुनि भरत प्रीति मैं गाई।'*(३। १। १) से है। यही जोड़ है।

३-अरण्यकाण्डके अन्तके *'सिर नाइ बारहिं बार चरनन्हि ब्रह्मपुर नारद गए।'* (३। ४६) (म० प्र०) अथवा *'देखी सुंदर तरुबर छाया। बैठे अनुज सहित रघुराया॥'* (३। ४१। २) इसका सम्बन्ध चतुर्थ सोपान (किष्किन्धाकाण्ड) के आदिके *'आगे चले बहुरि रघुराया।'* (४। १। १) से है।

४-चतुर्थ सोपानके अन्तके *'जामवंत मैं पूछउँ तोही'* (४। ३०। १०) का जोड़ पञ्चम सोपान (सुन्दर) के आदिके *'जामवंत के बचन सुहाये।'* (५। १। १) से है।

५-सुन्दरकाण्डके अन्तके *'निज भवन गवनेउ सिंधु श्रीरघुपतिहि यह मत भायऊ।'* (५। ६०) का सम्बन्ध षष्ठ सोपान (लंकाकाण्ड) के आदिके *'सिंधु बचन सुनि राम······'* लं० मं० सोरठासे मिलाया गया।

६-लङ्काकाण्डके अन्तके *'प्रभु हनुमंतहि कहा बुझाई।······तुरत पवनसुत गवनत भयऊ।'* (६।१२०। १—३) का सम्बन्ध सप्तम सोपानके आदिके *'राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत। बिप्र रूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत॥'* (७।१) से मिलाया गया।

जोड़की दोनों चौपाइयों (१। ३६१। ५) और (२। १। १) के बीचके *'प्रभु बिबाह जस भयउ उछाहू।'*से *'सिय रघुबीर बिबाह जे सप्रेम गावहिं सुनहिं'* तक तथा फल-श्रुति और—अ० मङ्गलाचरण (**'यस्याङ्के च विभाति······', 'प्रसन्नतां या······', 'नीलाम्बुज'** और **'श्रीगुरुचरन······'**) यह सब दाबन है।

तृतीय सोपानका मङ्गलाचरण (**'मूलं धर्मतरोर्विवेकजलधेः······', 'सान्द्रानन्दपयोद······'** और *'उमा राम गुन गूढ़······'*) दाबन है।

अरण्यकाण्डके *'ते धन्य तुलसीदास'* से अथवा *'तहँ पुनि सकल देव मुनि आए।'* (३। ४१। ३) से *'भजहिं राम······सतसंग।'* (३। ४६) तक तथा फल-श्रुति **'इति श्रीमद्रामचरितमानसे······'** और किष्किन्धा-काण्डका मङ्गलाचरण **'कुन्देन्दीवर······' 'ब्रह्माम्भोधि······'** *'मुक्तिजन्म······'* से *'संकर सरिस'* तक।

किष्किन्धा काण्डके *'इतना करहु तात तुम्ह जाई।'*(४। ३०। ११) से अन्ततक+ फलश्रुति+सुन्दर-काण्डका मङ्गलाचरण **'शान्तं······', 'नान्या स्पृहा······'** *'अतुलित······।'*

सुन्दरकाण्डकी पूर्ति अर्थात् *'यह चरित कलिमल हर।······'* (५। ६०) से लं० मं० दोहा *'लव निमेष—'* तक।

लं० १२०। ३ *'तब प्रभु भरद्वाज पहिं गयऊ।'* से *'श्रीरघुनाथ नाम तजि नाहिंन आन अधार।'* (६। १२०) तक+फलश्रुति+उत्तरकाण्डका मङ्गलाचरण **'केकीकंठाभनीलं—' 'कोसलेन्द्रपदकंज—', 'कुन्दइन्दु दर गौर'**, दोहा *'रहा एक दिन'* से *'राम बिरह सागर'······* तक।

नोट ७—'त्रिपाठीजी लिखते हैं कि 'अन्य वक्ताओंने सात काण्डोंकी कल्पना तो की, पर सोपान नहीं बनाया; इसलिये अल्प-पुरुषार्थ व्यक्तियोंके लिये दुर्गम था, पर ग्रन्थकारने इसमें प्रसङ्गरूप फलक (डण्डे) देकर इसे सोपान बना दिया। प्रत्येक प्रबन्धके प्रसङ्ग ही उसमेंके फलक वा डण्डे हैं। सोपानोंके बीचमें विश्रामके लिये फर्श होता है, सातों काण्डोंके विश्रामस्थान सात फर्श हैं। मा० प्र० में जो जोड़ और दाबन कहे गये हैं, वही त्रिपाठीजीके फर्श हैं।

रघुपति महिमा अगुन अबाधा। बरनब सोइ बर बारि अगाधा॥ २॥

शब्दार्थ—**अगुन**=निर्गुण। सत्त्व, रज, तम गुणोंसे रहित। गुणातीत, अव्यक्त। **अबाधा**=बाधा या विघ्नरहित, एकरस। **बरनब**=वर्णन करूँगा, कहूँगा। वा, वर्णन या कथन करना। **अगाधा**=अथाह होना, गहराई, गम्भीरता।

अर्थ—१ श्रीरघुनाथजीकी निर्गुण (रूपकी) एकरस महिमाका वर्णन ही उत्तम जलकी अगाधता है॥ २॥

अर्थ—२ श्रीरघुनाथजीकी महिमा जो गुणातीत एकरस है उसको श्रेष्ठ जलकी अगाधता कहूँगा॥ २॥

टिप्पणी—१ (क) सीढ़ीसे उतरनेपर गहराई देख पड़ती है। इसीसे प्रथम सीढ़ी लिखकर तब गहराई लिखते हैं। (खर्रा)। (ख) रघुपतिके दो रूप हैं; एक निर्गुण (अव्यक्त), दूसरा सगुण। (ग) रघुपतिके सगुणरूपकी लीलाका वर्णन जलकी स्वच्छता है और निर्गुणरूपकी महिमाका वर्णन अगाधता है। तात्पर्य यह है कि ऐश्वर्य-वर्णनसे यशकी गम्भीरता होती है, सगुणमें लीला है, निर्गुणमें महिमा।

टिप्पणी—२ (क) प्रथम थलको अगाध कहा, यथा—*'सुमति भूमि थल हृदय अगाधू।'* अब जलको अगाध कहते हैं, क्योंकि प्रथम थलकी अगाधता है पीछे जलकी। जल थलपर टिकता है, इसीसे प्रथम थलको कहा। सगुणयश *'बर बारि'* है, यथा—*'बरसहिं रामसुजस बर बारी'* और निर्गुण-महिमाका वर्णन जलकी अगाधता है।

(ख) *'अबाधा'* का भाव यह है कि सगुणकी महिमा एकरस नहीं है, निर्गुणकी महिमामें बाधा नहीं है, यह एकरस है; इसी तरह अगाध जल बाधारहित है। इसीसे अगुणकी महिमाको *'अबाधा'* कहा। सगुणकी महिमामें बाधा है, क्योंकि जब लीलामें विलाप किया, बाँधे गये, अज्ञानी बनकर विद्या पढ़ी, इत्यादि कर्म किये, तब ईश्वरकी महिमा क्या रह गयी?—['अगुण' से जनाया कि सगुणकी भी महिमा है। सगुणकी महिमा श्रीसतीजीने देखी (दोहा ५४ और ५५ में *'निज प्रभाउ कछु प्रगटि जनावा।'* से *'सती समुझि रघुबीर प्रभाऊ'* तक इसका उल्लेख है), श्रीकौसल्याजीने देखी (दोहा २०१, २०२ में देखिये) और श्रीभुशुण्डिजीने देखी *'तब मैं भागि चलेउँ उरगारी'* (७। ७९) से (७। ८२) तक। *'रघुपति'* शब्द देकर जनाया कि सगुण-अगुण दोनों श्रीरामजीकी ही महिमा हैं।]

नोट—१ *'अगुन अबाधा महिमा'* के उदाहरण—(१) *'उर अभिलाष निरंतर होई। देखिअ नयन परम प्रभु सोई॥ अगुन अनंत अखंड अनादी।.... निजानंद निरुपाधि अनूपा।'* (१४४। ३—७) (२) *'राम करउँ केहि भाँति प्रसंसा।.... करहिं जोग जोगी जेहि लागी।....महिमा निगमु नेति कहि कहई। जो तिहुँ काल एकरस रहई॥'* (१। ३४१। ६) तक; (३) *'राम ब्रह्म परमारथरूपा'.....'कहि नित नेति निरूपहिं बेदा'* (२। ९३) (४) *'मुनि मुसुकाने सुनि प्रभु बानी। पूछेहु नाथ मोहि का जानी॥ तुम्हरेइ भजन प्रभाव अघारी। जानउँ महिमा कछुक तुम्हारी॥ ऊमरि तरु बिसाल तव माया'* से *'ते तुम्ह सकल लोकपति साईं.....'* तक (अ० १३।४—९) (५) *'जग कारन तारन भव भंजन धरनीभार '* (कि० १) (६) *'सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया। पाइ जासु बल बिरचति माया॥'* (सुं० २१। ४) से *'जाके बल.....'* (२१) तक; (७) *'काल कर्म जिव जाके हाथा।'* (लं० ६) *'सिव बिरंचि सुर मुनि समुदाई। चाहत जासु चरन सेवकाई॥'* (लं० २२) *'जगदातमा प्रानपति रामा।..... तृन ते कुलिस कुलिस तृन करई।'* (लं० ३४। ६—८) *'उमा काल मरु जाकी इच्छा।'* (लं० १०१) (८) *'महिमा नाम रूप गुन गाथा। सकल अमित अनंत रघुनाथा॥'* (उ० ९१। ३) से *'तिमि रघुपति महिमा अवगाहा। तात कबहुँ कोउ पाव कि थाहा॥..... प्रभु अगाध सतकोटि पताला।..... राम अमित गुनसागर थाह कि पावइ कोइ.....।'* (९२) तक; (९) *'मसकहि करइ बिरंचि प्रभु अजहि मसक ते हीन।'* (उ० १२२) *'महिमा निगम नेति करि गाई'* से *'जासु नाम भव भेषज हरन घोर त्रयसूल'* (उ० १२४)तक, इत्यादि। (मा० प्र०)

नोट-२ *'महिमा अगुन अबाधा—'* के और भाव—(क) अगुण अर्थात् बिना गुण (डोर) के और अबाधा अर्थात् बिना बाधाके हैं। यह महिमारूप जल बिना डोर और बिना बाधाके सबको सुलभ है। इसलिये यह महिमा श्रेष्ठ और अगाध जल है। रामकी महिमाकी थाह नहीं। इसलिये अगाध कहना उचित है। वेद कहता है कि 'यतो वाचो निवर्तन्ते।'(सुधाकर द्विवेदीजी) (ख) जलकी थाह (गहराईका पता) गुण (डोर) हीसे मिलता है। यहाँ गुण है ही नहीं, तब थाह कैसे मिल सके। अतः *'अगाध'* कहा।

(ग) सांख्यशास्त्रमें मायाके तीन गुण हैं, इससे जनाया कि रामजीकी महिमा मायिक गुणोंसे पृथक् है। मायाके गुणोंमें बाधा होती है, रामजीकी महिमामें मायाकी प्रबलता नहीं होती। अतः *'अबाधा'* विशेषण दिया। (सू० प्र० मिश्र) (घ) अगुण अबाधा महिमाको अगाधता कहनेका भाव यह है कि रघुनाथजीके नाम, रूप, लीला और धाम इन चारोंका जो परात्परत्व वर्णन है वही प्रभुकी अगुण अगाध महिमा है। यथा—*'महामंत्र जोइ जपत महेसू। कासी मुकुति हेतु उपदेसू॥'* इति नाममहिमा, *'ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद। सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या के गोद॥'* इति रूपमहिमा, *'जग पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि संभु नचावनि हारे॥ तेउ न जानहिं मरम तुम्हारा। और तुम्हहि को जाननिहारा॥'* (२। १२७) इति लीलापरत्व और *'रामधामदा पुरी सुहावनि।—'* इति धामपरत्व। (ङ) 'निर्गुण परब्रह्मकी महिमा जो नित्य एकरस पूर्ण है, सोई मानस-कथारूपी जलकी सजलताका मूल है अर्थात् इसके प्रभावसे जल नहीं घटता, एकरस परिपूर्ण रहता, अतएव अगाधता है। जैसे परतमके यशकी थाह नहीं, वैसे ही मानस अथाह है।' (मा० म०) (च) अद्वैत मतके अनुसार सत्ता तीन प्रकारकी है। प्रातिभासिकी, व्यवहारिकी और पारमार्थिकी। प्रातिभासिकीका बाध व्यवहारिकीसे और व्यवहारिकीका पारमार्थिकीसे होता है। पारमार्थिकी सत्ता (अर्थात् निर्गुण-ब्रह्म) का बाध नहीं होता, अतः अगुण महिमाको *'अबाध'* कहा। जिस भाँति एक बृहदाकार शिलामें पुतली आदिके आकार विद्यमान हैं, शिल्पी पाषाणके उन भागोंको जो कि उन आकारोंको ढके हुए हैं, छीनीसे काटकर निकाल देता है, कुछ अपने पाससे कोई आकार लाकर उस शिलामें नहीं डाल देता, इसी भाँति निर्गुण निराकार ब्रह्म एक अनादि अनन्त शिला है, उसीमें सब गुण और सब आकार कल्पित हैं, अतः उसको अगाध कहा, उसकी थाह नहीं है। (वि० त्रि०)

वि० त्रि०—*'बरनब सोइ'* इति। वह निर्गुण ब्रह्म अपनी महिमामें ही प्रतिष्ठित है। अतः उसका साक्षात् वर्णन नहीं, उपमाद्वारा वर्णन करनेका निश्चय करते हैं। यद्यपि निरुपमकी उपमा भी नहीं दी जा सकती तथापि निषेधरूपसे प्रादेशमात्र दिखाया जा सकता है। वर्षाके जलमें गहराई इतनी थोड़ी होती है कि उसका वर्णन न करना ही पर्याप्त था। अगाध हृदयमें आकर रामसुयश भर गया तो उसमें अथाह गहराई भी आ गयी। उसी अथाह गहराईसे *'अगुन अबाधा'* महिमाको उपमित किया है।

राम-सीअ-जस सलिल सुधा सम। उपमा बीचि* बिलास मनोरम॥ ३॥

शब्दार्थ—**सलिल**=जल। **उपमा**=एक वस्तुको दूसरेके समान कहनेकी क्रिया। **बीचि**=लहर। **बिलास**=आनन्द, शोभा। **मनोरम**=मनको रमाने खींच लेनेवाली। **बीचि बिलास**=तरङ्गका उठना। यथा—*'सोभित लखि बिधु बढ़त जनु बारिधि बीचि बिलास।'*

अर्थ— श्रीसीतारामयश अमृतके समान जल है। जो उपमाएँ इसमें दी गयी हैं वे ही मनको रमानेवाली लहरोंके विलास हैं॥ ३॥

टिप्पणी—१ *'राम सीअ जस सलिल सुधा सम'* का भाव यह है कि जब श्रीरामयशमें श्रीसीताजीका यश भी मिला तब माधुर्य और शृङ्गार दोनों एकत्रित हो गये। यह युगल यश भक्तोंको विशेष आह्लाद देनेवाला है। इसीसे पुष्पवाटिका और विवाहप्रसङ्ग श्रीरामचरितमानसमें सर्वोत्तम और सारभूत माने गये हैं— [निर्मल, पावन और मधुर होनेसे यशको *'सलिल'* कहा। श्रीरामसीयकी सरलताको देखकर स्वयं कैकेयीजीको बड़ा पश्चात्ताप हुआ, यथा—*'लखि सिय सहित सरल दोउ भाई। कुटिल रानि पछितानि अघाई॥'* श्रीकौसल्याजी श्रीसुनयनाजीसे कहती हैं—*'ईस प्रसाद असीस तुम्हारी। सुत सुतबधू देवसरिबारी॥'* अतः इनके यशको भी सलिलसे उपमित किया। (वि० त्रि०)]

राम सीययशके उदाहरण—१ अरण्यमें, यथा—*'एक बार चुनि कुसुम सुहाए'* से *'रघुपति चित्रकूट बसि नाना। चरित किये श्रुति सुधा समाना॥'* तक, यह गुप्त रहस्य किया गया है इत्यादि। २-अयोध्याकाण्डमें,

* बीच—१६६१। इस पाठका अर्थ होगा—'बीच-बीचमें जो उपमाएँ दी गयी हैं वे जलके विलास (कार्यवर्ग) अर्थात् लहर हैं।'

यथा—*'चले ससीय मुदित दोउ भाई।'* (२। ११२) से *'एहि बिधि रघुकुल कमल रबि मग लोगन्ह सुख देत। जाहिं*"'(२। १२३) तक पुनः दोहा १३८ से दो० १४१ तक और दो० २८५-२८६, इत्यादि। ३-बालकाण्डमें यथा—(क)*'चहुँ दिसि चितइ पूछि मालीगन। लगे लेन दल फूल मुदित मन॥'* (१। २२८। १) से *'हृदय सराहत सीय लुनाई।* (२३७) तक। (ख) *'जगदंबा जानहु जिय सीता।'* (२४६। २) से *'बर साँवरो जानकी जोगू'* (२४९। ६) तक। (ग) *'रामसीय सोभा अवधि सुकृत अवधि दोउ राज। जहँ तहँ पुरजन कहहिं अस मिलि नरनारि समाज॥'* (३०९) *'हृदय बिचारहु धीर धरि सिय रघुबीर बिआहु"""। एहि बिधि संभु सुरन्ह समुझावा।'* (३१४। १—३) इत्यादि।

नोट—१ श्रीजानकीदासजी लिखते हैं कि रामसुयश-जलमें सगुण-लीला और प्रेमभक्तिको *'मधुर मनोहर मंगलकारी'* गुण कह आये हैं, अब 'रामसीय दोनोंका मिश्रित यश यहाँ जलका अमरत्व गुण कहा गया है। अमृत मधुर, पुष्ट और आह्लादकारक होता है, मधुरता गुण पहिले कह ही चुके हैं, इसलिये यहाँ *'सुधा सम'* से पुष्ट और आह्लादकारक अर्थ लेना चाहिये। (मा० प्र०) यदि *'स्वाद मिष्टता'* गुण अभिप्रेत होता तो पहिले मधुरता गुण क्यों लिखते? (मा० प्र०) इस भावसे रा० प्र०, भावदीपिका, मानसभूषण आदिमें दिये हुए भावोंका खण्डन हो जाता है।

त्रिपाठीजी लिखते हैं कि मेघका जल एकत्रित होकर तालाबमें आनेपर उसके गुण तथा स्वादमें सूक्ष्म भेद पड़ जाता है, इसीसे ग्रन्थकारने साधुमुखच्युत रामयशका माधुर्य वर्णन करनेपर भी सरमें आनेसे फिर उसका माधुर्य वर्णन किया और उसकी अमृतसे उपमा दी। मेघके जलका रस अव्यक्त होता है, सरमें एकत्रित होनेपर शरद्‌ऋतुमें इस जलका रस व्यक्त हो जाता है अतः माधुर्यातिशयसे सुधाकी उपमा दी गयी। 'प्रेमाभक्तिमें ही माधुर्य है' इस सिद्धान्तमें त्रुटि नहीं है। यहाँ श्रीरामजानकीमें प्रेमातिशय होनेसे ही उनके यशको सुधासम कहा। प्रेमातिशय ही सर्वत्र अभेदका कारण होता है।

पं० सूर्यप्रसाद मिश्रजी लिखते हैं कि 'उसी जलमें सुधासम गुण होते हैं जिसमें सूर्यप्रकाश और चन्द्रप्रकाश दोनों पड़ें। यही बात ग्रन्थकारने भी लिखी है कि यथा सूर्यसम रघुनाथजी और चन्द्रसम जानकीजी दोनोंके यशरूपी जल सुधासम हैं। कोषमें 'सुधा नाम 'मोक्ष' का है, ऐसा ही श्रीरामजानकी-यश है। पुनः, यशका अर्थ प्रेम भी है। श्रीराम-जानकीका-सा प्रेम किसीका न हुआ, न है और न होगा।'

पं० रामकुमारजी लिखते हैं कि *'सुधा सम'* का भाव यह है कि अमृतसमान पुष्टकर्ता, रोगहर्ता और सन्तोषकर्ता है। दोनोंके दर्शन होनेपर फिर किसी वस्तुकी चाह नहीं रह जाती, यही सन्तोषकारक गुणका भाव है। यथा—*'नाथ देखि पद कमल तुम्हारे। अब पूरे सब काम हमारे॥'*

श्रीसुधाकर द्विवेदीजीका मत है कि 'महिमाको अगाध श्रेष्ठ जल अर्थात् क्षीरसागरका जल बनाया। उसमें श्रीसीतारामजीका यश अमृत जल अर्थात् चौदहों रत्नोंमें श्रेष्ठ अमृत है।'

वे० भू०— रामयशको सर्वत्र जल कह आये हैं। यथा— *'बरषहिं राम सुजस बर बारी।' 'राम बिमल जस जल भरिता सो।'* वैसे ही यहाँ भी रामयशको जल ही कहा है। यहाँ राम और सीय दोनोंके यशका एक-एक विशेषण नाम-निर्देशक्रमसे है। अर्थात् रामयश सलिल सम और सीययश सुधासम है।

नोट—२ उपमा एक अर्थालङ्कार है जिसमें दो वस्तुओंके बीच भेद रहते हुए भी उनका समानधर्म बतलाया जाता है। (श० सा०) जिस वस्तुका वर्णन किया जाता है उसे 'उपमेय' और जो समता दी जाती है उसे 'उपमान' कहते हैं। उपमा देनेमें जिमि, तिमि, सम इत्यादि पद समता देनेमें काम आते हैं, इनको 'वाचक' कहते हैं। उमपेय, उपमानमें जिस गुण-लक्षण-देशकी समानता दिखाते हैं उसे 'धर्म' कहते हैं। जब उपमामें चारों अङ्ग (उपमेय, उपमान, वाचक और धर्म) होते हैं तो उसे 'पूर्ण उपमा' कहते हैं। यदि इनमेंसे कोई अङ्ग लुप्त हुआ तो उसे लुप्तोपमा कहते हैं। यहाँ 'उपमा' रूपक आदि अलङ्कारोंमात्रका उपलक्षण है अर्थात् रूपक आदि सभी अलङ्कार *'बीचि बिलास मनोरम'* हैं। 'अलङ्कारों'

की संख्या तथा कहीं-कहीं लक्षणोंमें मतभेद है। अलङ्कार-ग्रन्थोंमें महाराज जसवन्तसिंहकृत 'भाषाभूषण' विशेष माननीय माना जाता है। अलङ्कारोंके नाम और लक्षण-प्रसङ्ग आनेपर हमने इस टीकामें दिये हैं। 'उपमा' के कुछ उदाहरण ये हैं, यथा—*'श्रीहत भये भूप धनु टूटे। जैसे दिवस दीप छबि छूटे॥ रामहिं लखन बिलोकत कैसे। ससिहिं चकोर किसोरक जैसे॥'* (१। २६३) *'दामिनि दमक रह न घन माहीं।'* (कि० १४। २) से *'सदगुरु मिलें जाहिं जिमि संसय भ्रम समुदाइ।'* (कि० १७) तक, इत्यादि।

मानसमें रूपक, प्रतीप, उल्लेख, तुल्ययोगिता, प्रतिवस्तूपमा, अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा, अपह्नुति, सहोक्ति, विनोक्ति, समासोक्ति, परिकर, परिकराङ्कुर, असङ्गति, विशेषोक्ति, असम्भव, भ्रम, सन्देह, स्मरण, अनन्वय, दीपक, दृष्टान्त, उदाहरण, श्लेष, अप्रस्तुत, व्याजस्तुति, व्याजनिन्दा, विभावना, आक्षेप, विरोधाभास, विषम, सम, पर्यायोक्ति, विचित्र, अधिक, अन्योन्य, व्यतिरेक, निदर्शना, परिणाम, व्याघात, विशेष, यथासंख्य, मालादीपक, एकावली, पर्याय, समुच्चय, कारकदीपक, कारणमाला, प्रौढ़ोक्ति, सम्भावना, अर्थान्तरन्यास, ललित, काव्यार्थापत्ति, समाधि, प्रत्यनीक, प्रहर्षण, अनुज्ञा, अवज्ञा, तद्गुण, अतद्गुण, विषाद, उल्लास, अनुगुण, मीलित, उन्मीलित, विशेषक, चित्र, पिहित, व्याजोक्ति, गूढ़ोक्ति, युक्ति, लोकोक्ति, वक्रोक्ति, भाविक, स्वभावोक्ति, अत्युक्ति, निरुक्ति, प्रतिषेध, विधि, हेतु, उदात्त, विवृतोक्ति, छेकोक्ति, सूक्ष्म, मुद्रा, लेश, रत्नावली इत्यादि अलङ्कार प्रायः आये हैं। जिस प्रकार जल ही रमणीय आकारमें व्यक्त होकर लहर हो जाता है, उसी भाँति अर्थ रमणीय आकारमें व्यक्त होकर अलङ्काररूप हो जाता है।

नोट—३ पं० रामकुमारजीका पाठ *'उपमा बिमल बिलास मनोरम'* है। अर्थात् विमल उपमा ही शोभाका विलास है। वे कहते हैं कि जल पुरइनसे ढका है उसमें तरङ्ग कैसे होगी, दूसरी तरङ्ग निरन्तर नहीं रहती, उपमा निरन्तर है। परन्तु यह पाठ और कहीं देखनेमें नहीं आता। सूर्यप्रसाद मिश्रजी लिखते हैं कि जैसे जलमें वायुकी प्रेरणासे लहरें उठती हैं एवं इस ग्रन्थमें काव्यकी उक्तिरूपी वायुसे उपमा आदि अलङ्कार मनोहर लहरें हैं। *'बीचि'* का पाठान्तर *'बीच'* भी मिलता है।

पुरइनि सघन चारु चौपाईं। जुगुति मंजु-मनि-सीप सुहाईं॥ ४॥

शब्दार्थ—पुरइनि=कमलका पत्ता या बेल। सघन=खूब घना। मंजु=सुन्दर।

अर्थ—सुन्दर चौपाइयाँ ही घनी फैली हुई पुरइनें हैं और कविताकी युक्तियाँ उज्ज्वल मोतियोंकी सुन्दर सीपियाँ हैं॥ ४॥

मा० प्र०—'अब तीन परिखा बाँधते हैं—एक तल्लीन, एक तद्गत और एक तदाश्रय। पहले उनको कहते हैं जो 'तल्लीन' हैं अर्थात् जो मानससे क्षणभर भी बाहर नहीं होते, किन्तु उसीमें मिले रहते हैं। जैसे मानससरमें पुरइन, सीप और मोती होते हैं' वैसे यहाँ श्रीरामचरितमानसमें सुन्दर सघन चौपाइयाँ और युक्तियाँ हैं।

नोट—१ *'पुरइनि सघन चारु चौपाई'* इति। इस रूपकमें समता केवल इतनी है कि जैसे जलपर पुरइन सघन, वैसे ही रामचरितमानसमें चौपाइयाँ सघन हैं। पुनः, जैसे पुरइनकी आड़में जल है, वैसे ही चौपाइयोंकी आड़में रामयश है। भाव यह है कि जैसे खूब घनी पुरइनसे जल छिपा रहता है, ऊपरसे देखनेवाले (जो इस मर्मको नहीं जानते वे) पत्ते ही समझते हैं, जल नहीं पाते, यथा—*'पुरइनि सघन ओट जल बेगि न पाइअ मर्म। मायाछन्न न देखिए जैसे निर्गुन ब्रह्म॥'* (३। ३९ क) वैसे ही यहाँ सम्पूर्ण रामचरितमानस प्रायः चौपाइयोंमें कहा गया है, इसीसे इसे चौपइया-रामायण भी कहते हैं। इन सघन चौपाइयोंकी ओटमें श्रीरामयश गुप्त है, इसके मर्मी ही इस जलको प्राप्त करके मननरूपी पान करते हैं। जो मर्मी नहीं हैं वे ऊपरहीकी बातोंमें भटकते रहते हैं, काव्यगुणदोष आदिके विचारमें पड़े रहते हैं। कितने ही तो भाषा समझकर इसके पास नहीं आते कि भाषाकी चौपाई क्या पढ़ें।

नोट—२ *'चौपाई'* इति। जायसीने सं० १५२७ वि० में 'पद्मावत' ग्रन्थको रचा। उसमें सात-सात चौपाईपर दोहा रखा है। यही नियम उनके *'अखरावट'* और *'आखिरी कलाम'* में है। प्रोफे० पं० रामचन्द्र

शुक्लजीने उन्हें चौपाई कहा है। व्रजवासीदासजीने व्रजविलासमें बारह-बारह चौपाइयोंपर दोहा रखा है और स्वयं ही प्रत्येक (दो चरणवाली पंक्ति) को चौपाई कहा है। बाबा रघुनाथदासजी रामसनेहीजीने विश्राम-सागरमें चौपाइयोंकी गणना प्रत्येक खण्डके अन्तमें दी है। उसके अनुसार प्रत्येक दो चरणको मिलाकर एक चौपाई माना गया है। आजकल ऐसी दो चौपाइयों अर्थात् चार चरणोंको चौपाई माना जाता है और दो चरणको अर्धाली कहा जाता है। अर्धाली नाम किसी पिंगलमें नहीं मिलता। पं० रामकुमारजी आदि प्राचीन टीकाकारोंने प्रत्येक दो चरणोंको मिलाकर 'चौपाई' माना है। आधुनिक कुछ टीकाकारोंने चार चरणोंको मिलाकर 'चौपाई' नाम दिया है। मानस-पीयूषमें प्राय: अर्धाली और चौपाई दोनों ही नाम दो चरणोंवाली पंक्तिके लिये आये हैं। वि० त्रिपाठीजीका मत है कि 'दो पादकी एक अर्धाली हुई एवं दो अर्धालियोंकी एक चौपाई हुई। जहाँ विषमसंख्यक अर्धालियोंके बाद ही दोहा, सोरठा या छन्द आ पड़ा है वहाँ अन्तिम अर्धालीको भी पूरी चौपाई माननी होगी। अर्थात् जहाँ ग्यारह अर्धालियाँ हैं वहाँ छ: चौपाइयाँ मानना ही न्याय है, ग्यारह माननेसे छन्दशास्त्रका भारी विरोध होगा।' गौड़जीका मत था कि सम संख्यामें चार चरणकी चौपाई माननी चाहिये और विषम संख्यामें दो चरणकी चौपाई माननी चाहिये।

नोट—३ *'चारु'* कहा क्योंकि कोई चार चरणकी चौपाई रकार-मकारसे खाली नहीं है। अर्धाली तो दो-एक रकार-मकाररहित मिल भी जाती हैं। (वि० त्रि०)

नोट—४ *'जुगुति मंजु मनि'*······' इति। क्रियासे कर्मको छिपा देनेको 'युक्ति' कहते हैं। यथा—*'बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू। भूपकिसोर देखि किन लेहू॥'* *'पुनि आउब इह बिरियाँ काली।'* (१। २३४) और उदाहरण यथा—(२) *'मम अनुरूप पुरुष जग माहीं। देखेउँ खोजि लोक तिहुँ नाहीं॥ तातें अब लगि रहिउँ कुमारी। मन माना कछु तुम्हहि निहारी॥'* (आ० १७) शूर्पणखा विधवा है, अपने विधवापनको इस युक्तिसे छिपाती है। (३) *'यह सुनि मन गुनि सपथ बड़ि बिहँसि उठी मति मंद।'* (आ० २६) *'ऐसिउ पीर बिहँसि तेहि गोई॥'*—हँसकर हृदयके मर्मको छिपाया। (४) *'सुनत श्रवन बारिधि बंधाना। दसमुख बोलि उठा अकुलाना॥ बाँधेउ बननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस। सत्य तोयनिधि कंपति उदधि पयोधि नदीस॥'* (लं० ५) *'निज बिकलता बिचारि बहोरी। बिहँसि गयउ गृह करि भय भोरी॥'* यहाँ डर और व्याकुलताके कारण घबड़ाकर दसों मुखोंसे बोल उठा, फिर यह सोचकर कि और सभा यह न समझ पावे कि मैं डर गया वह हँस दिया और भयके छिपानेहीके विचारसे महलको चला गया। अङ्गद-रावण-संवाद युक्तियोंसे भरा-पूरा है इत्यादि। (५) *'गए जाम जुग भूपति आवा। घर घर उत्सव बाज बधावा॥'* (१। १७२) यहाँ प्रतापभानुको निशाचर रानीके पास लिटा गया था, यह कर्म है। इसको छिपानेके लिये राजा *'मुनि महिमा मन महु अनुमानी। उठेउ गवहिं जेहि जान न रानी॥ कानन गयउ बाजि चढ़ि तेही। पुर नर नारि न जानेउ केही॥'* और दिन चढ़नेपर घर आया जिससे रातका भेद कोई न जान पाया। (६) *'दलकि उठेउ सुनि हृदउ कठोरू। जनु छुइ गयउ पाक बरतोरू॥ ऐसिउ पीर बिहँसि तेहिं गोई। चोर नारि जिमि प्रगटि न रोई॥ लखहिं न भूप कपट चतुराई।* ···*कपट सनेहु बढ़ाइ बहोरी। बोली बिहँसि नयन मुहु मोरी॥'* (२। २७) *'राजु देन कहि दीन्ह बन मोहि न सो दुख लेसु। तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहि प्रजहिं प्रचंड कलेसु॥'* (२। ५५) *'कोउ नृप होउ हमहिं का हानी। चेरि छाँड़ि अब होब कि रानी॥ जारै जोगु सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा॥'* (२। १६) *'प्रभु प्रताप बड़वानल भारी। सोखेउ प्रथम पयोनिधि बारी॥ तव रिपु नारि रुदन जलधारा। भरेउ बहोरि भयउ तेहि खारा॥ सुनि <u>अति उक्ति</u> पवनसुत केरी।'* (६। १) *'गूलरि फल समान तव लंका। बसहु मध्य तुम्ह जंतु असंका॥ मैं बानर फल खात न बारा। आयसु दीन्ह न राम उदारा॥ जुगति सुनत रावन मुसुकाई।'* (६। ३३) इत्यादि। (मा० प्र०)

त्रिपाठीजी—युक्ति उपायको कहते हैं। दु:साध्य कार्य भी युक्तिसे सुसाध्य हो जाता है। सुन्दर युक्ति वही है जिससे अल्पायासमें अर्थ सिद्ध भी हो और धर्ममें बाधा भी न पड़े। ऐसी युक्तियाँ मानसमें अनेक हैं।

(क) नारदजीने जब पार्वतीजीका हाथ देखकर बताया कि जोगी, जटिल आदि लक्षणयुक्त पति इसका होगा, तब मैना और हिमवान् घबड़ा उठे। नारदजीने कहा *'तदपि एक मैं कहौं उपाई।— जौं बिबाह संकर सन होई। दोषौ गुन सम कह सबु कोई॥'* (१। ६९) विधिका लिखा भी हो और अपना काम बन जाय। यह युक्ति है। (ख) भरतजी श्रीरामजीको लौटाना चाहते हैं, यदि श्रीरामजी लौटते हैं तो पिताका वचन जाता है, नहीं लौटते तो अवधवासियोंका प्राणसङ्कट है। अतः भरतजी कहते हैं *'तिलक समाजु साजि सबु आना। करिअ सुफल प्रभु जौं मन माना॥ सानुज पठइअ मोहि बन""।'* यह युक्ति है। आशय यह कि आप राज्य स्वीकार करें और मैं वन स्वीकार करता हूँ; इस तरह दोनों बातें बन जायँगी। इसी तरह (ग) *'इहाँ राम जसि जुगुति बनाई। सुनहु उमा सो कथा सुहाई॥'* (३। २३) (घ) *'का चुप साधि रहेउ बलवाना—।'* (४। ३०। ३—६) (यह जाम्बवान्की युक्ति हनुमान्जीको बलका स्मरण दिलानेकी है) इत्यादि।

बैजनाथजी—इस मानसमें युक्ति यह है कि जब गोस्वामीजीने ग्रन्थ प्रारम्भ किया तब उन्होंने विचार किया कि विमुख जीव श्रीरघुपतिलीलामें अनेक तर्क निकालेंगे, इसलिये उन्होंने प्रथम भरद्वाजजीहीके प्रश्नमें सन्देह रख दिया। याज्ञवल्क्यजीके वचनोंसे सतीजीमें सन्देह और उसकी सजा दिखायी। फिर शिवजीके वचनोंसे गरुड़का सन्देह और सन्देहके कारण गरुड़की व्याकुलतारूपी सजा कही। इसमें युक्ति यह है कि श्रीरघुनाथजीमें सन्देह करनेसे श्रीशिवजीकी वामाङ्गी और विष्णुवाहन गरुड़को भी सजा मिली, यह विचारकर और लोग सन्देह न करेंगे। युक्तिकी 'कहनूति (कथन) सीप है, अन्तमें श्रीरामरूपमें विश्वास होना मुक्ता (मोती) है।

टिप्पणी—१ पुरइन कहकर कमल कहना चाहिये था, सो न कहकर बीचमें मणि-सीप कहा। इसका कारण यह है कि 'पुरइनके नीचे मणिवाली सीपियाँ आकर रहा करती हैं, इसी तरह चौपाईके भीतर अनेक युक्तियाँ हैं। सुन्दर युक्ति सुन्दर मणिसीपी है। इसलिये पुरइन और मणि-सीप कहकर तब कमल कहा है। तालाबमें सीपी रहती है, इसलिये यहाँ सीपहीका वर्णन है, मणिसे कोई प्रयोजन नहीं।'

२—युक्तिके भीतर जो बात है वही मोती है अर्थात् युक्तिके भीतरकी बात शोभित है, जैसे सीपके भीतर मोती। जैसे सीपमें मोती नहीं दिखायी पड़ता, वैसे ही ग्रन्थकारने भी मोती नहीं खोला।

मा० प्र०—युक्ति इस मानसका मोती है। युक्ति और मोतीकी तुल्यता इस प्रकार है कि जैसे मोती जलसे होता है (स्वातिबूँद जो सीपके मुखमें पड़ता है वही मोती हो जाता है) और सारहीन है, केवल पानीका बुल्ला है फिर भी बड़े मोलका होता है और उसकी बड़ी शोभा होती है, वैसे ही युक्ति उक्तिसे होती है, इसलिये सारहीन है; परन्तु सुननेमें अच्छी लगती है, अतः सुन्दर है। पुनः, युक्ति जिससे कही जाती है वह उससे प्रसन्न होता है यही युक्तिका बड़ा मूल्य है। *'सीपि सुहाई'* से यहाँ 'सुबुद्धि' का ग्रहण है। पूर्व जो अष्ट प्रकारकी बुद्धि कही गयी है (दोहा ३६ चौ० ३ देखिये) उनमेंसे यह बारम्बार कथन-श्रवणरूपी 'पोहा' (आपोह) नामक बुद्धि है उसीमें युक्ति रहती है।

नोट—५ मा० प्र०, रा० प्र० और सू० मिश्र युक्तिको सीपका मोती और बुद्धिको *'सुहाई सीपी'* मानते हैं। पं० रा० कु०, बै०, पाँ० आदि अमूल्य मोतीको उत्पन्न करनेवाली सीपीको 'युक्ति' मानते हैं। मा० प्र०-कारने जो समानता दिखायी है वह बहुत सुन्दर है, पर मेरी समझमें चौपाईका अर्थ वही ठीक है जो पं० रा० कु० जीने किया है। युक्तिके भीतरकी बात मोती है। मोती बड़े मोलका होता है, वैसे ही यहाँ युक्तिके भीतर बुद्धिकी चतुरता भरी है, जो आशय दूसरेको उन वचनोंसे जनाना चाहते हैं यदि वह समझ ले तो उससे अच्छा विनोद भी होता है और युक्ति तथा कहनेवालीकी चतुरता भी सफल हुई, यही मोतीका बहुमूल्य है। [पाँडेजीका मत है कि युक्ति तो थोड़े दामकी सीपी है, पर वह रामयश मोती ही प्रकट करती है जो अमूल्य है और सुधाकर द्विवेदीजीका मत है कि—*'भगति सुतिय कलकरन बिभूषन'* यह मञ्जुमणि रामनामरूप मुक्ताकी सीपी है। अर्थात् युक्तिके भीतर रामनामरूप मुक्ता

भरी है। त्रिपाठीजीका मत है कि भगवान‍्के गुण-गण ही सीपके मोती हैं, यथा—*'जस तुम्हार मानसबिमल हंसिनि जीहा जासु। मुकताहल गुनगन चुनइ""॥'* (२। १२८)]

छंद सोरठा सुंदर दोहा। सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा॥ ५॥

अर्थ—इसमें जो सुन्दर छन्द, सोरठे और दोहे हैं वे ही बहुत रङ्गके कमलसमूह इसमें शोभित हैं॥ ५॥

नोट—१ छन्द—वह वाक्य जिसमें वर्ण वा मात्राकी गणनाके अनुसार विराम आदिका नियम हो। यह दो प्रकारका होता है—वर्णिक और मात्रिक। जिस छन्दके प्रतिपादमें अक्षरोंकी संख्या और लघु-गुरुका नियम होता है वह वर्णिक वा वर्णवृत्त और जिसमें अक्षरोंकी गणना और लघु गुरुके क्रमका विचार नहीं, केवल मात्राओंकी संख्याका विचार होता है वह मात्रिक छन्द कहलाता है। दोहा, चौपाई, सोरठा इत्यादि मात्रिक छन्द हैं। (श० सा०) देखिये मं० श्लो० १ और बा० (९। ९) दोहा, चौपाई, और सोरठाके अतिरिक्त जो छन्द इसमें आये हैं उन्हींको यहाँ **'छंद'** नामसे अभिहित किया है। इस ग्रन्थमें प्रायः सोलह प्रकारके छन्द पाये जाते हैं—

(१) **अनुष्टुप् छन्द** (वृत्त)—इसके प्रत्येक चरणमें आठ-आठ वर्ण होते हैं। चारों चरणोंमें पाँचवाँ वर्ण लघु और छठा गुरु होता है। दूसरे और चौथे चरणोंके सप्तम वर्ण भी लघु होते हैं। मानसमें इस वृत्तके सात श्लोक हैं। **'वर्णानामर्थसंघानां""'** मं० श्लो० १ से **'उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।""'** (श्लो० ५) तक पाँच हैं। **'यो ददाति सतां शम्भुः कैवल्यमपि दुर्लभम्।""'** (लं० मं० श्लो० ३) और **'रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं""'**। (७। १०८)

(२) **शार्दूलविक्रीडितवृत्त**—इसके प्रत्येक चरणमें उन्नीस वर्ण होते हैं जिसमेंसे अन्तिम वर्ण गुरु होता है। प्रत्येक चरणका स्वरूप यह है— मगण (ऽऽऽ), सगण (।।ऽ), जगण (।ऽ।) सगण (।।ऽ), तगण (ऽऽ।), तगण (ऽऽ।) ऽ। मानसमें ऐसे दस वृत्त आये हैं। **'यन्मायावशवर्तिविश्वमखिलं""'** (मं० श्लो० ६), **'यस्याङ्के च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके।'** "" (२. मं० श्लो० १)। **'मूलं धर्मतरोर्विवेक-जलधेः पूर्णेन्दुमानन्ददं""।'** (३. मं० श्लो० १) **'सान्द्रानन्दपयोद""।'** (३.मं० श्लो० २)। **'कुन्देन्दीवर-सुन्दरावतिबलौ""।'** (४. मं० श्लो०, १, २) इत्यादि।

(३) **वसन्ततिलका वृत्त**—इसके प्रत्येक चरणमें चौदह-चौदह अक्षर होते हैं। चरणका स्वरूप यह है—तगण (ऽऽ।) भगण (ऽ।।) जगण (।ऽ।) जगण (।ऽ।) ऽऽ। मानसमें ऐसे दो वृत्त आये हैं।— **'नानापुराणनिगमागम""'** (मं० श्लो० ७), **'नान्या स्पृहा रघुपते""'**। (५. मं० श्लो० २)

(४) **हरिगीतिका छन्द**—इसके प्रत्येक चरणमें अट्ठाईस मात्राएँ होती हैं। सोलहपर यति है, अन्तमें लघु और गुरु होता है। इसकी रचनाका क्रम यह है—२,३,४,३,४,३,४। (प्रायः प्रत्येक चरणमें १६-१२ मात्रापर विश्राम रहता है, पर मानसमें कहीं-कहीं इस छन्दमें १४-१४ पर विराम है।) किसी चौकलमें जगण (।ऽ।) न पड़ना चाहिये। मानसमें १४१ छन्द ऐसे आये हैं। *'मंगलकरनि कलिमलहरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।—'*(१। १०) *'भरे भुवन घोर कठोर रव रबि बाजि तजि मारगु चले॥'* (१। २६१) इत्यादि। श्रीसीयस्वयंवर और श्रीसियरघुवीरविवाह एवं उमा-शिवविवाह प्रसङ्गोंमें प्रायः इसी छन्दका प्रयोग हुआ है।

(५) **चवपैया छन्द**—इसके प्रत्येक चरणमें तीस-तीस मात्राएँ होती हैं और दस, आठ और बारह मात्राओंपर विराम होता है। चरणान्तमें एक यगण (।ऽऽ) वा एक सगण (।।ऽ) और एक गुरु रहता है। यह छन्द केवल बालकाण्डमें नौ आये हैं।—*'जय जोग बिरागा तप मख भागा श्रवन सुनै दससीसा'* *'जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता'*, *'भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।'* इत्यादि।

(६) **त्रिभङ्गी छन्द**—इसका प्रत्येक चरण बत्तीस मात्राओंका होता है। दस, आठ, आठ और छः मात्राओंपर विश्राम होता है। चरणान्तका वर्ण गुरु होता है। इस छन्दके किसी भी विरामके भीतर जगण (।ऽ।) न आना चाहिये। ऐसे पाँच छन्द केवल बालकाण्डमें हैं *'ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम*

प्रति बेद कहै', 'परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तपपुंज सही।' 'जो अति मन भावा सो बर पावा गै पतिलोक अनंद भरी।' तक चार छन्द हैं।

(७) **इन्द्रवज्रा वृत्त**—इसके प्रत्येक चरणमें ग्यारह-ग्यारह वर्ण होते हैं। इसका स्वरूप यह है—'तगण (ऽऽ।) तगण (ऽऽ।) जगण (।ऽ।) ऽऽ'। मानसमें ऐसा छन्द एक ही है परन्तु उसका चौथा चरण उपेन्द्रवज्राका है; क्योंकि उसके आदिमें जगण (।ऽ।) है। '**नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपित-वामभागम्। पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्॥**' (२. मं० श्लो०३)

(८) **वंशस्थविलम् वृत्त**। इसके चारों चरणोंमें बारह-बारह वर्ण होते हैं। स्वरूप यह है—जगण (।ऽ।) तगण (ऽऽ।) जगण (।ऽ।) रगण (ऽ।ऽ)। यह वृत्त केवल अयोध्याकाण्डमें एक बार आया है। '**प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः। मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा॥**' (मं० श्लो० २)

(९) **नगस्वरूपिणी वृत्त**—इसका प्रत्येक चरण आठ वर्णोंका होता है। स्वरूप यह है—'जगण (।ऽ।) रगण (ऽ।ऽ) ।ऽ'। अर्थात् इसके दूसरे, चौथे, छठे और आठवें वर्ण गुरु हैं। क्रमसे लघु-गुरु वर्ण आते हैं। श्रीअत्रिजीकृत स्तुतिमें ऐसे बारह वृत्त हैं और उत्तरकाण्डमें एक है। '**नमामि भक्तवत्सलं कृपालु शील कोमलं।**' '**विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे॥**'

(१०) **तोमर छन्द**—इसके चारों चरण बारह-बारह मात्राके होते हैं, अन्तमें गुरु-लघु वर्ण रहते हैं। अरण्यकाण्डमें खर-दूषणयुद्धमें छः (वा, ६॥) और लङ्काकाण्डमें रावणयुद्धमें सोलह ऐसे छन्द हैं। *'तब चले बान कराल। फुंकरत जनु बहु ब्याल॥' 'जब कीन्ह तेहि पाखंड। भए प्रगट जंतु प्रचंड॥'* (६। १००) *'जय राम सोभाधाम। दायक प्रनत बिश्राम॥'* (६। ११२)

(११) **मालिनी वृत्त**—इसके प्रत्येक चरणमें पन्द्रह अक्षर होते हैं। स्वरूप यह है—दो नगण (।।।,।।।) एक मगण (ऽऽऽ) दो यगण (।ऽऽ,।ऽऽ)। यह केवल सुन्दरकाण्डमें एक आया है। '**अतुलितबलधामं स्वर्णशैलाभदेहं दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्**……।'

(१२) **स्रग्धरा वृत्त**—इसके प्रत्येक चरण इक्कीस-इक्कीस अक्षरके होते हैं। चरणका स्वरूप यह है—मगण, रगण, भगण, नगण और तीन यगण। ऽऽऽ, ऽ।ऽ, ऽ॥, ।।।, ।ऽऽ, ।ऽऽ, ।ऽऽ। सात-सात अक्षरोंपर यति है। मानसमें ऐसे दो वृत्त हैं। '**रामं कामारिसेव्यं भवभयहरणं कालमत्तेभसिंहं**—। (लं० मं० १) '**केकीकण्ठाभनीलं सुरवरविलसद्विप्रपादाब्जचिह्नं**।……' (उ० मं० १)

(१३) **डिल्ला छन्द**—इसके चारों चरण सोलह मात्राके होते हैं। प्रत्येक चरणके अन्तमें भगण (ऽ॥) का रहना आवश्यक है। लङ्काकाण्डमें श्रीशिवकृत स्तुति इस छन्दमें है। '**मामभिरक्षय रघुकुलनायक। धृत बर चाप रुचिर कर सायक ॥**—'(६। ११४)

(१४) **तोटक वृत्त**—इसका प्रत्येक चरण बारह अक्षरोंका होता है, चार सगण (॥ऽ) प्रत्येक चरणमें होते हैं। अर्थात् तीसरा, छठा, नवाँ और बारहवाँ वर्ण गुरु होते हैं। केवल लङ्काकाण्डमें ब्रह्माकृत स्तुति और उत्तरकाण्डमें श्रीशिवकृत स्तुति इस वृत्तमें हैं। *'जय राम सदा सुखधाम हरे। रघुनायक सायक चाप धरे।'*…' (लं० ११०) *'जय राम रमारमनं समनं……।'* (७। १४)

(१५) **रथोद्धता वृत्त**—इसके चारों चरणोंमें ग्यारह-ग्यारह अक्षर होते हैं। स्वरूप यह है—'रगण (ऽ।ऽ) नगण (।।।) रगण (ऽ।ऽ) ।ऽ'। इसके दो वृत्त केवल उत्तरकाण्डमें आये हैं। '**कोसलेन्द्रपदकंजमञ्जुलौ कोमलावजमहेशवन्दितौ।**—'(मं० श्लो, २) '**कुन्दइन्दुदरगौरसुन्दरं**—। (मं० श्लो० ३)

(१६) **भुजङ्गप्रयात वृत्त**—इसका प्रत्येक चरण बारह-बारह अक्षरका होता है। चरणमें चार यगण (।ऽऽ) होते हैं अर्थात् पहला, चौथा, सातवाँ और दसवाँ वर्ण लघु रहता है। विप्रकृत शिवस्तुति '**नमामीशमीशान निर्वाणरूपं**……' में इसके आठ वृत्त आये हैं और कहीं नहीं।

नोट—२ *'सोरठा सुंदर दोहा'* इति। (क) सोरठाके पहले और तीसरे चरणोंमें ग्यारह-ग्यारह तथा

दूसरे और चौथे चरणोंमें तेरह-तेरह मात्राएँ होती हैं। इसके दूसरे और चौथे चरणोंमें जगण (।ऽ।) न आना चाहिये तथा इनके आदिमें त्रिकलके पश्चात् दो गुरु नहीं आते। सोरठाके चरणोंको उलटकर पढ़नेसे दोहा बन जाता है। अर्थात् दोहेके प्रथम और तृतीय चरणोंमें तेरह-तेरह और द्वितीय और चतुर्थ चरणोंमें ग्यारह-ग्यारह मात्राएँ रहती हैं। (ख) 'सुन्दर' देहलीदीपकन्यायसे सोरठा और दोहा दोनोंके साथ है। सुन्दर सोरठा वह है जिसके द्वितीय और चतुर्थ चरणमें जगण (।ऽ।) नहीं आता। जगणके आनेसे छन्दकी गति बिगड़ जाती है और वह अशुभ माना जाता है। सुन्दर दोहा वह है जिसके पहले और तीसरे चरणोंके आदिमें जगण न हो, नहीं तो उस दोहेकी चण्डालिनी संज्ञा हो जाती है जो अति निन्द्य है। यदि पूरे शब्दमें जगण पड़े तभी वह निन्द्य समझा जाता है। यदि पहला और दूसरा अक्षर मिलकर एक शब्द बन जाता हो और तीसरा अक्षर किसी दूसरे शब्दका अङ्ग हो तो दोष नहीं पड़ता। यथा—*'भलो भलाइहि पै लहै लहै निचाइहिं नीचु।'*—यहाँ दो अक्षर मिलकर *'भलो'* शब्द पृथक् है और *'भलाई'* का प्रथमाक्षर भी मिलनेसे जगण हुआ। अतः इसमें दोष नहीं है। (ग) ☞हमारे धर्मग्रन्थोंमें अठारह संख्यासे अधिक काम लिया है। पुराणोंकी संख्या अठारह है, महाभारतमें अठारह पर्व हैं, गीतामें अठारह अध्याय हैं, अठारह अक्षौहिणी सेना है, अठारह दिन युद्ध होता है, श्रीगोस्वामीजीने भी श्रीरामचरितमानसमें अठारह प्रकारके छन्दोंसे ही काम लिया है। इस अठारह संख्याके रहस्यपर विद्वानोंको दृष्टिपात करना चाहिये। (वि० त्रि०) [दोहा और सोरठा भी छन्द हैं, पर गोस्वामीजीने इनको पृथक् रखा है]।

नोट—३ *'बहु रंग कमल'* इति। (क) श्रीरामचरितमानसमें चार प्रकारके कमलोंका वर्णन पाया जाता है। अरुण, श्वेत, नील और पीत। प्रमाण यथा—*'सुभग सोन सरसीरुह लोचन।'* (१। २१९। ६) *'जहँ बिलोक मृग सावक नैनी। जनु तहँ बरिस कमल सित श्रेनी॥'* (१। २३२। २) *'नील पीत जलजाभ सरीरा।'* (१। २३३। १) चारों रङ्गोंके कमलोंके प्रमाण *'मानिक मरकत कुलिस पिरोजा। चीरि कोरि पचि रचे सरोजा॥'* (१। २८८। ४) इस एक ही चौपाईमें मिल जाते हैं। माणिक्य लाल, मर्कत नील, कुलिश श्वेत और पीरोजा पीले रङ्गका होता है। हिन्दी-शब्दसागरमें भी चार रङ्गके कमलोंका उल्लेख मिलता है। रक्त कमल भारतके प्रायः सभी प्रान्तोंमें मिलता है। इसे संस्कृतमें कोकनद, रक्तोत्पल, हल्लक इत्यादि कहते हैं। श्वेत कमल काशीके पास और संयुक्तप्रान्तके अन्य स्थानोंमें भी होता है। इसे शतपत्र, महापद्म, नल, सिताम्बुज इत्यादि कहते हैं। नील कमल विशेषकर काश्मीरके उत्तर तिब्बत और कहीं-कहीं चीनमें होता है। पीत कमल अमेरिका, साइबीरिया, उत्तर जर्मनी इत्यादि देशोंमें मिलता है। अधिकतर लाल, श्वेत और नील कमल देखे गये हैं। ☞सम्भव है कि इसी विचारसे 'छन्द, सोरठा, दोहा तीन ही नाम स्पष्ट लिखे गये। दोहे सबसे अधिक हैं। अतः वे लाल हैं। सोरठे उनसे कम हैं अतः वे श्वेतकमल कहे जा सकते हैं और छन्द नील (वा, नील और पीत) कमल हैं।'

श्रीबैजनाथजी भी चार रङ्गके कमल मानकर लिखते हैं कि 'अहल्यास्तुतिमें त्रिभङ्गी ३२ मात्राकी, जन्मसमय चवपैया ३० मात्राकी, ब्याहसमय हरिगीतिका २८ मात्राकी, इत्यादि बड़े छन्द श्याम कमल हैं। वैद्यकमुनि (भुशुण्डीजीके गुरु) को भुजङ्गप्रयात, राज्याभिषेकसमय शिवजीका तोटक, अत्रिमुनिकी नगस्वरूपिणी इत्यादि श्वेत कमल हैं। खर-दूषणके युद्धका तोमर १२ मात्राका पीत कमल है। सोरठा और दोहा लाल वर्णके कमल हैं। बड़े-बड़े छन्द सहस्रदलवाले कमल हैं, मध्यवाले शतदलके और सोरठा, दोहा आदि छोटे कमल हैं।

सू० प्र० मिश्रजीका मत है कि छन्द, सोरठा, दोहा तीन नामोंका उल्लेख करके कमलके तीन भेद सूचित किये। कोशोंमें श्वेत, रक्त और नील तीन ही भेद लिखे हैं। ग्रन्थकारने जो चौथे प्रकारका कमल लिखा है वह इससे कि पीतका अन्तर्भाव श्वेतमें है, इसीलिये लक्ष्मणजीकी उपमा पीतसे दी है। (परन्तु श० सा० से इसका विरोध होता है।)

बाबा जानकीदासजीका मत है कि छन्द, सोरठों और दोहोंको बहुरङ्गके कमल कहकर जनाया कि

इनका रङ्ग त्रिगुणमय है। जो रजोगुणी वाणीमें हैं वे लाल रङ्गके कमल हैं। तमोगुण वाणीवाले श्याम हैं और जो सत्त्वगुणी वाणीमें हैं वे श्वेत कमल हैं। जितने छन्द, सोरठे और दोहे हैं वे त्रिगुणमय वाणीमें हैं। जो पीतकमल भी मानते हैं वे पीतरङ्गके कमलोंको गुणातीत मानते हैं। इस तरह विषयभेदसे छन्दादि सात्त्विक, राजस, तामस और गुणातीत माने गये हैं। यथा—*'को जान केहि आनंद बस सब ब्रह्मु बर परिछन चली।'* (१। ३।१८) *'पहिचान को केहि जान सबहि अपान सुधि भोरी भई। आनंद कंदु बिलोकि दूलहु उभय दिसि आनंद मई॥'* (१। ३२१) *'लागे पखारन पाय पंकज प्रेम तन पुलकावली।'* (१। ३२४) इत्यादि सात्त्विक श्वेत रङ्गके हैं। रामराज्य प्रसङ्गके छन्दादि राजस लाल रंगके कमल हैं। यथा—*'रामराज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं। काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं॥'* (७। २१) *'दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्यसमाज।'* (७। २२) *'मनिदीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरी बिद्रुम रची।'''''* (७। २७) इत्यादि। खर-दूषण, मेघनाद, रावणके युद्धोंवाले छन्द तामसिक नीले रङ्गके कमल हैं। *'ग्रान गिरा गोतीत अज माया मन गुन पार ——।'* (७। २५) *'जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने।—'*(७। १३) *'जय राम रूप अनूप निर्गुन सगुन गुन प्रेरक सही।—'*(३। ३२) इत्यादि जहाँ गुणातीतरूपका वर्णन है वे गुणातीत पीत रङ्गके कमल कहे जायँगे।

पाँडेजीका मत है कि 'बहुरंग कहकर जनाया कि अनेक रंगके रस उनमें भरे हुए हैं।' पं० राजकुमारजी एक खर्रेमें लिखते हैं कि 'जिस रसके सम्बन्धमें जो छन्द, सोरठे, दोहे हैं वे उसी रङ्गके कमल हैं और जहाँ रसोंका मिलाप है वहाँ रंगका भी मिलाप जानिये। यथा—*'आइ गए हनुमान जिमि करुना महँ बीररस', 'बध लायक नहिं पुरुष अनूपा।—', 'रामहि चितै रहे भरि लोचन। रूप अपार—'* इत्यादि। पुरइनके रंगसे छन्दादि कमलोंको रंगकी प्राप्ति है, मूल कारण पुरइन है। कारणके अनुकूल कार्य होता है। इसीसे पुरइनमें रंग न कहा।'

नोट—४ *'कमल कुल'* इति। कुल=समुदाय, समूह, घराना, यथा—*'भानु कमल कुल पोषनिहारा।'* (२। १७) *'कमल कुल'* कहकर जनाया कि प्रत्येक रंगके भी अनेक प्रकारके कमल होते हैं, जिनके भिन्न-भिन्न नाम होते हैं। एक जाति और रंगके जितने कमल होंगे वे सब एक कुलके माने जायँगे। इसी तरह छन्द, सोरठा और दोहाके भी अनेक भेद हैं जिन्हें एक-एक 'कुल' कह सकते हैं।

रा० प्र० का मत है कि 'कुल' से शतपत्र, सहस्रपत्र आदि कमल जानना चाहिये। परन्तु सू० प्र० मिश्रजी कहते हैं कि शतपत्र आदि कमलके भेद नहीं हैं, वे तो नामान्तर ही हैं। द्विवेदीजीका मत रा० प्र० से मिलता है वे लिखते हैं कि—'चौपाई पुरइनिसे भिन्न ललित छन्द, सोरठे, दोहे, सहस्रपत्र, शतपत्र, पुण्डरीक, नील कमल, कोकनद इत्यादि ऐसे सोहते हैं। 'कुल' का लेखा वर्ण और मात्रासे है। मानसके कमल अष्टदलसे लेकर बत्तीस दलतकके हैं।'

नोट—५ चौपाईको पुरइन और छन्द, सोरठा, दोहाको कमल कहकर सूचित करते हैं कि—(क) सब पुरइनोंमें कमल नहीं होता, इसीसे इस ग्रन्थमें भी कहीं ८ पर, कहीं १०, ११, १३, इत्यादि चौपाइयों (अर्धालियों) पर दोहा, सोरठा या छन्द दिया गया है। (ख) दोहा, सोरठा और छन्द ये सब चौपाईसे निकलते हैं जैसे कमल पुरइनसे निकलते हैं। (ग) चौपाई सोलह मात्राओंकी होती है अतः वह पुरइन ठहरी। सोरठे-दोहे उससे बड़े (अर्थात् चौबीस मात्राओंके) होते हैं और छन्द उनसे भी बढ़े हुए हैं। उन्हें कमल कहा, क्योंकि ये पुरइनोंके ऊपर रहते हैं; चौपाइयोंके बीच-बीचमें छन्दादि होते हैं जैसे पुरइनोंके बीच-बीचमें कमल। (पाँ०) पुरइनसे कमलका और चौपाइयोंसे छन्दादिका निकलना इस प्रकार है। यथा—*'सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा। सेवत जाहि सदा मुनिधीरा॥'* इस चौपाईसे *'मुनि धीर जोगी सिद्ध संतत बिमल मन जेहि ध्यावहीं।—'*(१। ५१) यह छन्द निकला। पुरइनका रंग इसमें आ गया *'मुनि धीर जेहि ध्यावहीं'* और *'सेवत जाहि सदा मुनि धीरा।'*

त्रिपाठीजी—१ श्रीरामचरितमानसका ठीक अर्थ लगानेके लिये, प्रत्येक पुरइन और कमलका हाल जानना

होगा। दोनोंका पूरा पता लगाये बिना अर्थ नहीं लगेगा। यथा—'*तीनि अवस्था तीन गुन तेहि कपास ते काढ़ि।*' इस कमलकी पुरइनका पता लगाये बिना शङ्का बनी रहती है कि '*केहि कपास ते काढ़ि?*' क्योंकि यहाँ कपासका उपमेय कहा ही नहीं गया। यह कमल तो खिला उत्तरकाण्डमें और पुरइनका पता लगा बालकाण्डमें '*साधुचरित सुभ चरित कपासू। निरस बिसद गुनमय फल जासू॥*' अब अर्थ खुल गया कि साधुचरित ही कपासका गुनमय फल है। पुनश्च यथा—'*सुनि भूपाल भरत ब्यवहारू। सोन सुगंध सुधा ससि सारू॥*' यह पुरइन है। यहाँ भरत-व्यवहारको सोना कह रहे हैं और उसमें सुगन्ध और स्वाद भी बतला रहे हैं, पर यह न जान पड़ा कि 'व्यवहारमें क्या सुवर्ण है और क्या सुगन्ध एवं स्वाद? इस पुरइनका सम्बन्ध किन-किन पुरइनों और कमलोंसे है यह पता लगाये बिना अर्थ नहीं खुलता। '*सोन*' का सम्बन्ध '*कनकहिं बान चढ़इ जिमि दाहें। तिमि प्रियतम पद नेम निबाहें॥*' तथा '*कसें कनक मनि पारिख पाएँ।*' से है। अर्थ स्पष्ट हो गया कि नेमनिर्वाह ही 'सोना' है। '*सुगंध*' का सम्बन्ध '*भायप भलि चहुँ बंधु की जल माधुरी सुबास*' इस कमलसे है। अर्थ स्पष्ट हो गया कि भरतजीका भायप ही सोनेमें सुगन्ध है। इसी तरह '*सुधा ससि सारू*' का सम्बन्ध '*परम पुनीत भरत आचरनू।—— राम सनेह सुधाकर सारू।*' (२। ३२६) से है। अर्थ स्पष्ट हो गया कि भरतजीका आचरण ही 'सुधाकर सार' अर्थात् स्वाद है। तालाबमें जो पुरइनें होती हैं उनके फैलनेका कोई नियम नहीं है, कोई किधर जाती है, कोई किधर जाती है। इसी भाँति छन्द, सोरठा, दोहा और चौपाइयोंका भी कोई नियम नहीं है।

☞ऐसी पुरइनें बहुत हैं जिनसे फूल नहीं निकले हैं, पर ऐसे कमल नहीं हैं जिनमें पुरइन न हो। इनके कुछ नियम जो हाथ लगे हैं वे ये हैं—(क) कहीं फूले हुए कमल हैं, यथा—'*तात स्वर्ग अपबर्ग सुख* ——' (५। ४) यह '*तात मोर अति पुन्य बहूता* ——' (५। ८) पुरइनका कमल है। दूतके दर्शनमात्रके सुखकी विशद व्याख्या है। (ख) कहीं कली विकसित हो रही है, आगे उसीका विकास हो रहा है यथा—'*कनककोट कर परम प्रकासा*' का विकास '*कनककोट बिचित्र मनिकृत*——' में है। (ग) कहीं एक पुरइनमें एकाधिक कमल फूले हैं। यथा—'*करि मज्जन पूजहिं नर नारी। गनप गौरि तिपुरारि तमारी॥—— रमारमन पद बंदि बहोरी।*——' (२। २७३) इन पुरइनोंसे चार कमल बालकाण्डके मं० सोरठारूपमें निकले। प्रथम चारों सोरठोंमें '*बंदौं*' पद नहीं आया, क्योंकि पुरइनमें आ चुका है। (घ) कहीं अनेक स्थानोंकी पुरइनें इकट्ठी होकर फूली हुई हैं, जिनसे फूलोंका गुच्छा बन गया है। तीन दोहोंके बाद तीन सोरठा और फिर एक दोहा आया है, इस भाँति कमलोंका गुच्छा बन गया है और उन सबोंकी पुरइनें सब एक जगहकी नहीं हैं। यथा—'*सरल कबित कीरति*—— ' (१। १४) इन दोनों कमलोंमें पुरइन है '*कीरति भनिति भूति भलि सोई।*——' और इसके आगेवाले दोहे '*कबि कोबिद रघुबर चरित* ——।' (१। १४) की पुरइन '*कबि कोबिद अस हृदय बिचारी।*—— '(१। ११। ६) है जो कुछ दूरसे आयी है।—दोहा १४ में चार दोहे और तीन सोरठे एकत्र आये हैं, इनसे सम्बद्ध चौपाई दूर-दूरसे आयी है। (ङ) कहीं जहाँ-की-तहाँ पुरइनें फूली हुई हैं। उदाहरण '(क)' में आ गया है। (च)—कहीं बहुत दूर जाकर पुरइन फूल देती है, यथा—'*भरि लोचन छबि सिंधु निहारी। कुसमय जानि न कीन्हि चिन्हारी॥*' (१। ५०। २) यह पुरइन जाकर लङ्काकाण्डमें '*देखि सुअवसर प्रभु पहिं आए संभु सुजान।*——' (६। १४) में फूली। (छ)—कहीं एक पुरइन दूसरेसे सम्बद्ध है। यथा—'*बार बार रघुबीर सँभारी।*——'(५। १। ६) का सम्बन्ध '*हनुमत जन्म सफल करि माना। चलेउ हृदय धरि कृपानिधाना॥*' (४। २३) से है। हनुमान्‌जी '*कृपानिधान*' को धारण करके चले थे, इसीलिये उन्हें सँभाल रहे हैं।

वि० त्रि०—२ '*सोहा*' इति। (क) कमलोंके फूलनेसे ही सरोवरकी शोभा होती है, यथा—'*फूले कमल सोह सर कैसा। निर्गुन ब्रह्म सगुन भए जैसा॥*' इसी भाँति छन्द, सोरठा, सुन्दर दोहासे श्रीरामचरिमानसकी शोभा है। अत: जहाँ शोभातिशयका प्रकरण आ गया है, वहाँ छन्दोंकी भी भरमार है। श्रीशङ्करभगवान्‌के व्याहमें चार-चार चौपाईके बाद एक छन्द और एक सोरठा या एक दोहा है। इस भाँति ग्यारह (रुद्र

संख्यक) छन्द इकट्ठे आये हैं, श्रीरामजीके ब्याहमें इसी भाँति बारह (आदित्य संख्यक) छन्द इकट्ठे आये हैं, श्रीराम-रावण युद्धमें इसी भाँति सत्ताईस (नक्षत्र संख्यक) छन्द इकट्ठे आये हैं। ये संख्याएँ भी सप्रयोजन हैं। (ख) जिन देशोंके दृश्यसे साम्यकी शोभा है, वहाँके चरित्रमें पुरइन और कमलोंके क्रम और संख्यामें भी समता है, यथा—बालकाण्डमें प्रायेण चार चौपाइयोंके बाद दोहा आता गया है, अयोध्याकाण्डमें तो चार चौपाइयोंके बाद एक दोहा और २४ दोहोंके बाद पचीसवाँ एक छन्द और सोरठा बराबर आता है, फिर भी सरोवरके पुरइन और कमलसे उपमित होनेके कारण किसी क्रमको पूरी तरहसे निबहने नहीं दिया है। (ग) जिन देशोंमें दृश्यवैषम्यकी शोभा है, वहाँ कमल भी उसी रीतिसे फूले हैं। कहीं एक पुरइनके बाद भी कमल है और कहीं १७ पुरइनतक कमलका पता नहीं है।

अरथ अनूप सुभाव सुभासा। सोइ पराग मकरंद सुबासा॥ ६॥

अर्थ—उपमारहित अर्थ, सुन्दर भाव और सुन्दर भाषा ही पराग, मकरन्द (पुष्परस जो परागके नीचे होता है) और सुगन्ध हैं॥ ६॥

त्रिपाठीजी—ग्रन्थकारका कहना है कि इस ग्रन्थमें उपमारहित अर्थ हैं। 'यह समझनेकी बात है कि इतने बड़े विनम्र होते हुए ग्रन्थकार रघुवंश, नैषध, किरात, माघादिके विद्यमान रहनेपर भी अपनी कविताके अर्थको अनूप कहनेका दावा क्यों करते हैं? क्या अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जनाके अतिरिक्त कोई चौथा रास्ता है?' बात यह है कि ग्रन्थकारने मानसमें स्नानका फल *'महाघोर त्रयताप न जरई'* यह बताया है। अतः यह ग्रन्थ इस दृष्टिसे रचा गया है कि इसके आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीन प्रकारके अर्थ हों। आधिभौतिक अर्थसे भौतिक, आधिदैविकसे दैविक और आध्यात्मिक अर्थसे आध्यात्मिक ताप नष्ट होते हैं।—यही अर्थकी अनूपता अपूर्वता है।

आधिभौतिक अर्थ वह है जिसे आज-कलके ऐतिहासिक सत्य कहते हैं। वही माधुर्यलीला आधिभौतिक अर्थ है। भुशुण्डीजीके मूल रामचरितमानससे यदि पहला, दूसरा और अस्सीवाँ प्रसङ्ग हटा दिये जावें तो आधिभौतिक रामचरितमानसका एक्यासी सूत्रों (प्रसङ्गों) में पूरा वर्णन आ जाता है। यह संसारके बड़े कामका है।

आधिदैविक अर्थ—जैसे नाटकमें हरिश्चन्द्रका खेल देखकर साधारण दर्शकोंको भी आनन्द होता है और उससे शिक्षा भी मिलती है। पर नाटकके रसिकोंको उतनेहीसे तृप्ति नहीं होती, उन्हें उन पात्रोंकी भी खोज होती है जिन्होंने अभिनय किया था। इसी भाँति आधिदैविक चरित्र सम्पूर्ण जगत्‌के लिये हैं, पर भक्तोंका तो यह सर्वस्व है। यदि इस जगत्‌का कोई नियामक है तो यह भी आवश्यक है कि कभी वह इस संसारमें अवतीर्ण हो। इस संसार-नाट्यशालामें इसके सूत्रधार स्वयं रङ्गमञ्चपर आ भी जाते हैं। महर्षि वाल्मीकि, अगस्त्य, शरभंग आदि जानकार लोग उन्हें उसी समय पहचान भी लेते हैं। आधिभौतिक और आधिदैविक दोनों चरित्र साथ-साथ चलते हैं, फिर भी ग्रन्थकारने १। १११ से १। १८६ तक पचहत्तर दोहोंमें शुद्ध आधिदैविक चरित्र ही कहा है। आधिभौतिकसे शिक्षामात्र मिलती है, पर संसार-सागर-सन्तरण तो आधिदैविक माहात्म्यके साथ यशोगानसे ही होता है।

आध्यात्मिक अर्थ भी इसमें है। जैसे ब्रह्माण्डके कल्याणके लिये श्रीरामावतार होता है वैसे ही जीवके इस पिण्डमें नामावतार होता है। दुःख, दोष, कलिमल और मोहमें पड़ा हुआ जीव अत्यन्त सन्तप्त हो रहा है, उसके उद्धारका उपाय यह है कि इस पिण्डमें श्रीरामजीके नामका अवतार हो। नामावतारसे जीवका कल्याण होता है। यह आध्यात्मिक अर्थ है। श्रीरामचरित्रका जाननेवाला स्पष्ट अपने शरीरमें देख सकता है कि इस समय कौन-सा राक्षस उत्पात कर रहा है और नामके प्रयोगसे उससे छुटकारा पा सकता है। सम्पूर्ण कथामें ये तीनों अर्थ अनवरत चले जाते हैं। यही यहाँ अर्थकी अपूर्वता है।

नोट—१ *'सुभाव'* इति। चित्त द्रव्य लाखकी भाँति स्वभावसे ही कठिन होता है, तापक विषयके योगसे वह पिघल उठता है। काम, क्रोध, भय, स्नेह, हर्ष, शोक और दयादिक चित्तके लिये तापक हैं।

इन्हींके योगसे वह पिघलता है और इनके शान्त हो जानेपर फिर कठिन हो जाता है। चित्तकी पिघली हुई दशामें जिस बातका रंग उसमें चढ़ जाता है, उसी रंगको संस्कार, वासना, भावना या भाव कहते हैं। यह भाव यदि रसके अनुकूल हो तो उसे 'सुभाव' कहते हैं। (वि० त्रि०) अन्य लोगोंने 'सुन्दर भाव' अर्थ किया है।

नोट—२ ***'सुभाषा'*** इति। संस्कृतमें सबका अधिकार नहीं है, भाषामें आ-पामर सबका जन्मसिद्ध अधिकार है। अतः रामयशवर्णनके लिये लोकोपकार-दृष्ट्या लोकभाषा ही सुभाषा है। यथा— ***'कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुर सरि सम सब कहँ हित होई॥'*** पर लोकभाषाके अवान्तर अगणित भेद हैं। अवधनरेश भगवान् मर्यादापुरुषोत्तमके चरित्रवर्णनमें गोस्वामीजीने अवधी-भाषाका प्रयोग किया। पुनः, मानसमें श्रुति कटु, भाषाहीन, क्लिष्ट, अश्लीलादि शब्ददोष, प्रतिकूलाक्षर, व्याहत, पुनरुक्ति, दुष्क्रम आदि अर्थदोष तथा अङ्गवर्णन अङ्गीविस्मरणादि रस दोषके न होनेसे ***'सुभाषा'*** कहा। अथवा अलङ्कृत शब्द होनेसे ***'सुभाषा'*** कहा। (वि० त्रि०)

नोट—३ ऊपर कमल बताया, कमलमें पराग, मकरन्द और सुगन्ध होती है। अब यहाँ बताते हैं कि इस मानसमें वे क्या हैं। 'अर्थ भाव और भाषा' की 'पराग, मकरन्द और सुवास' से क्या समता है? यह महानुभावोंने इस प्रकार दिखाया है कि (क) शब्दके भीतर अर्थ होता है, वैसे ही पराग फूलकी पाखुरी (पङ्खुड़ी) से मिला हुआ भीतरकी ओर पहिले ही दिखायी देता है। मकरन्द परागके नीचे रहता है जो साधारणतः दिखायी नहीं देता, इसी तरह शब्दोंके भीतर अर्थके अभ्यन्तर सुन्दर भाव भरे होते हैं। जैसे फूलकी सुगन्धका फैलाव दूरतक होता है, वैसे ही इसमें भाषा दूर-दूरकी है और दूर-दूरके देशोंमें भी इसका प्रचार हो रहा है, इसकी प्रशंसा हो रही है। इसमें पंजाबी, बंगाली, फ़ारसी, अर्बी, अवधी, बघेलखण्डी, ब्रज, बुँदेलखण्डी, मराठी, बैसवारी, भोजपुरी इत्यादि अनेक देशोंकी भाषाओंके भी शब्द आये हैं, यद्यपि यह ग्रन्थ अवधी भाषाका ही है। (ख) जब भ्रमर कमलपर बैठता है तब कमलसे पराग उड़ता है, मकरन्द झड़ता (वा टपकता) है और सुवास फैलती है, वैसे ही जब सुकृती पुरुषोंके चित्त-भ्रमर छन्दादि कमलोंपर बैठते हैं तब अर्थ परागका विकास होता है, भाव-मकरन्दकी झड़न होती है और सुभाषासुगन्ध (सन्निकट श्रोताओंके अङ्गमें) बिध जाती है। (मा० प्र०, रा० प्र०, खर्रा) ***'सुभाषा'*** का भाव कि इसमें भाषालालित्य है।

(ग)—अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना शक्तियोंसे अर्थ होता है। शक्तियोंके भेदसे अर्थ भी वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य तीन प्रकारके होते हैं। वे तीनों प्रकार अर्थके अन्तर्गत हैं। इसी भाँति परागमें तीन गुण हैं—सौन्दर्य, सौगन्ध्य और सारस्य। यथा—***'बंदउँ गुरु पद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा॥'*** यहाँ वाच्यको सुगन्ध कहा है, क्योंकि पृथक्-पृथक् शब्दके पृथक्-पृथक् अर्थ उसी भाँति नियत हैं जिस भाँति भिन्न-भिन्न पुष्पोंके भिन्न-भिन्न गन्ध नियत हैं। एवं लक्ष्यार्थको सौन्दर्य कहा क्योंकि वाच्यार्थसे जब अन्वय या तात्पर्यकी उत्पत्ति नहीं होती, तो उसे छोड़कर सुन्दर अर्थ ग्रहण किया जाता है, जिसमें अन्वय और तात्पर्य बन जायँ। व्यंग्य तो काव्यका प्राण ही है, इसीलिये उसे सारस्य कहा। सुभाव मकरन्द (पुष्परस) है, क्योंकि आनन्द तो सुन्दर भावसे ही होता है। यथा—***'मातु बचन सुनि अति अनुकूला। जनु सनेह सुरतरु के फूला॥ सुख मकरंद भरे श्रियमूला।'*** (२। ५३) पराग स्पष्ट रहता है और मकरन्द अन्तर्गत होता है, भौंरेको ही मिलता है। अतः सुभावको मकरन्द कहा। सुभाषा सुगन्ध है क्योंकि भाषाका प्रभाव सुगन्धकी भाँति दूरतक पहुँचता है। अर्थ और भाव अलग रखा रहे, सुकविकी भाषामें ही ऐसा प्रभाव है कि उसके सुननेमात्रसे श्रोताको आनन्द आ जाता है। यथा—***'सरल कबित कीरति बिमल सोइ आदरहिं सुजान। सहज बयर बिसराइ रिपु जो सुनि करहिं बखान॥'***, **'तया कवितया किं वा किं वा वनितया तया। पादनिक्षेपमात्रेण यया न हरते मनः॥'** (वि० त्रि०)

(घ)—मा० मा० कारका मत है कि 'यथासंख्यसे अर्थ करनेसे भाव बिगड़ जाता है, क्योंकि भावको

मकरन्द और सुभाषाको सुवास माननेसे यह अर्थ करना पड़ेगा कि भावोंके अभ्यन्तर भाषाएँ हैं (क्योंकि मकरन्दके अभ्यन्तर सुवास होता है न कि सुवासके अभ्यन्तर मकरन्द) तो भाषा ऊपर नजर आवेगी या भावादि निकालनेपर भाषापर दृष्टि पड़ेगी। इससे यहाँ क्रम-विपर्यय-अलङ्कारसे अर्थ करनेपर सङ्गति ठीक बैठती है।'

भाषाएँ प्रथम ही दिखायी देती हैं अतः वे पराग हैं, परागके मध्य मकरन्द 'वैसे ही भाषाके मध्य अर्थ, अतः मकरन्द अर्थका रूपक है। और मकरन्दके अभ्यन्तर सुगन्ध, वैसे ही अर्थके भीतर सुन्दर भाव हैं जो मानसरामायणका सार है जिसका फैलाव दूर-दूरतक है। यद्यपि अनेकों ग्रन्थ मौजूद हैं तथापि मानसके भावोंके सामने सब तुच्छ हैं।'

नोट—४ अनुपम अर्थ और सुन्दर भावके उदाहरण श्रीसुधारकर द्विवेदीजी इस प्रकार देते हैं। (क) *'भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।'* इस छन्दमें कृपालासे दिखलाया कि भूमि और देवताओंपर कृपा करके प्रकट हुए। केवल माताको अपना विष्णुरूप दिखलाया। यद्यपि दशरथने इनके वियोगमें प्राण-त्याग किया तथापि पहले वैवस्वतमनुरूपके समयमें जिस रूपका दर्शन किया था उस रूपमें रामको कभी नहीं देखा, इसलिये *'कौसल्या हितकारी'* कहनेका भाव बहुत ही रोचक है।' (ख) *'मुक्ति जन्म महि जानि— सो कासी सेइय कस न।'* में *'सो कासी'* एक पद करनेसे जो सोक (जन्ममरणदुःख) के काटनेके लिये तलवार है, इसलिये इसे क्यों न सेइये' यह 'अनुपम' अर्थ होता है। (ग) *'प्रभुहिं चितइ पुनि चितव महि राजत लोचन लोल……।'* इसमें बार-बार रामको देखकर फिर सङ्कोचसे माताको देखना, यह सब अनुपम अर्थ और भाव हैं।

वे लिखते हैं कि 'यहाँ भावसे ग्रन्थकारके अभिप्रायको लेना चाहिये। जिस भावको साहित्यदर्पण-में **'निर्विकारात्मके चित्ते भावः प्रथमविक्रिया'** लिखते हैं। और जिसका उदाहरण—**'स एव सुरभिः कालः स एव मलयानिलः। सैवेयमबला किन्तु मनोऽन्यदिव दृश्यते ॥ यः कौमारहरः स एव हि वरस्ता एव चैत्रक्षपास्ते चोन्मीलितमालतीसुरभयः प्रौढाः कदम्बानिलाः। सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरतव्यापारलीलाविधौ रेवारोधसि वेतसीतरुतले चेतः समुत्कण्ठते।'** यह देते हैं। उस भावके हाव, हेला इत्यादि ३३ भेद हैं। तुलसीदासजीने भी भावके उदाहरण *'तासु बचन अति सियहिं सोहाने। दरस लागि लोचन अकुलाने॥', 'जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मन छोभा॥'* इत्यादि दिखाये हैं।'

सुकृत-पुंज मंजुल अलि-माला। ज्ञान बिराग बिचार मराला॥ ७॥

शब्दार्थ-अलि माला=अलि+माला=भौंरोंका समूह वा पङ्क्ति। मराला=हंस। सुकृत पुंज=पुण्यसमूह।=सुकृती लोग जिनके पुण्योंका समूह एकत्र हो गया है। यथा—*'ते पुनि पुन्य पुंज हम लेखे। जे देखहिं देखिहहिं जिन्ह देखे॥'* (२। ११९) *चित्रकूटके बिहँग मृग बेलि बिटप तृन जाति। पुन्य पुंज सब धन्य अस कहहिं देव दिन राति॥'* (२। १३८) *'हम सम पुन्य पुंज जग थोरे। जिन्हहिं राम जानत करि मोरे॥'* (अ० २७४) *'हम सब सकल सुकृत कै रासी। भए जग जनमि जनकपुर बासी॥ जिन्ह जानकी राम छबि देखी। को सुकृती हम सरिस बिसेषी॥'* (१। ३१०) *'नृप रानी परिजन सुकृत मधुकर बारि बिहंग।'* (१। ४०) ☞इस ग्रन्थमें विप्रपदपूजा, परोपकार इत्यादि पुण्यकर्मोंका तथा पुण्य-पुरुषोंका ठौर-ठौर वर्णन है। पुनः 'सुकृत पुंज'=सुकर्म करनेवालोंका समूह।

अर्थ—सुकृतपुञ्ज सुन्दर भ्रमरोंकी पङ्क्ति है। ज्ञान, वैराग्य और विचार हंस हैं॥ ७॥

नोट—१ देवतीर्थ स्वामीजी आदि कुछ महानुभाव 'ज्ञान-वैराग्यका विचार' ऐसा अर्थ करते हैं। काष्ठजिह्वा स्वामीजी कहते हैं कि 'इनका 'विचार' हंस है। दूध-पानी जुदा करनेसे हंस विचारी है।' सुधाकर द्विवेदीजी लिखते हैं कि 'भक्तोंके ज्ञान और वैराग्यरूप विचार इस मानसके हंस हैं। भक्तिके चाहनेवाले तो फिर-फिर संसारमें जन्म लेकर भगवद्भक्तिमें लीन रहते हैं। जो ज्ञानी और विरागी हैं वे अपने ज्ञान-वैराग्य-

विचारसे इस मानसके द्वारसे मुक्ति पाते हैं। जैसे हंस अपने नीर-क्षीर-विवेकसे मानसमें मोती पाते हैं। मुक्तिके साम्यसे ज्ञान-विरागके विचारको हंस बनाना बहुत उचित है।'

नोट—२ कमलके स्नेही भ्रमर हैं। यथा—*'मुनिमन मधुप रहत जहँ छाये।'* अतएव कमल कहकर भ्रमरावली कही। मानसके 'छन्द-सोरठा-दोहा' रूपी कमलपुष्पोंपर सुकृतपुञ्ज छाये रहते हैं, उनके भावरूप मकरन्द रसको पान करते हैं (अर्थात् भावरूपी मकरन्दकी प्राप्ति सुकृतियोंके ही भाग्यमें है, वे इसीसे पुष्ट होते हैं; यही उनका जीवन है। जहाँ सुकृत नहीं है वहाँ भावोंकी गुणग्राहकता कौन करे?) और परागरूपी अर्थमें लोटते-पोटते रहते हैं । सुकृतपुञ्ज रामभक्त हैं; यथा—*'राम भगत जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनघ उदारा॥'* (१। २२। ६)

टिप्पणी—कमल कहकर फिर हंस कहा क्योंकि हंस कमलका स्नेही है, कमलपर बैठता है; यथा—*'हिय सुमिरी सारदा सुहाई। मानस तें मुख पंकज आई॥ बिमल बिबेक धरम नय साली। भरत भारती मंजु मराली॥'* (२। २९७),*'पुनि नभसर मम कर निकर कमलन्हि पर करि बास। सोभत भयउ मराल इव संभु सहित कैलास॥'* (६। २२)

'ज्ञान बिराग बिचार मराला' इति।

१ विचार—यह सोचना कि शरीर और उसके सम्बन्ध एवं जगत्के सभी व्यवहार अनित्य हैं, एक आत्मा-परमात्मा ही नित्य है, यथा—*'देखत ही कमनीय, कछू नाहिंन पुनि किये बिचार। ज्यों कदलीतरु मध्य निहारत, कबहुँ न निकसै सार॥'* (वि० १८८) ☞विचारसे वैराग्य उत्पन्न होता है। श्रीस्वायम्भुव मनुके मनमें प्रथम विचार उठा कि *'होइ न बिषय बिराग भवन बसत भा चौथपन। हृदय बहुत दुख लाग जनम गयउ हरि भगति बिनु॥'* (१। १४२) तब *'नारि समेत गवन बन कीन्हा'*—यह वैराग्य हुआ। बिराग=वैराग्य; विषयसे मनका हट जाना, उसमें आसक्त न होना। वैराग्यसे ज्ञान होता है, यथा—*'ज्ञान कि होइ बिराग बिनु।'* (७। ८९) किसी प्रकारका मान हृदयमें न होना ज्ञानका लक्षण है, यथा—*'ज्ञान मान जहँ एकउ नाहीं।'* (३। १५)

२—ज्ञान, वैराग्य, विचार तीनको हंस कहा, क्योंकि हंस भी तीन प्रकारके होते हैं—हंस, कलहंस और राजहंस। (पं० रा० कु०, मा० दी०) यथा—*'संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार।'* (१। ६), *'बोलत जलकुक्कुट कलहंसा॥'* (३। ४०), *'सखीं संग लै कुँअरि तब चलि जनु राजमराल।'* (१। १३४) पुनः, दोनोंका रंग श्वेत है। (मा० दी०) पुनः, अमरकोशमें 'राजहंस, मल्लिकाक्ष और धार्तराष्ट्र' ये तीन भेद हंसोंके कहे हैं। यथा—**'राजहंसास्तु ते चञ्चुचरणैर्लोहितैः सिताः। मलिनैर्मल्लिकाक्षास्ते धार्तराष्ट्राः सितेतरैः॥'** (२। ५। २४) अतः यहाँ ज्ञान, विराग और विचार तीन कहे।

३ (क) ज्ञान, वैराग्य और विचारको हंस कहनेका कारण यह है कि जैसे हंस दूध-पानी अलग करके दूध पी लेता है, वैसे ही इनसे सत्-असत्का निर्णय होकर सत्का ग्रहण और असत्का त्याग किया जाता है। पुनः, (ख) राजहंसके गतिकी भी प्रशंसा है, यथा—*'चलि जनु राजमराल।'* कलहंसकी बोलीकी और हंसकी क्षीरनीर विवरणकी प्रशंसा है, यथा—*'बोलत जलकुक्कुट कलहंसा।'* (३। ४०। २) *'क्षीरनीर बिबरन गति हंसी।'* ज्ञानकी गति उत्तम (मोक्ष) है अतः यह राजहंस हुआ। विरागयुक्त वाणीकी शोभा है, यथा—*'सुनि बिराग संजुत कपि बानी। बोले बिहँसि राम धनुपानी॥'* अतः वैराग्य कलहंस है। विचार सत्-असत्का विवेक करता है, गुणदोषको अलग करता है, अतः यह हंस है। यथा—*'भरत हंस रबिबंस तड़ागा। जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा॥'* मानसमें जहाँ-जहाँ ज्ञान-विराग-विचारका उल्लेख मिले वहाँ-वहाँ हंसोंका विहार समझ लेना चाहिये। (वि० त्रि०)

४ 'कमलमें भ्रमर और हंस विहार करते हैं, 'छन्द-सोरठा-दोहा' में 'सुकृत' और 'ज्ञान-विराग-

विचार' विहार करते हैं। अर्थात् इनके कहने-सुननेसे सुकृत होते हैं और 'ज्ञान-वैराग्य-विचार' हृदयमें आते हैं। जहाँ कमल होता है वहाँ ये सब रहते हैं।

५ यहाँ कमलके योगसे भ्रमर और हंसको 'तल्लीन' के साथ कहा गया, नहीं तो ये 'तद्गत' में आते हैं। (मा० प्र०)

धुनि अबरेब कबित गुन जाती। मीन मनोहर ते बहु भाँती॥ ८॥

अर्थ—(श्रीरामचरितमानसमें) ध्वनि, अवरेव, गुण और जाति जो कविताके भेद हैं वे ही बहुत प्रकारकी सुन्दर मछलियाँ हैं॥ ८॥

नोट—१ ***'धुनि अबरेब कबित गुन जाती'*** इति। १—***'धुनि'*** (ध्वनि)—जब शब्दोंके नियत अर्थोंका साधारणतः कुछ और अर्थ हो और उनमेंसे प्रसङ्गानुकूल मुख्य अर्थ कुछ और ही झलकता हो तो उसे 'ध्वनि' कहते हैं। चाहे यह चमत्कार वाच्यार्थसे ही निकले, चाहे लक्षणार्थ वा व्यंगार्थसे। सीधे वचनोंमें टेढ़ा भाव होना यह इसका मुख्य चमत्कार है। ध्वनिके एक लाख चार हजार पचपन भेद कहे जाते हैं। काव्यप्रकाशमें ध्वनिके ४०८ भेद लिखे हैं। ध्वनि भी व्यंग ही है। इनमें यह भेद कहा जाता है कि जिस अर्थका चमत्कार ऐसा हो कि उससे श्रोताको वाञ्छित सिद्धिका आनन्द हो वह ध्वनि है और जिस अर्थके चमत्कारसे सुननेवालेको अप्रसन्नता या लज्जा हो, वह व्यंग्य है। विशेष आगे २ (ज) में देखिये । उदाहरण, यथा—

(क) ***'पुनि आउब एहि बिरियाँ काली'***—'कल फिर आवेंगी, कल फिर इनके दर्शन होंगे', इससे मन प्रसन्न होता है। यहाँ 'आना' कहकर 'चलना' जनाया। उसमें ध्वनि यह है कि अब देर हो गयी, न चलोगी तो कल फिर क्या आने पाओगी, इत्यादि। विशेष (१। २३४) (६) में देखिये। यह ध्वनि है। ***'समर बालि सन करि जसु पावा'*** यह व्यंग्य है।

(ख) ***'बिप्र बंस कै असि प्रभुताई। अभय होइ जो तुम्हहिं डेराई॥'*** (१। २८४) इसे सुनकर श्रोता प्रसन्न होगा, इसमें ध्वनि यह है कि हम तुमसे नहीं डरते, ब्राह्मणत्वका विचार करते हैं कि मारनेसे पाप होगा। यह ध्वनि है।

(ग) ***'जेहि बिधि होइहि परमहित नारद सुनहु तुम्हार। सोइ हम करब न आन कछु बचन न मृषा हमार॥ कुपथ माँग रुज ब्याकुल रोगी। बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी॥ एहि बिधि हित तुम्हार मैं ठयऊ॥'*** (१। १३२। ३)।—यहाँ 'हित' कहकर मनोरथ-सिद्धि सूचित की और ध्वनि यह कि अपना रूप तुमको न देंगे।

(घ) ***'हंस बंस दसरथु जनकु राम लखन से भाइ। जननी तू जननी भई बिधि सन कछु न बसाइ॥'*** (२। १६१) यहाँ द्वितीय 'जननी, शब्दसे कैकेयीजीकी कठोरता व्यंग्य है। यह अर्थान्तर संक्रमित वाच्य भेद है। (वि० त्रि०)

(ङ) ***'कुंदकली दाड़िम दामिनी।...... हरषे सकल पाइ जनु राजू।'*** (३। ११। १४) यहाँ कुन्दकली आदिकोंका हर्षित होना असम्भव है, तब वाचकने अपना अर्थ छोड़ा और साध्यावसानासे दशनादिका ग्रहण हुआ। अब उपमेयसे उपमानका अनादर पाना गूढ़ व्यंग्य हुआ और 'तुम्हारे वैरियोंका हर्ष मुझसे नहीं सहा जाता' यह ध्वनि है। यहाँ अत्यन्त तिरस्कृत-वाच्य-भेद है। (वि० त्रि०)

(च) ***'पूछेउँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची। भरत भुआल होहिं यह साँची॥'*** (२। २१)।—यहाँ गुणियोंके रेखा खींचनेकी सिद्धि ***'भुआल'*** शब्दसे होती है। यहाँ पहले इसी अर्थकी प्रतीति होती है कि भरत राजा होंगे, पर ऐसा अर्थ करनेसे गुणी झूठे होंगे। अतः ***'भुआल'*** शब्दकी शक्तिसे यह अर्थ निकला कि भरत पृथ्वीमें रहेंगे, यथा—***'महि खनि कुस साँथरी सँवारी'*** (वि० त्रि०) इत्यादि।

नोट—२ ***'अबरेब'***—(संस्कृत, अव=विरुद्ध+रेव=गति)। तिरछी या टेढ़ी चाल। (क) अधिकांश टीकाकारोंका मत है कि काव्यमें इसको 'खण्डान्वय' भी कहते हैं। जहाँ सीधे शब्द जैसे रखे हैं वैसे

ही अर्थ करनेसे ठीक आशय नहीं निकलता, शब्दोंका उलट-फेर करनेहीसे ठीक अर्थ निकलता है, उस काव्यको 'अवरेव काव्य' कहते हैं। उदाहरण—*'देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने॥'* इसमें *'ललचाने लोचन'* ऐसा रखकर अर्थ सिद्ध होता है अर्थात् जो लोचन ललचाये हुए थे। (मा० प्र०, करु०, मा० दी०) *'इहाँ हरी निसिचर बैदेही। बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही॥'*— इसमें *'इहाँ'* शब्द *'खोजत'* के साथ जायगा। इत्यादि । पंजाबीजी इसे 'व्यंग्य' और रा० प्र० कार 'अन्वय' कहते हैं। (ख)— शब्दसागर इसीको 'वक्रोक्ति' 'काकूक्ति' कहता है। वक्रोक्तिके दो भेदोंमेंसे एक 'काकु' भी है जिसमें शब्दोंके अन्यार्थ या अनेकार्थसे नहीं बल्कि ध्वनिहीसे दूसरा अभिप्राय ग्रहण किया जाय। जैसे 'क्या वह इतनेपर भी न आवेगा?' अर्थात् आवेगा।—[वक्रोक्तिके उदाहरण अङ्गद-रावण-संवादमें बहुत हैं।]

(ग) श्रीबैजनाथजी लिखते हैं कि 'अवरेव वह है जहाँ दूषण भी किसी कारणसे भूषण हो जाता है। यथा—*'श्यामतन सोनित कनी।'* रक्तकनी देहकी शोभा नहीं है, सो भी रणभूमिके प्रसङ्गसे शोभा है। पुनः सौभागिनीको तापसवेष अशोभित, सो श्रीकिशोरीजीमें पति-सङ्ग वनवाससे शोभित। अथवा हितमें अहित— जैसे कैकेयीका मनोरथ, हनुमान्‌जीकी पूँछका जलाना, चित्रकूटमें अवधवासियोंपर देवमाया इत्यादि। यह अर्थ 'अवरेव' हुआ। शब्द-अवरेव वह है जिसमें आदि-अन्तके शब्द मिलाकर अर्थ करना होता है।'

पं० सूर्यप्रसाद मिश्रने मानसपरिचारिका, करुणासिन्धुजी, रा० प्र०, पंजाबीजी, बैजनाथजी, रामेश्वर भट्ट इत्यादिके दिये हुए *'अवरेव'* के अर्थोंका खण्डन किया है। वे लिखते हैं कि ये सब अर्थ निर्मूल हैं क्योंकि किसीने कुछ भी प्रमाण नहीं लिखा है। ध्वनिके साथ 'अवरेव' के लिखनेसे दूसरा अर्थ हो ही नहीं सकता, जब होगा तब काव्यभेद ही हो सकता है। वे लिखते हैं कि काव्यके तीन भेद हैं—उत्तम, मध्यम, अधम। ध्वनिकाव्य उत्तम है। ग्रन्थकारने मध्यमका उल्लेख ही नहीं किया। रह गया अधमकाव्य सो कैसे कहें क्योंकि स्वयं कह चुके हैं कि *'एहि महँ रघुपति नाम उदारा'* इसलिये अधम (अवर) नहीं कहा, अवरेव (=अवर+इव) कहा अर्थात् अधमके समान। अवरेवमें दो शब्द हैं—'अवर' और 'इव'। 'अवर' का अर्थ अधम-काव्य है यथा काव्यप्रकाशमें कहा है—**'शब्दचित्रं वाच्यचित्रमव्यङ्ग्यं त्ववरं स्मृतम्'** इसका अर्थ यह है कि गुण और अलङ्कारके रहनेपर भी ध्वनिके न होनेसे अवरकाव्य होता है। यथा—*'तात जनकतनया यह सोई। धनुष जग्य जेहि कारन होई॥'* इत्यादि, अनेक हैं। ऐसे अर्थका प्रमाण ग्रन्थकारहीने स्वयं लिखा है। यथा—*'रामकथा' 'अवरेब सुधारी'* इसका अर्थ हुआ कि इस काव्यमें जो अधमकाव्यके समान भी लक्षण आवें वह भी रामकथा होनेसे शुद्ध हो जावेगी। अवरेव अर्थात् अधमपना जाता रहा। [परन्तु शुद्ध पाठ है 'रामकृपा'। 'रामकथा' पाठ हमें कहीं नहीं मिला।]

श्रीसुधाकर द्विवेदीजी लिखते हैं कि 'बहुतोंके मतसे 'अवर इव' दो पद हैं, जिनकी व्याख्या पं० सूर्यप्रसादने की है पर मेरी समझमें यह फारसी शब्द है। जिसका अर्थ टेढ़ा या फेरफार है, अर्थात् जहाँ कोई बात फेरफारसे कही जाय वही 'अवरेव' है। इसीको साहित्यमें 'पर्यायोक्ति' कहते हैं जैसे—*'बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू। भूपकिसोर देखि किन लेहू॥'* (२३४। २) यहाँ सीधा 'राम' के स्थानमें फेरफारसे कविने भूपकिशोर कहा इसलिये पर्यायोक्ति (अवरेव) हुआ। ऐसे ही सूरदासके *'तोयाके सुत ता सुत के सुत ता सुतभखबदनी'* में सीधा चन्द्रवदनी न कहकर अवरेवसे जलके पुत्र (ब्रह्मा) के पुत्र (कश्यप) के पुत्र (राहु) के भक्षण चन्द्र कहा।'

(घ) त्रिपाठीजी लिखते हैं कि 'जहाँ व्यंग्यार्थ वाच्यार्थसे उत्तम न हो अर्थात् समान या न्यून हो उसे गुणीभूत व्यंग्य कहते हैं। यहाँ 'अवरेव' शब्द इसीके लिये आया है। टेढ़ी काटको अवरेव कहते हैं। अथवा, 'अवर इव' अवरेव हुआ। व्यंग्य-सहित बोलनेवालेको कहा भी जाता है कि 'अवरेव' के साथ बात करते हैं। 'अवरेव' शब्द टेढ़ी चालके अर्थमें आया भी है। यथा—*'रामकृपा अवरेब सुधारी'* टेढ़ी ही बातमें व्यंग्य होता है। यहाँ *'धुनि अवरेब कबित'* कहा है, सो काव्यके दो भेद हैं—ध्वनि और गुणीभूत व्यंग्य। अतः 'अवरेव' से गुणीभूत व्यंग्य ही अभिप्रेत है।

मा० मा० कारके मतानुसार 'अवरेव व्यञ्जनाको कहते हैं। जिस शक्तिद्वारा शब्दोंका व्यंगभाव प्रकट हो उसे व्यञ्जना कहते हैं।'

(ङ) श्रीरूपनारायण मिश्रजी— यहाँ 'अवरेव' शब्दार्थमें टीकाकारोंका वैमत्य है। श्रीसूर्यप्रसाद मिश्रजीने ध्वनिसे उत्तम काव्य और 'अवरेव' से 'अवर इव' ऐसा पदच्छेद करके 'अवर (अधम काव्य) के सदृश' अर्थ किया है। परन्तु सूक्ष्मेक्षिकया विचार करनेपर 'अवर+इव' से 'अवरेव' शब्द बन नहीं सकता। क्योंकि **'इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च'** इस वार्तिकसे समास होनेपर 'अवर' शब्दके आगे आयी हुई विभक्तिका लोप नहीं हो सकता और विभक्तिके रहते हुए सन्धि नहीं हो सकती, तथा केवल प्रातिपदिक असाधु है और शास्त्र साधु शब्दोंमें ही प्रवृत्त होते हैं।

कुछ लोगोंने 'अवरेव'से पर्य्यायोक्ति अलङ्कार लिया है, किन्तु स्थालीपुलाक न्यायसे ***'उपमा बीचि बिलास मनोरम'*** अर्धांश चौपाईमें 'उपमा' शब्दसे अर्थालङ्कारोंके बीजभूत उपमालङ्कारसे सभी अलङ्कारोंको गोस्वामीजी 'तरङ्ग' का रूपक स्वीकार कर चुके हैं। अतः एक 'पर्य्यायोक्ति अलङ्कार' को मीनका रूपक देना अनुचित मालूम पड़ रहा है।

रामायणरूपी काव्यका सरोवरके साथ जब रूपकका तात्पर्य है तब उत्तम काव्य और मध्यमकाव्यको मीनका रूपक मानना अत्यन्त असङ्गत है। अतः ध्वनिसे व्यञ्जनावृत्ति और फारसी शब्द 'अवरेव' (जिसका अर्थ है—तिरछा, टेढ़ा, पेचीदा) के अनुसार 'अवरेव' से 'लक्षणावृत्ति' लेना चाहिये , क्योंकि वाच्यार्थसे सम्बद्ध ही अर्थ लक्षणावृत्तिसे जाना जाता है। जैसे कि 'इनका घर गङ्गामें है'—इसमें गङ्गा वाच्यार्थका तटके साथ सामीप्य सम्बन्ध होनेसे लक्षणावृत्तिद्वारा गङ्गा पदका 'तट' ही अर्थ होगा' पर्वत (नदी) नहीं। अनन्त सम्बन्धोंमें वैपरीत्य भी एक सम्बन्ध है। जैसे महान् अपकारीसे कहा जाय कि आपने मेरा बड़ा उपकार किया। यहाँ 'उपकार' का लक्षणावृत्तिद्वारा वैपरीत्य सम्बन्धसे सम्बद्ध (विपरीत अर्थ) 'अपकार' समझा जायगा। फारसी कोशमें 'अवरेव' का अर्थ 'पेचीदा, टेढ़ा, तिरछा' है और लक्षणासे भी पेचीदा अर्थात् विपरीत अर्थ लिया जाता है, अतः अवरेव और लक्षणाका अर्थ साम्य बन जाता है। तथा ध्वनिसे व्यञ्जनावृत्तिका ग्रहण आवश्यक है, क्योंकि व्यञ्जनावृत्तिका आधार काव्य हुआ और मीनका आधार सरोवर हुआ। इसलिये ध्वनि और मीनका सादृश्य होनेसे ठीक रूपकालङ्कार भासित हुआ। यदि ध्वनिसे काव्यका ग्रहण किया जाय तो मीनके साथ रूपक हो नहीं सकता, क्योंकि काव्यका सरोवरके साथ साङ्गरूपक बनानेके उद्देश्यसे ही अन्य रूपकोंका चित्रण गोस्वामीजीने किया है। यदि ध्वनिकाव्यका मीनके साथ रूपकका तात्पर्य माना जाय तो सरके साथ नहीं हो सकता। जब ध्वनिसे व्यञ्जनाका ग्रहण किया तब 'अवरेव' से लक्षणावृत्तिका ग्रहण करनेपर प्रकरणकी संगति भी बन जाती है।

समस्त चौपाईका अर्थ इस प्रकार होना चाहिये—'कवित (काव्यकी), ध्वनि (व्यञ्जना), अवरेव (लक्षणा) और गुणजाती (अर्थात् माधुर्यादि गुणसमूह) मनोहर मछलियाँ हैं।'

नोट—३ 'गुण'-जिससे चित्तको आनन्द होता है। यह रसका मित्र है, रसकी उत्कर्षता रचता है। *'कबित दोष गुन बिबिध प्रकारा॥'* (१। ९। १०) देखिये। काव्यगुण कई प्रकारके होते हैं। इनमेंसे 'माधुर्य', 'ओज' और 'प्रसाद' मुख्य हैं। 'माधुर्यगुण' वह है जिसके सुनते ही चित्त द्रवीभूत होता है। अत्यन्त आनन्द होता है। प्रायः शान्त, करुण और शृङ्गार रसमें यह गुण होता है। माधुर्य पद्यकी रचना रत्नाकरके *'अनुस्वारयुत वर्णमृदु सुगम रीति अति स्वच्छ। तजि टवर्ग अरु यमक-पद सो माधुर्य प्रतच्छ॥'* इस दोहेके अनुसार होती है। जिसमें कटु अक्षर न हों, टवर्ग-रहित, अनुस्वारयुक्त कोमल वर्ण पड़ें। यथा—*'कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि॥*—' (१। २३०) *'उदित उदय गिरि मंच पर रघुबर बाल पतंग।'* (१। २५४)

'ओज गुण' वह है जिसमें उद्धत शब्द और संयोगी वर्ण हों और बड़ा समास हो। पुनः, सवर्ग, कवर्ग और टवर्गकी अधिकता हो। इसमें 'जो, सो, को, करि, लिये, ते, ए, में' नहीं होते। किसीने

यों कहा है कि—*'चित्त बढ़ावै तेज करि ओज बीर रस वास। बहुत रौद्र बीभत्स महिं ताको बरन निवास॥ संयोगी ट ठ ड ढ ण-युत उद्धत रचना रूप। रेफ जोग स ष बढ़े पद बरनौं ओज अनूप॥'* उदाहरण यथा—*'चिक्करहिं मरकट भालु छलबल करहिं जेहि खल छीजहीं'*, *'पुनि दसकंध क्रुद्ध है छाँड़ी सक्ति प्रचंड'*, *'ब्रह्मांड दिग्गज कमठ अहि महि सिंधु भूधर डगमगे'* (लं० ८५), *'धिग धरमध्वज'''''* (१। १२), *'कटकटहिं जंबुक भूत प्रेत पिसाच खप्पर संचहीं॥'* (३। २०), *'धरि कुधर खंड प्रचंड मर्कट भालु गढ़पर डारहीं। झपटहिं चरन गहि पटकि महि भज चलत बहोरि प्रचारहीं॥'* (६। ४०) इत्यादि।

'प्रसाद'-जहाँ सुनते ही अर्थ जाना जाय, कोमल पद और सुरुचि वर्ण पड़ें। किसीने 'प्रसादगुण' के लक्षण इस प्रकार लिखे हैं-*'सब रस सब रचनानमें सब बरनन को भूप। अरथ सुनत ही पाइये यह प्रसादको रूप॥'* ☞यह सब रसों और सब गुणोंमें पाया जाता है। यथा—*'ज्ञानी तापस सूर कबि कोबिद गुन आगार। केहि कै लोभ बिडंबना कीन्हि न एहि संसार॥'* (७। ७०), *'सतानंद पद बंदि प्रभु बैठे गुर पहिं जाइ। चलहु तात मुनि कहेउ तब पठवा जनक बोलाइ॥'* (१। २३९), *'खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहिं सिय सयननि॥'* (२। ११७) *'भव भव बिभव पराभव कारिनि।'* (१। २३५), *'बिटप बिसाल लता अरुझानी। बिबिध बितान दिये जनु तानी॥ कदलि ताल बर धुजा पताका। देखि न मोह धीर मन जाका॥'* (३। ३८), *'लसत मंजु मुनि मंडली मध्य सीय रघुचंदु। ज्ञान सभा जनु तनु धरे भगति सच्चिदानंदु॥'* (२। २३९), *'कुस कंटक काँकरी कुराईं। कटुक कठोर कुबस्तु दुराईं॥'* (२। ३११) इत्यादि।

☞माधुर्यगुण उपनागरिका वाणीमें होता है, प्रसादगुण कोमलामें और ओजगुण परुषा वाणीमें होता है, यथा—*'त्रिबिध वृत्य माधुर्यगुण उपनागरिका होइ। मिलि प्रसाद पुनि कोमला परुषा ओज समोइ॥'* (तुलसीभूषण) (मा० प्र०)

नोट—४ *'जाति'*—जाति-काव्यमें पदका अर्थ स्पष्ट देख पड़ता है। जैसा जिसका स्वरूप, गुण , स्वभाव हो वैसा ही जातिकाव्यमें वर्णन किया जाता है। जातिको वृत्त या मात्रिक छन्द भी कहते हैं। इसमें आठ, दस, बारह, चौदह अक्षर होते हैं। जातिकाव्य (वृत्त) चार प्रकारका होता है—कौशिकी, भारती, आरभटी और सातिकी। यथा— *'कहिये केशोदास जहँ करुण हास शृङ्गार। सरस बरन शुभ भाव जहँ सो कौशिकी बिचार॥'* (१) *'बरनिये जामहँ बीररस भय अरु अद्भुत हास। कह केशव शुभ अर्थ जहँ सो भारती प्रकाश॥'* (२) *'केशव जामहँ रौद्ररस भय बीभत्सक जान। आरभटी आरंभ यह पद-पद जमक बखान॥'* (३) *'अद्भुत रुद्र सुबीर रस समरस बरन समान। सुनतहि समुझत भाव मन सो सातकी सुजान॥'* (४) इनके उदाहरण ये हैं; यथा—*'नखसिख देखि राम कै सोभा। सुमिरि पिता पन मन अति छोभा॥'* (१। २३४) (कौशिकी) *'कही जनक जसि अनुचित बानी। बिद्यमान रघुकुल मनि जानी॥'''''* (१। २५३) (भारती)। *'भये क्रुद्ध जुद्ध बिरुद्ध रघुपति त्रोनसायक कसमसे।'* इत्यादि (आरभटी) *'देव दनुज भूपति भट नाना। सम बल अधिक होउ बलवाना॥'* (१। २८४)।—(सातिकी)। पुनः, यथा—*'खायउँ फल प्रभु लागी भूखा। कपि सुभाव तें तोरेउँ रूखा॥ सब के देह परम प्रिय स्वामी। ''''''जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे॥'* (५। २२), *'साखामृग कै बड़ि मनुसाई। साखा ते साखा पर जाई॥'*, *'राजकुमारि बिनय हम करहीं। तिय सुभाय कछु पूछत डरहीं॥ स्वामिनि अबिनय छमबि हमारी। बिलगु न मानब जानि गँवारी॥ कोटि मनोज लजावनिहारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे॥'* (२। ११६-११७)

टिप्पणी—ध्वनि, अवरेब, कवितगुण और कवितजाति—इन चारोंको मीन कहा। क्योंकि मछली चार जातिकी होती हैं, जिनमेंसे प्रत्येक जातिमें अनेक प्रकारकी मछलियाँ होती हैं। अरण्यकाण्डमें भी मीन चार प्रकारकी कही हैं, यथा—*'बुधि बल सील सत्य सब मीना।'* (३। ४४) मछली जलके भीतर रहती है; इसी तरह ध्वनि आदि सब कवितके भीतर रहते हैं। [मत्स्यके बिना सरकी शोभा नहीं, अतः उसे लिखा। (मा० प०) मीन चार प्रकारकी हैं। १ पाठीन, २ बामी, ३ सहरी या सिधरी और ४ चेल्हवा। ध्वनि आदि और मीनमें समानता इस प्रकार है कि—'पाठीन' जिसे पढ़िना, बुराई, रोहू भी कहते हैं,

यह बिना सेहरेकी मछली है, जो सर और समुद्र सभी स्थानोंमें पायी जाती है। इसका पेट लम्बा और मुख काला होता है और इसके कण्ठमें मञ्जरी होती है। यह सरमें सबसे बड़ी होती है और जलके भीतर रहती है, भेदी ही जानते हैं। ध्वनि भी शब्दोंके भीतर होती है, यह समता है। 'बामी' मीन जो मुख और पूँछ मिलाकर चलती है। बाम नामक मछली देखनेमें साँप-सी पतली, गोल और लंबी होती है। और 'अवरेब' में आगे-पीछेके शब्दोंको मिलानेसे अर्थ सिद्ध होता है। यह दोनोंमें समानता है। 'सहरी, सिधरी, सौरी या शफरी' मीन छोटी होती है और दस-बीस मिलकर चलती हैं। गुणकाव्यमें दो-दो, तीन-तीन अक्षरोंका पद होता है और पद-पदमें यमक, अनुप्रासकी आवृत्ति होती है, दो-चार पद मिलकर चलना यह समता है। 'चेल्हवा मीन' एक प्रकारकी छोटी और पतली मछली होती है जो बहुत चमकती है और पृथक् रहती है। जातिकाव्यमें अर्थ शब्दोंसे चमकता है। यह समता है। (मा० प्र०)]

नोट—५ *पुरइन सघन चारु चौपाई।*' (३७। ४) में कहा था कि यहाँसे तल्लीन, तद्गत और तदाश्रय तीन परिखाओंमेंसे तल्लीनवालोंको कहते हैं जो सरसे बाहर एक क्षण भी नहीं रह सकते, उनको यहाँतक पाँच चौपाइयों (अर्धालियों) में कहा। आगे तद्गतवालोंको कहते हैं। ये भी सरके आश्रित हैं, उसीमें रहते हैं पर कुछ देरके लिये बाहर भी आ जाते हैं। (म० प्र०)

अरथ धरम कामादिक चारी। कहब ग्यान बिग्यान बिचारी॥ ९ ॥
नव रस जप तप जोग बिरागा। ते सब जलचर चारु तड़ागा॥ १० ॥

अर्थ—अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष ये चारों और ज्ञान तथा विज्ञानका विचार करके कहना* तथा नवों रसों, जप, तप, योग और वैराग्य (का कथन) ये सब इस सुन्दर तालाबके जलचर हैं॥ ९-१०॥

नोट—१ ज्ञानको तो हंस कह आये, अब उसीको जलचर कैसे कहते हैं? यह शङ्का उठाकर महानुभावोंने ये समाधान किये हैं—(क) ज्ञानके स्वरूपको हंस कहा है और ज्ञानके कथनको जलचर। ज्ञान-विज्ञानको विचारकर कहना जलचर है। (पं० रा० कु०) (ख) 'इनका वर्णन ग्रन्थमें बहुत स्थानोंमें आया है, जहाँ विस्तारसे कहा है वहाँ मरालकी उपमा दी और जहाँ सङ्कोचसे कहा वहाँ जलचरकी, क्योंकि जलचर गुप्त रहते हैं।' (पं०) स्वतन्त्र प्रसङ्ग विस्तारसे है, आनुषङ्गिक सङ्कोचसे है।

टिप्पणी—१ *'अरथ धरम……'* इति। यहाँ 'काम' स्त्रीभोगका वाचक है, क्योंकि चार पदार्थोंमें कामकी भी गिनती है, यथा—*'गुरुसंगति गुरु होइ सो लघु संगति लघु नाम। चारि पदारथमें गनै नरकद्वारहू काम॥'* (दो०)

टिप्पणी—२—'ध्वनि, अवरेब, कवित-गुण-जाति ये सब काव्यमें लगते हैं और काव्यसे अर्थ, धर्मादिक होते हैं, इसीसे उनके पीछे इनको कहा। धर्मसे यश होता है, यथा—*'पावन जस कि पुन्य बिनु होई'* मोक्षका साधन ज्ञान है, इससे अर्थ, धर्म, काम, मोक्षके पीछे ज्ञानको कहा।'

नोट २—यहाँ अर्थ, धर्म आदि १९ (अर्थादिक ४+ज्ञान विज्ञान २+रस, ९+जप, तप, योग, विराग ४) वस्तुओंको जलचरकी उपमा दी। यह शङ्का की जाती है कि 'मीन' भी तो जलचर है सो उसको तो ऊपर *'ध्वनि अवरेब……'* में कह आये, अब फिरसे जलचर कहनेका क्या भाव है?

समाधान—(क) ऊपर *'पुरइनि सघन चारु चौपाई……'*। से *'धुनि अवरेब कबित गुन जाती……।'* तक जो उपमाएँ जलचरोंमेंसे दीं वह तल्लीन जलचरोंकी हैं। अर्थात् जो सरसे बाहर क्षणभर भी नहीं रह सकते। ध्वनि आदि शब्दोंमें ही रहती हैं और मीन जलहीमें। और अब मगर, घड़ियाल, कछुआ इत्यादि जलचरोंकी उपमा देते हैं जो तद्गत रहते हैं, अर्थात् जिनका जलसे नित्य सम्बन्ध नहीं है, जो जलके बाहर भी आ जाते हैं। पूर्व मीन और अब जलचर कहकर दोनोंको पृथक् किया है। (मा० प्र०)

(ख) मीन आदि जाल या वंशी बिना नहीं देख पड़तीं, इसी तरह ध्वनि आदि बिना विचारके

---

* सूर्यप्रसाद मिश्र अर्थ करते हैं कि 'अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष इनको शास्त्र (ज्ञान) जनित अनुभव (विज्ञान) के विचारसे कहूँगा'। वे कहते हैं कि ज्ञान-विज्ञान ये दोनों पृथक्-पृथक् नहीं हैं।

नहीं समझ पड़ते और स्थूल जलचर मगर, घड़ियाल इत्यादि बिना जालके भी स्पष्ट देख पड़ते हैं। (पाँडेजी) यहाँ स्थूल जलचर कहे गये। (पाँ०)

(ग) खर्रेमें लिखा है कि 'रामयश-जलके निकट अर्थ-धर्म-कामादिका कुछ प्रयोजन नहीं है, इसीसे 'जलके आलम्ब करके (अर्थात् जलका अवलम्ब लेकर) अङ्गोंको छिपाये पड़े रहते।'

नोट—३ अर्थ, धर्म इत्यादि १९ वस्तुओंका कथन इस ग्रन्थमें बहुत जगह है। उसमेंसे कुछ लिखे जाते हैं (१) अर्थ=धन, धाम, ऐश्वर्य। जहाँ-जहाँ धन, धाम, ऐश्वर्यके सम्बन्धसे उपदेश तथा इनकी सिद्धिकी चर्चा आयी है वे सब इसके उदाहरण हैं। त्रिपाठीजी लिखते हैं कि शास्त्रकारोंने अर्थ-शुद्धिको ही शुद्धि माना है और उसके जो छः उपाय भिक्षा, सेवा, कृषि, विद्या, कुसीद (सूद) और वाणिज्य—अर्थशास्त्रने बताये हैं, उनका भी उल्लेख मानसमें है। यथा—*'अब सुख सोवत सोचु नहिं भीख माँगि भव खाहिं।', 'बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आजु दीन्हि बिधि बनि भलि भूरी॥', 'कृषी निरावहिं चतुर किसाना।', 'बिद्यानिधि कहँ बिद्या दीन्हा।', 'दिन चलि गए ब्याज बहु बाढ़ा।', 'फिरेउ बनिक जिमि मूर गँवाई।'*

श्रीमद्भागवत (६। ११। २५) **'न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्। न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा समञ्जस त्वा विरहय्य कांक्षे॥'** के अनुसार स्वर्ग, ब्रह्मलोक, भूमण्डलका साम्राज्य, रसातलका आधिपत्य, योगसिद्धि और मोक्ष ये छहों अर्थ हैं जो भक्त नहीं चाहते। मोक्षको भी नहीं चाहते; क्योंकि यह भी दोषयुक्त है। इसमें पुरुष परमानन्दका अनुभव नहीं कर सकता। भक्तका 'अर्थ' स्वयं भगवान् हैं, वह सकलार्थरूप श्रीरामको ही चाहता है। इसीसे कहा है—*'मुकुति निरादर भगति लुभाने।'*

(२) धर्म=वह कर्म जिसका करना किसी सम्बन्ध या गुणविशेषके विचारसे उचित और आवश्यक हो। वेद-विहित यज्ञादिक कर्म, वर्णाश्रमधर्म, माता-पिता, पुत्र, स्त्रीके धर्म इत्यादि। यथा—*'बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।""', 'परम धरम श्रुति बिदित अहिंसा',* इत्यादि। सत्य और अहिंसा सार्ववर्णिक धर्म हैं। इनके अतिरिक्त ऐसे विशेष धर्म हैं, जिनके न पालन करनेसे मनुष्य शोचनीय हो जाता है। यथा—*'सोचिय बिप्र जो बेद बिहीना।'* (२। १७२। ३) से *'सोचनीय सबहीं बिधि सोई। जो न छाँड़ि छल हरिजन होई॥'* (१७३। ४) तक। जिस भाँति विहितका अनुष्ठान धर्म है, उसी भाँति निषेधका वर्जन भी धर्म है। यथा—*'जे अघ मातु पिता सुत मारे।'* (२। १६७। ५) से *'तिन्ह कै गति मोहि संकर देऊ।""'* (१६८। ८) तक। इत्यादि, जहाँ-जहाँ सामान्यधर्म, विशेषधर्म, विहितधर्म, निषेधवर्जित धर्मों एवं साधनोंका वर्णन है वह सब 'धर्म' के उदाहरण हैं। अहल्याको पतिकी पुनः प्राप्ति हुई, उसका धर्म सिद्ध हुआ।

(३ क) काम=कामनाएँ। महाराज दशरथजी, सतीजी, पार्वतीजी, विश्वामित्रजी, जनकपुरवासियों, श्रीशबरीजी, सुग्रीवजी, दण्डकारण्यके ऋषिगण, विभीषणजी आदिकी कामनाओंकी सिद्धिका इसमें वर्णन है। यथा—*'सृंगी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा। पुत्रकाम सुभ जग्य करावा॥""सकल काज भा सिद्ध तुम्हारा॥'* (१। १८९। ५—७), *'तौ मैं बिनय करौं कर जोरी। छूटौ बेगि देह यह मोरी॥""तौ सबदरसी सुनिय प्रभु करौ सो बेगि उपाइ। होइ मरनु जेहि बिनहि श्रम दुसह बिपत्ति बिहाइ॥'* (१। ५९), *'""सतीं मरत हरि सन बरु मागा। जनम जनम सिवपद अनुरागा॥ तेहि कारन हिमगिरि गृह जाई।'""* (६५), *'उपजेउ सिव पद कमल सनेहू।""'* (६८), *'""नित नव चरन उपज अनुरागा।""।' 'भएउ मनोरथ सुफल तव सुनु गिरिराज कुमारि।'* (७४), *'गाधितनय मन चिंता ब्यापी। हरि बिनु मरहिं न निसिचर पापी॥ तब मुनिबर मन कीन्ह बिचारा। प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा॥""बहु बिधि करत मनोरथ जात लागि नहिं बार""'* (१। २०६), *'""पुरुषसिंह दोउ बीर हरषि चले मुनिभय हरन।'* (२०८), *'""मारि असुर द्विज निर्भय कारी।'* (२१०। ६) तक। जनकपुरवासियोंका प्रसङ्ग तो श्रीरामजीके नगरमें पहुँचनेके समयसे लेकर बारातकी विदाईके समयतक बारम्बार आया है—*'जाइ देखि आवहु नगर सुख निधान दोउ भाइ। करहु सुफल सब के नयन सुंदर बदन देखाइ॥'* (२१८), *'""जौ बिधिबस अस बनै सँजोगू। तौ कृतकृत्य होइ सब लोगू॥ सखि हमरें आरति अति तातें। कबहुँक ए आवहिं एहि नातें॥ नाहिं त हम कहुँ सुनहु सखि इन्ह कर दरसन दूरि।'* (२२२), *'""निज निज रुचि सब लेहिं बोलाई। सहित सनेह*